THE BOOK WAS DRENCHED

UNIVERSAL
LIBRARY
OU_180426
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 83 S53 U Accession No. G.H. 3013

Author शास्त्री, चतुरसेन

Title उदयास्त १९५८

This book should be returned on or before the date last marked below.

उदयास्त

आचार्य चतुरसेन

शिक्षा भारती, दिल्ली-६

प्रथम संस्करण
मई, १९५८

•

मूल्य
चार रुपए

•

प्रकाशक
शिक्षा भारती
१, रामकिशोर रोड
दिल्ली—६

•

मुद्रक
युगान्तर प्रेस, डफ़रिन पुल,
दिल्ली

मानव जीवन ने करवट बदली और आँख खोलकर देखा—सवेरा हो गया है। नव प्रभात की स्वर्णिम किरणें उसके चारों ओर बिखर रही हैं। आलोक उसके चारों ओर की दुनिया में रंग भरता जा रहा है। नई हवा बह रही है, नए फूल खिले हैं, नई जवानियाँ अंगड़ाई ले रही हैं, नए शैशव किलकारी भर रहे हैं। भरपूर नींद वह सो चुका था, जी उसका हल्का था—वह उछलकर उठ खड़ा हुआ। दूर क्षितिज पर लाल-काले-पीले बादल उमड़ रहे थे—एक ओर से आँधी-सी कुछ उठ रही थी, कुछ दूर पुराने ठूंठ खड़े मनहूसियत बखेर रहे थे—दो-चार कुत्ते भौंक रहे थे। इन सबकी ओर से उसने आँख फेरी। और चल खड़ा हुआ खरामा-खरामा सीना तानकर—काम करने के लिए—गुनगुनाता हुआ कोई प्रेम गीत !!!

◇ ◇ ◇

१

गाँव बहुत छोटा है। उसमें कठिनाई से सौ-सवा सौ घर हैं; जिनमें अधिकांश कच्चे है। गाँव के निवासी कुछ थोड़े-से तो किसान अवश्य हैं, बाकी सब राजा साहेब के कर्मचारी हैं। दीवान, पेशकार, गुमाश्ते, सर्वराहकार, क़ानूनगो, मुंशी, मुत्सद्दी, मुख्तार, खजान्ची, सिपाही, प्यादे, खिदमतगार आदि। सबकी रिजक-रोजी राजा साहेब से चलती है। गाँव में एक छोटा-सा बाज़ार भी है। बाज़ार मे दस-बारह दुकाने है। मोदी, बिसाती, लुहार, सुनार, बढ़ई, मोची, बजाज, पंसारी; बस यही दूकानदार हैं। एक साइकिल मरम्मत की भी दूकान है। तालो और छातों की भी वहाँ मरम्मत होती है। एक दूकान गैस के हंडों को किराए पर देने वाले की है। वही से एक छोटा-सा बैंड बाजा भी किराए पर मिल सकता है। गाँव के किनारे पर पोस्ट आफिस है। हाल ही में तारघर भी इसमें खुल गया है। इसके पास अस्पताल है, स्कूल है, पर थाना या पुलिसचौकी गाँव में नही है। गाँव का चौकीदार अपने घर पर ही रहकर आवश्यकता होने पर पुलिस का काम कर देता है। जात का वह पासी है। किसानों में ठाकुर है, एक-दो मुसलमान भी है। गाँव के मोदी के भी खेत हैं। राजा साहेब की भी खुद काश्त है। राजा साहेब के पैलेस की चहारदीवारी लगभग आधे गाँव के बराबर घेरे में है। राजा साहेब अपनी कोठी को पैलेस कहते हैं। अतः हम भी उसे पैलेस ही कहेंगे। वास्तव में कोठी जैसी भव्य और विशाल है, उसे पैलेस कहा जाना कुछ अनुचित भी नहीं है। बड़ी शानदार कोठी है। उसमे ऊपर-नीचे सब मिलाकर पचासों कमरे हैं। सबमें फ्लैश की टट्टियाँ, गुसलखाने हैं। बढ़िया फर्श है। सब कमरे क़ीमती पलंगों, सोफों और दूसरे सजावट के सामानों से सजे हुए हैं। कोठी के सामने बहुत बड़ा लान है। यह कोठी तो राजा साहेब ने नई बनवाई है। पुराना महल इसके पिछले भाग में है। वह भी पुराने ढग की विशाल इमारत है। राजा साहेब का परिवार उसीमें रहता है। पुरानी कोठी के आगे एक छोटा-सा नजरबाग है। बहुत सुन्दर फूल-पत्ते उसमें लगे हैं। राजा साहेब स्वयं पुराने महल में ही रहते हैं।

शाम को इस नजरबाग में बैठते हैं। नए पैलेस में मेहमान लोग ठहरते हैं। मेहमानों का ताँता प्रायः लगा ही रहता है। राजा साहेब बड़े अतिथि-सत्कार-कर्ता है। मेहमान हफ्तों ठहरते है। राजा साहेब आग्रहपूर्वक उन्हें अपने यहाँ आने की दावत देते है। नया पैलेस दिखाते है। उसकी तारीफ़ से खुश होते हैं।

संगीत का राजा साहेब को बहुत शौक है। स्वयं भी कभी-कभी गाते हैं, या तबले पर संगत करते है। सगीत पर एक पुस्तक भी उन्होंने लिखी है। लिखकर स्वय ही छपाई भी है। आगत अतिथियों को वह पुस्तक अवश्य भेट करते है। एक न एक संगीतज्ञ, सरोदिया, पखावजी, सितारिया राजा साहेब के यहाँ बना ही रहता है। रात को देर तक संगत होती है। गाना-बजाना होता है। एक बूढे पण्डित जी काशी के रहने वाले है। संगीत के आचार्य कहे जाते है। वह रियासत के नौकर है। राजा साहेब के कुँवर को तथा जनाने मे स्त्रियों को भी वह संगीत की शिक्षा देते हैं। इससे प्रभात से ही तबला और सारंगी की धूमधाम शुरू हो जाती है।

राजा साहेब के व्यक्तिगत नौकर-चाकरों, सेवकों-गुमाश्तों तथा कर्मचारियों के घर पैलेस की चहारदीवारी के भीतर ही है। पैलेस के पिछवाडे एक उम्दा बाग है। बाग-बगीचे गाँव के बाहर भी अनेक हैं। राजा साहेब को बागात का भी शौक है। इस 'बाग में दो सौ से ऊपर तो केवल आम की ही जातियाँ है। आम की फसल में बहुत मेहमान तो आम खाने ही को यहाँ आते है। राजा साहेब उन्हें आग्रहपूर्वक बुलवाते हैं और अपने हाथों से काट-काटकर आम चखाते हैं। उनकी जाति और गुण-दोष वर्णन करते है। मेहमान जब आम चखकर तारीफ करते है, तो राजा साहेब खुश होते हैं। रियासत बहुत ही छोटी है, और राजा साहेब एक ताल्लुकेदार हैं; परन्तु रियासत के कर्मचारी उन्हें महाराज कहते हैं। आगत अतिथि भी उन्हें सम्मुख बातचीत के समय महाराज ही कहते है। महाराज कहने से राजा साहेब खुश होते हैं। बहुत-से मेहमान केवल राजा साहेब को खुश करने के लिए ही रियासत में आते हैं। कोई गुणी होता है तो अपने गुण से; जो गुणी नहीं होता है, तो चापलूसी और गपशप से। सबका दृष्टिकोण यही रहता है कि महाराज को जैसे सम्भव हो हँसाया जाय। जो इसमें सफल होता है, उसे जल्दी विदा नहीं दी जाती। और कुछ और ठहरने का अनुरोध किया जाता है। राजा साहेब को कुत्ते पालने का भी भारी शौक है।

कुत्तों की एक जोडी गधे के बराबर है, जो पाँच हज़ार रुपयों में खरीद की गई थी। उनकी सेवा-टहल के लिए पृथक् नौकर हैं, जो उन्हें नहलाते हैं, खाना पकाकर खिलाते हैं। गद्दों पर सुलाते है। प्रति सप्ताह लखनऊ से पशुओं का डाक्टर उन्हें देखने आता है। एक जोडी कुत्तों की ऐसी है जिसे राजा साहेब शाम को हवाखोरी के वक्त अपने तनजेब के पुश्ते की जेब मे रखते हैं। इस कुत्ता-दम्पति को मोटर मे बैठाकर हवा खिलाई जाती है। यह काम सुरक्षा के विचार से किया जाता है। पैदल हवाखोरी करने पर अकस्मात दूसरे कुत्तों के हमले करने, धूल-गर्द के करण उनकी नाक में घुसने तथा उनके बीमार पड़ जाने का भय है। इसी से उन्हें मोटर में हवा खिलाई जाती है। यह जोड़ी पन्द्रह सौ मे खरीद की गई थी। कुत्ते और भी है। इन कुत्तों के बच्चों की फर्माइश बराबर राजा साहेब पर बनी रहती है। बड़े-बड़े अंग्रेज अफसर और राजा-महाराजा भी उनसे इन कुत्तों के पुत्र-पुत्रियों की याचना किया करते है। पर राजा साहेब बहुधा उन्हें भारी मूल्य में बेच देते हैं।

एक शौक राजा साहेब को पुरानी मोटरें खरीदने का भी है। दस-पाँच पुरानी मोटरे आपके यहाँ बनी ही रहती हैं। उनकी मरम्मत के लिए मिस्त्री लोग है, जो बराबर मरम्मत करते रहते है। मोटरों की मरम्मत और रंग-रोगन करके राजा साहेब उन्हें मुनाफे पर यार-दोस्तों को बेच देते हैं। गाँव में बिजली नही है। पर राजा साहेब के पैलेस में जरूर बिजली है। उनका अपना एक छोटा-सा बिजलीघर है, जो बैटरी से बिजली बनाता है। बिजली का शौक राजा साहेब को इस कदर है कि यात्रा में भी दस-बीस बिजली की बत्तियाँ और उनकी बैटरी साथ रखते हैं। पियक्कड़ भी राजा साहेब एक नम्बर के हैं। शाम को रोजाना शौक फ़र्माते हैं। अधिकांश मेहमान उनकी इस शाम की मजलिस मे शरीक होते हैं। और यदि तीन-चार दोस्त एक शाम जम गए तो तीन-चार सौ की चपत राजा साहेब पर पड़ती है। पर इसकी उन्हें क्या परवाह है? अब कुछ दिन से तो राजा साहेब अपने यहाँ ही मसाले की शराब बनाते हैं। उसे सौगात के तौर पर अफसरों तक को पेश करते हैं। आबकारी का महकमा राजा साहेब की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता।

परन्तु ये सब तो राजा साहेब के छोटे-मोटे शौक है। उनका सबसे बड़ा शौक है बीमार रहना। राजा साहेब हमेशा बीमार रहते हैं। वैद्य, हकीम, डाक्टर

निरन्तर उनके यहाँ आते रहते हैं। दवा-दारू सबकी खिल-मिल चलती रहती है। राजा साहेब के मसनद के बगल में एक छोटी-सी आलमारी सिर्फ दवाइयों से भरी रहती है। बीमारी क्या है, इसका पता न हकीम-डाक्टरों को लग पाता है, न स्वयं राजा साहेब को। पर यह ध्रुव निश्चय है कि राजा साहेब बीमार हैं। बहुत बीमार है। उन्हें इस बात की सख्त शिकायत है कि सब लोग उनकी बीमारी के प्रति उपेक्षाभाव रखते हैं। हकीम-डाक्टर गधे है। कुछ समझते ही नहीं हैं। नौकर और घर के लोग उनकी परवाह नहीं करते, सब मक्कार और खुदगर्ज हैं। परन्तु प्रत्येक मुलाकाती का, चाहे वह रियासत का नौकर हो या रिश्तेदार या आगत अतिथि, पहला फर्ज है कि राजा साहेब के सामने आते ही अत्यन्त गम्भीर और व्यस्त भाव से राजा साहेब की तबियत का हाल पूछे। और यह भी जरूरी है कि राजा साहेब निहायत पितलाया-सा मुँह बनाकर अपने डेढ-दो दर्जन रोगों का उल्लेख कर दे। साथ ही हकीम-डाक्टरों की अयोग्यता, नौकर-चाकरों की बेवफाई, और घरवालों की लापरवाही की शिकायत करें। ऐसी हालत में मुलाकाती का यह फर्ज है कि दो-चार मिनट राजा साहेब की हमदर्दी में नीचा सिर झुकाए, अत्यन्त चिन्तित-सा खामोश बैठा रहे। इसके बाद बातचीत-गपशप का सिलसिला शुरू हो, क़हक़हे लगें, लतीफे चलें तो हर्ज नहीं।

राजा साहेब का नाम भी भारी-भरकम है। राजा रुद्रप्रतापनारायणसिंहजू बहादुर हरवंसी। और रियासत का नाम है राजगढ। वह छोटा-सा सौ-सवा सौ घरों का गाँव राजगढ ही कहाता है। जो छोटी लाइन के स्टेशन से दस मील दूर, और पक्की सडक से तीन मील के फासले पर है। पर राजा साहेब ने अपनी मोटर के लिए यह तीन मील की पक्की सडक बनवाई हुई है। अलबत्ता उस पर सर्वसाधारण की चलने की एकदम मनाही है।

२

अपने खानदान और रियासत के इतिहास के सम्बन्ध में राजा साहेब जब-तब मौज में आकर बहुत-सी मजेदार बातें कहा करते हैं। आपका कहना है कि हमारे दादा जान डाकू थे। डाकुओं का एक अच्छा-खासा गिरोह उनके अधीन था—जिसका आतंक समूचे बैसवाडे में था। दूर-दूर तक वह धावे मारता—और लूट-मार के माल में दसवाँ हिस्सा राजा साहेब को मिलता था। उस ज़माने मे गाँव तो राजा साहेब की अमलदारी में पाँच-सात ही थे पर कहाते थे वे राजा साहेब ही। इसके अतिरिक्त वे स्वयं कभी डाकेज़नी में नही जाते थे। परन्तु डाकुओं का यह जत्था उन्ही की छत्रछाया में अपना धन्धा धड़ल्ले से करता था—डाकुओं में बहुत लोग राजा साहेब के भाई-बादर ही थे। उनकी ज़िन्दगी मे ही सत्तावन का विद्रोह फूटा। लखनऊ के नवाब वाजिद अलीशाह की उन पर कृपा थी। पर जब वाजिद अलीशाह राज्यच्युत करके कलकत्ता भेज दिए गए, तो तत्कालीन राजा साहेब एकदम अंग्रेज-भक्त बन गए। और सत्तावन के विद्रोह में उन्होने अनेक अंग्रेज अफ़सरों और उनके बाल-बच्चों को अपनी रियासत में पनाह दी। विद्रोह जब शमन हो गया और अंग्रेजी अमल फिर से जमकर बैठ गया तो राजा साहेब पर प्रसन्न होकर अंग्रेजी सरकार ने बारह गाँवों का एक ताल्लुका इनाम में दे दिया तथा राजा का खिताब भी परम्परा के लिए आपको दे दिया। इसके बाद रियासत का रंग-ढंग बदल गया—और डाकेज़नी का पुराना पेशा लगभग छूट गया। रियासत का काम एक क़ायदे से होने लगा। दीवान, मुत्सद्दी, सर्वराहकार, क़ानूनगो, चपरासी, कारकुन और अमले सब बाकायदा रियासत की देखभाल करने लगे। बाक़ायदा अंग्रेजो की मालगुज़ारी अदा की जाने लगी—तथा राजा साहेब भी बुढापे में इज्जतदार रईसों की तरह रहने लगे। वर्तमान पुराना महल भी उन्होंने उसी ज़माने में बनवाया था। और एक हाथी खरीदा था। परन्तु एक बात पुरानी मर्यादा की अब भी बनी रही, वह यह कि कोई बारात चाहे रियासत की हो या बाहर से रियासत में होकर गुजरे, या रियासत में शादी करने आए—जब तक राजा साहेब से आशीर्वाद न ग्रहण कर ले—

सही-सलामत ब्याह करके घर वापस नही पहुँच पाती थी; राह में ही लुट जाती थी। और उसकी कोई कही दाद-फर्याद नहीं सुनी जाती थी। राजा साहेब के आशीर्वाद ग्रहण करने का तरीका यही था कि बहुत-सा दावत का सामान मैदा, घी, चीनी, दही, मछली, खस्सी और नकदी आदि अपनी हैसियत के अनुसार लेकर दूल्हा और दूल्हे का बाप बिरादरी के दो-चार इज्जतदार आदमियों को साथ लेकर राजा साहेब के हुजूर मे हाज़िर होता और दावत का वह सामान नज़र करके आशीर्वाद की अरदास करता। राजा साहेब भेंट मे आई वस्तु का सब व्यौरा जानकर प्रसन्न हो ब्याह करने की आज्ञा देते, भेंट स्वीकार करते। बारात यदि कही रियासत के गाँवों मे ही आई होती तो लड़की वाले को सरकारी लकड़ी काट लेने आदि की छोटी-मोटी सुविधाएँ देते; और बारात राजी-खुशी ब्याह करके अपने घर लौट जाती तो समझा जाता कि राजा साहेब का आशीर्वाद मिल गया।

ब्याह-शादी की भाँति और भी ऐसे ही आमदनी के सीग़े राजा साहेब को थे। रियासत मे जब कोई आदमी मर जाता, तो जब तक राजा साहेब को एक बंधा हुआ नजराना न मिल जाता, उसके उत्तराधिकारी की पगड़ी नहीं बँध पाती थी। इसका अर्थ यह था कि वह कानूनन मृत पुरुष की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी नही माना जाता था, भले ही वह मृत व्यक्ति का सगा पुत्र ही क्यों न हो। ऐसे मामलों में जहाँ उत्तराधिकारी औरस न होकर दत्तक पुत्र होता—या भाई-ब्रादर कोई उत्तराधिकार का दावेदार होता, या विधवा ही मृत व्यक्ति की जमीन-जायदाद की स्वामिनी होना चाहती, तब यह नजराना जरा भारी-भरकम हो जाता था। राजा साहेब के प्रसन्न होने पर उत्तराधिकार की सब बाधाएँ दूर हो जाती थी।

राजा साहेब के परिवार मे ब्याह-शादी या कोई खास समारोह उठ खड़ा होने पर रियासत के सब छोटे-बड़ों को अपनी-अपनी हैसियत के अनुसार नज़र, भेंट, सौगात और बेगार देनी पड़ती थी। रियासत के बज़ाज, मोदी, बिसाती और दूसरे सौदागरों से बहुधा उधार सामान रियासत मे आता, और उसके मूल्य का बहुत कम हिस्सा वापस बेचारे दूकानदार को मिलता था। इसी तरह इस रियासत की रईसी चलती थी। अंग्रेजी जागीर प्राप्त होने के बाद राजा साहेब ने जब हाथी खरीद लिया तो वे जब कभी बाहर निकलते, हाथी पर

ही निकलते थे। बहुधा अंग्रेज अफसर और अफसरों के यार-दोस्त रियासत में शिकार खेलने आते तो राजा साहेब, हाथी-घोड़े, प्यादे देकर उन्हें अच्छी तरह शिकार खिलाते, उनकी खातिर-तवज्जुह करते। ऐसे मौकों पर रियासत के अमलों को आम हुक्म होता था कि रियासत मे रियाया की जो भी काम की चीज हो वह ले ले; उसकी क़ीमत बाद में अदा कर दी जायगी। पर वह चीज तो तुरन्त ले ली जाती, किन्तु उसकी कीमत अदा होने का शायद ही कभी अवसर आता था। ऐसे मौकों पर अमले लोग अपना उल्लू भी सीधा करते थे, आधा माल उन्हीं के पेट मे जाता था।

राजा साहेब काफी उम्र में मरे। उनके मरने पर जब वर्तमान राजा साहेब के पिता राजा हुए तो उनका दबदबा भी खूब रहा। वे भारी डीलडौल के आदमी थे। दाढी रखते और कुछ पहलवानी का भी शौक रखते थे. गाने-बजाने का तो शौक क्या एक रईसी रिवाज था। मिजाज इन राजा साहेब का ज़रा तेज़ था, पर आदमी खरतल थे। पुरानी आमदनी के सब ज़रिये इन नए राजा साहेब की अमलदारी में भी क़ायम रहे। नई बात यह हुई कि कुछ बराबर की रियासतों से खटपट बढ गई, और मुकदमेबाज़ी शुरू हो गई। इसी सिल-सिले में जब-तब फौजदारियाँ हो जाती। खून भी हो जाते, और इस तरह मामले मुकदमों का दौर बढता ही गया। रियासत की आमदनी जरूर अब काफी बढ़ गई थी परन्तु खर्चे भी कम न थे। और मुकदमेबाजी ने इसमे और वृद्धि कर दी थी। दो-चार पहलवान और दस-पाँच लठैत राजा साहेब की ड्योढ़ी पर बने ही रहते थे। ये लठैत छटे हुए बदमाश, बहुधा जेल से छूटे हुए डकैत होते थे, जो बडे ही खतरनाक लड़ाकू और खूनी होते थे। राजा साहेब के इशारे से चाहे जिसका सिर फोड़ देना, चाहे जिसकी खडी फसल जला देना, चाहे जिसके घर-गाँव में आग लगा देना या किसी की बहू-बेटी को दिन-दहाड़े उड़ा भागना इनका बाएँ हाथ का खेल होता था। राजा साहेब का हाथ इन पर था। और ये अपना खर्चा बहुधा आप ही कमा लेते थे। आसपास की दूसरी रियासतें इनसे डरती थी और इनके कारण राजा साहेब का आतक दूर-दूर तक फैला था। परन्तु राजा साहेब फिज़ूल खर्च थे, और हिसाब-किताब भी उनका ठीक न था, न रियासत का ठीक प्रबन्ध कर सकते थे, इस कारण उन्होंने रियासत पर बहुत-सा कर्ज़ा कर लिया था, और उनके कई इलाके रहन हो गए थे। अदालत

से उन पर कुर्की आ गई थी, किन्तु क्या मजाल कि अमीन या कर्जदार कुर्क करा सके। यह उनके लठैतों का प्रताप था।

३

मुन्शी नौरंगराय रियासत के पुराने दीवान हैं। पूरे पचास बरस से मुन्शी जी रियासत में दीवानगीरी कर रहे है। वर्तमान राजा साहेब के पिता इन्हें बहराइच ज़िले से लाए थे, जहाँ वह एक देहाती स्कूल के साधारण अध्यापक थे। मिडिल पास थे। तनख्वाह मिलती थी छः रुपए महावार। अवस्था थी उस समय उनकी सत्रह-अठारह बरस की। राजा साहेब ने उन्हें एक फुर्तीला-चुस्त और जी-हुजूरी में मुस्तैद युवक समझकर दस रुपए महावार पर अपनी रियासत के दीवान पद पर प्रतिष्ठित किया था। अपनी स्वामि-भक्ति, मेहनत, प्रतिभा, और प्रत्युत्पन्नमति के कारण मुन्शी नौरंगराय ने राजा साहेब को प्रसन्न ही नहीं कर लिया, अनेक अवसर पर रियासत को कठिनाइयों से भी उबारा। इस समय उनकी अवस्था बहत्तर बरस से ऊपर ही हो चुकी है। पर चुस्ती और मुस्तैदी में वही कमाल हासिल है। देखने में भी आप एक भव्य राज पुरुष प्रतीत होते हैं। सुन्दर सफेद दाढ़ी, लम्बा किन्तु दुबला शरीर, चश्मे से झाँकती हुई आँखें, गौर वर्ण, शरीर पर चुस्त पायजामा और शेरवानी, सिर पर सफेद साफा, होठों पर मन्द मुस्कुराहट। कम बोलना, अधिक काम करना और मालिक को प्रसन्न रखना—ये उनके तीन गुर थे, जिनकी बदौलत उन्होने इस नौकरी पर पचासा पूरा किया है।

मुन्शी नौरंगराय श्रीवास्तव कायस्थ हैं, पढ़े-लिखे केवल मिडिल तक उर्दू ही हैं। परन्तु योग्यता उनकी बहुत है। लिखते हैं बहुत खुशखत। बहुत कम गुस्सा उन्हें आता है। राजा साहेब उन्हें मानते हैं, उनका लिहाज भी करते हैं। असल में दीवान जी ही रियासत के कर्ता-धर्ता-विधाता है। वह जो चाहें वही करते हैं। राजा साहेब उनके काम में दखल नहीं देते। बहुत बार दीवान जी ने इस्तीफा दिया। नौकरी से छुट्टी पानी चाही। परन्तु राजा साहेब

ने छुट्टी नहीं दी। राजा साहेब को वह बड़े सरकार कहते हैं। और कुँवर साहेब को छोटे सरकार। राजा साहेब और कुँवर साहेब की छोटी से छोटी आवश्यकताओं की पूर्ति भी वह बड़े मनोयोग से करते हैं। वह कहा करते हैं—भई, असल रियासत तो ये रईस ही हैं। रईसों के वह गुणों के भी कायल है और दोषों के भी। वह उनके दोषों को भी गुण कहते है। कोई शिकायत करता है तो कहते हैं—भई, रईस है; कुछ तुम्हारे जैसे चरकटे नही। वे जो कुछ करें वही ज़ेब। फारसी शेर पढ़ने और फारसी मिश्रित भाषा बोलने का उन्हें शौक है। सैकड़ों शेर और उनके रचयिताओं के नाम उनकी जबान पर है। बात-बात में वह शेर जड़ते हैं। बातचीत उनकी वह लच्छेदार फसीह लखनवी उर्दू होती है कि एकाएक यह नही कहा जा सकता कि वह केवल मिडिल पास हैं। बड़े-बड़े फारसीदाँ मुन्शी उनकी जोत को नही पहुँचते। तनख्वाह अब उन्हें पचास रुपए महावार मिलते है। पर उन्हें तनख्वाह देता और उसका हिसाब लेता कौन है? वह स्वयं ही अपने को दे लेते हैं। राजा साहेब को रियासत की किसी भी बात की खबर नही रहती, सब काम मुन्शी जी ही करते है। बस सबसे ज़रूरी बात यह है कि राजा साहेब या कुँवर साहेब को जब जरूरत हो वह रुपए दे दे। परन्तु राजा साहेब अपने पिता के समान फजूल खर्च नही है, एक हद तक कंजूस हैं। इन्होंने पिता की गद्दी पर बैठकर न केवल सब कर्जा ही चुका दिया है अपितु कुछ रकम खजाने में जमा भी की है। निस्सदेह यह सब दीवान साहेब की कारस्तानी है, परन्तु श्रेय इसका दिया जाता है राजा साहेब को ही।

कुँवर साहेब जरूर ज़रा खुले हाथ खर्च करते है। पर वह अभी लडके हैं। खून उनका नया है। नए हौसले हैं। मुन्शी जी यह बात जानते हैं। और उनके किसी भी शौक को बिना पूरा किए नही छोडते। परन्तु नजर उन पर बाप की रखते हैं। कुँवर साहेब भी दीवान जी को बहुत मानते हैं। कुंवर साहेब राजा साहेब को दाता कहते है, और दीवान साहेब को अप्पा कहते हैं। संक्षेप में, बात यह है कि दीवान साहेब रियासत के नौकर नही हैं, राजा साहेब के घरेलू सदस्य हैं।

दीवान साहेब के नौ बेटे-बेटियाँ हैं। सात बेटे और दो बेटियाँ। बेटियों को उन्होंने बड़े घरों में ब्याहा है और बेटों को उच्च शिक्षा दी है। उनके तीन पुत्र उच्च सरकारी नौकर हैं। एक डिप्टी कलक्टर है। दो मुन्सिफ हैं। एक

पुत्र विलायत पढ़ने गया है। तीन भिन्न-भिन्न कालेजों और स्कूलों में पढ़ रहे हैं। इनमें से दो सबसे छोटों को छोड़कर शेष सब कुँवर साहेब से उम्र में बड़े हैं। परन्तु क्या मजाल कि अदब-कायदे का भंग करें। सभी उन्हें पिता की भाँति छोटे सरकार और राजा साहेब को बड़े सरकार कहते है।

ईश्वर की अनुकम्पा है कि दीवान साहेब की पत्नी भी अभी जीवित है। उम्र उनकी भी दीवान साहेब से कुछ ही कम होगी। पुत्रों, पुत्र-वधुओं, पौत्रों-पौत्रियों और नातियों के कोई बाईस प्राणियों के परिवार का संचालन वह करती है। बड़ी पुण्य-दर्शना है दीवान साहेब की धर्मपत्नी। सस्कृत की पण्डिता है। नित्य गीता का पाठ करती है। पुण्य, धर्म, तीर्थ, व्रत, उपवास मे उनकी आस्था है। पुरोहित नित्य आकर उनसे पूजन-पाठ सम्पूर्ण कराता है।

मुन्शी जी कायस्थ है इस लिए खाते भी है, पीते भी है। परन्तु उनकी पत्नी इन सबसे पाक साफ है। घर मे चौके की पूरी निष्ठा वह रखती है। मांस वहाँ नही पक सकता। जब आवश्यक होता है बाहर मर्दाने में पकता है। उनके बर्तन भी हवेली मे नही आ सकते है। मुन्शी जी पीते भी कायदे के भीतर ही है और अब तो और भी सीमित हो गया है खाना-पीना। राजा साहेब यद्यपि बड़े पियक्कड़ हैं परन्तु न तो वह कभी दीवान जी के सामने पीते है न दीवान जी ही कभी पीकर राजा साहेब के सामने जाने का साहस कर सकते हैं।

४

राजा साहेब के अन्तःपुर में नाते-रिश्ते की दर्जनों औरते है। पर उनमें सगी-सम्बन्धिनी है केवल दो। एक उनकी वृद्धा माता, जिनकी अवस्था इस समय अट्ठासी वर्ष की है। दूसरी है उनकी पुत्र-वधू जिसने अभी केवल इक्कीस बसन्त देखे हैं। वृद्धा माता का नाम है रानी रत्नकुँवरि, वह आठ बरस की आयु में इस घर में वधू बनकर आई थी। और आज अस्सी बरस से उन्होने यह ड्योढ़ी नहीं लाँघी है। राजपरिवार में परदे का जैसा कड़ा प्रतिबन्ध होता है, वैसा ही इस परिवार में भी है। एक बड़े तल्लुकेदार की बेटी है। पढ़ी-लिखी

बहुत कम हैं। परन्तु पूजा, व्रत, उपवास, धर्म, कर्म, दान-दक्षिणा में उनकी अत्यधिक रुचि है। चालीस बरस से वह विधवा है। विधवा होने के बाद तो उनका यह धर्म-कर्म नित्य का जीवन बन गया है। उन्होंने तीन बार चार-धाम की यात्रा की है। अनेक मंदिर-शिवाले-कूंए-धर्मशालाएँ बनवाई हैं। अनेक पाठशालाएँ तथा सदावर्त और पौशालाएँ उनके नाम पर चलती हैं। फिर भी इस आयु तक भी वह पर्दे की बड़ी पाबन्द हैं। क्या मजाल है कि कोई पर-पुरुष उनकी उंगली की पोर भी देख ले। अन्तःपुर का अवरोध उनका सबसे बडा संयम है। वह अपने हाथ से रांधकर केवल एक बार हविष्यान्न खाती है। किसी का छुआ वह नहीं खाती। न कोई उन्हे स्पर्श कर सकता है। उनके कक्ष मे केवल ब्राह्मणी को छोड़ दूसरा कोई पराया आदमी नही जा सकता। अवरोध में उनकी पूरी हुकूमत चलती है। माँ जी महाराज के नाम से बाहरी लोग और दादी जी के नाम से घर के आदमी उन्हे सम्बोधन करते है। यद्यपि वह स्वयं बहुत कम पढ-लिख सकती है, पर नित्य प्रात.काल उनके यहाँ ब्राह्मण आकर पुराण, रामायण, भागवत, महाभारत के प्रवचन करता है, वह श्रद्धापूर्वक श्रवण करती; सन्ध्यावन्दन-पूजा, भोग, ठाकुर-सेवा स्वय करती हैं। रोगी होने पर वह कोई औषध नही लेती केवल गंगाजल लेती है। उनके पास अपना बहुत धन है और उनकी निजू जायदाद की देख-भाल उनका अपना कारिन्दा करता है।

राजा साहेब की पुत्रवधू का नाम है प्रमिला रानी। वह एक हिजहाइनेस की पुत्री है। रियासत में सब लोग उन्हें कुँवरानी कहते है। उन्होंने पितृगृह में बी. ए तक शिक्षा पाई है। संगीत की भी उन्हें थोड़ी शिक्षा दी गई है। उपन्यास पढने का उन्हे बहुत शौक है। हँसती भी बहुत हैं। वास्तव मे कुँवरानी एक खुलेदिल की खुशमिज़ाज स्त्री हैं। स्वास्थ्य उनका साधारण है, उन्हे खासतौर पर रूपवती भी नहीं कहा जा सकता। परन्तु वह कुरूप भी नही है। रंग उनका अधिक गोरा नही है; उज्ज्वल साँवला-सलोना रूप है। चेहरे की बनावट आकर्षक है। बडी-बडी आँखों में मद है और लावण्य की प्रभा से उनका मुखमण्डल देदीप्यमान है। दाँत उनके बहुत सुन्दर हैं। कद मे वह जरा लम्बी हैं। यों वह दुबली-पतली युवती हैं, पर अग उनके सुडौल और मांसल हैं। अंग की गुलाइयाँ उभारदार हैं। सब मिलाकर वह एक आकर्षक युवती हैं।

अन्तःपुर की अन्य नाते-रिश्ते की स्त्रियों में एक महिला ऐसी हैं, जिनका खासतौर पर उल्लेख करने की आवश्यकता है। इनका नाम है चन्द्रमहल रानी। वह रिश्ते में राजा साहेब की भाभी होती हैं। वह विधवा हैं। उनके पति की रियासत कर्जे के कारण कोर्ट आफ वार्ड के अधीन चली गई थी। वहाँ से अब उन्हें कुछ गुजारा मिलता है। यह असाधारण रूपवती हैं। कहना चाहिए—रूप-गर्विता हैं। अंग-प्रत्यग साँचे मे ढला हुआ है, वह संगमरमर की एक प्रतिमा-सी लगती है। स्वास्थ्य भी उनका बहुत अच्छा है। अभी उनकी आयु पच्चीस बरस की ही है—परन्तु वह इससे भी कुछ कम ही प्रतीत होती हैं। उनकी बडी-बडी रतनार आँखें, कुचित घुंघराले पादचुम्बी केश, सुडौल नासिका, बिम्ब-से लाल अधर, हीरे-सी उज्ज्वल दन्त-पंक्ति, उभारदार वक्ष और केहरी-सी क्षीण कटि सब कुछ अद्‌भुत है। अपने वैधव्य की उन्हें तनिक भी परवाह नही है। वह खूब सज धजकर ठाठ से रहती है। अन्त.पुर में उनकी अपनी दो परिचारिकाएँ हैं, जो सदैव उनकी सेवा और आज्ञा पालन में तत्पर रहती है। वह बडी विदुषी स्त्री है। संस्कृत और अंग्रेजी के साथ हिन्दी और उर्दू की कविता का भी उन्हें शौक है। वह हिन्दी-उर्दू दोनों भाषाओं मे कविता करती है। उनकी कविता का विषय शृगार रस होता है। वास्तव मे वह मूर्तिमती शृगार हैं। धर्म-कर्म, पूजा-पाठ से वह कोसों दूर हैं। इन सब कामों को वह ढकोसला समझती है। बहुधा वह दादी जी की हँसी उड़ाया करती है। सबसे बड़ी बात यह है कि वह घर-बाहर किसी की भी आन नही मानती। यहाँ तक कि राजा साहेब और माँ जी साहेब की भी परवाह नही करती। उनके कमरे में बहुधा अन्त पुर की स्त्रियों की दावतें उड़ती या जलसे हुआ करते हैं। वह एक बरसाती उमड़ती हुई नदी के समान हैं, जो अपनी अनवरत गति से बही चली जा रही है। रूप के साथ उन्हें अपने पाण्डित्य का भी बडा घमंड है। वह प्रायः व्यग्यपूर्ण भाषा में सबकी खिल्ली उड़ाया करती हैं। विवाद मे उन्हें हराना कठिन है। संक्षेप में वह सर्वतन्त्र स्वतन्त्र हैं। परन्तु यह उनका असाधारण व्यक्तित्व भी पर्दे के बन्धन से उन्मुक्त नहीं हो सका है। अन्त पुर से बाहर वह क़दम नहीं रख सकती हैं। कुँवरानी श्रीमती प्रमिला रानी अवश्य ही इनके जोड-तोड़ की महिला हैं। प्रथम तो वह ग्रेजुएट हैं; राजवर्गी जनों में स्त्री तो क्या पुरुष भी ग्रेजुएट विरले ही हैं। परन्तु वह एक

छत्रधारी राजा की बेटी होने के नाते भी गरिमावती हैं। इसी से चन्द्रमहल की रानी पर कुँवरानी का थोड़ा रुग्राब ग्रवश्य है। पर कुँवरानी ग्रल्पवयस्क, शर्मीली ग्रौर मितभाषिणी हैं, ग्रतः चन्द्रमहल की रानी ज़रा उनसे दबती हैं, परन्तु ग्रायु ग्रौर ज्ञान का बड़प्पन वह रिश्ते से भी ग्रधिक रखती हैं।

इसी ग्रन्तःपुर मे एक ग्रौर स्त्री है। वह राजा साहेब की रिश्ते में मौसी होती है; सब लोग उसे मौसी ही कहते हैं। बड़ी टेढी ग्रौरत है वह। उम्र उसकी पचास के लगभग है। वह बडी तेज-तर्रार, लड़ाकू ग्रौर दबग ग्रौरत है। यहाँ रहते उसे मुद्दत हो चुकी है। उसके साथ उसका एक पुत्र भी है, जिसकी ग्रायु ग्रब तीस को पहुँच चुकी है। वह एक ग्रावारागर्द, बदचलन ग्रौर लफंगा ग्रादमी है। उसमे सब गुण पूरे हैं। शराब, कोकीन, ग्रफ़ीम, भंग, चण्डू, मदक इनमे से कोई नशा ऐसा नही बचा जिसका वह दिल भरकर सेवन न करता हो। सब लोग उसे राजा भैया कहते है। उसकी ग्रपनी जायदाद थी, जिसके दो गाँव बेचबाचकर पचा चुका है। ग्रब तो थोड़ी-सी जायदाद बची है, उसीकी ग्रामदनी से वह ग्रपने सब शौक़ पूरे करता है। परन्तु उसके शौक इतने ग्रधिक हैं कि उन्हें पूरा करने के लिए कारूँ का ख़ज़ाना भी कम है। यों उसके पिता की रियासत काफ़ी बड़ी थी। पर उसे तो उसके पिता ही ठिकाने लगा गए थे। उनका घराना बादशाही ज़माने से काफ़ी प्रतिष्ठित था। परन्तु वह बड़े शराबी ग्रौर विलासी ग्रादमी थे। शराब पी-पीकर वह ग्रनेकों ग्रसाध्य रोगो के शिकार होकर ग्रन्त में बुरी मौत मरे थे। जीते-जी उनकी पत्नी से कभी न बनी। पत्नी बहुधा ग्रपने बेटे के साथ उनके जीवन-काल से ही मायके रहती थी। ग्रब उनके मायके में भी कोई नहीं बचा था। इसलिए वह पुत्र सहित राजा साहेब के रनिवास की शोभा बढा रही थीं।

राजाग्रों के ग्रन्तःपुरों मे स्त्रियाँ स्त्रियों की भाँति नहीं रहतीं; न उनका स्त्री समझकर ग्रादर-सम्मान होता है। यद्यपि राजगृहों मे सुख-विलास के साधन बहुत होते हैं। बहुधा ऐसे सुख-साधन ग्रच्छे सम्पन्न गृहस्थ की स्त्रियों को उपलब्ध नही होते, फिर भी राज परिवार की स्त्रियों के भाग्य में सुख प्रायः होता ही नहीं। रोते-धोते ही उनके दिन जाते हैं। परन्तु उनका रोना-धोना वेश्याग्रों के घुँघरुग्रों की झंकार ग्रौर शराब के जामों में प्रायः डूब जाता है। कोई उन ग्राँसुग्रों को देखता नहीं—उनकी परवाह भी नहीं करता। फिर भी

रानी होने के अभिमान के सहारे वे अपना गर्व और सौभाग्य कायम रखती हैं। दाम देकर उन्हें विधाता से अपना सौभाग्य प्राप्त करना पड़ता है। प्रतिदिन सौभाग्य का मूल्य चुकाना पड़ता है। उसी मूल्य पर उनका अधिकार स्थित होता है। रनिवास की रानियों का प्रायः ऐसा ही फूटा भाग्य होता है। यह स्त्री इसका एक उदाहरण है। और संभवतः जीवन की परिस्थितियों ने ही उसे इस प्रकार टेढी और तेज़-तर्रार बना दिया है। इस स्त्री का नाम तारा है, परन्तु सब बाहर-भीतर के छोटे-बड़े लोग उसे मौसी ही कहते है।

महल मे नौकरानियाँ, दासियाँ, महरियाँ तो है ही, कुछ दारोगिनें भी हैं। जिनमें दो तो कुँवरानी की दारोगिने हैं, जो उनके साथ दहेज में आई थीं। दोनों कुँवरानी से भी अधिक सुन्दरी है। और यद्यपि वे कुँवरानी को अन्नदाता कहतीं और उनकी सब सेवाएँ करती है, पर रहती ठाठ से हैं। दो-चार दारोगिनें और भी है। ये सब नौकरानियाँ प्रायः बड़ी ही मुँहफट, कामचोर और ईर्ष्यालु हैं। इनके कारण अन्तःपुर का वातावरण बहुत अशान्त रहता है।

५

कुँवर साहेब इस राजघराने में अवश्य ही एक निराले पुरुष है। उनका नाम सुरेश सिंह है। और वह इस समय काशी विश्वविद्यालय में कानून पढ़ रहे हैं। उन्होंने प्रथम श्रेणी में वही से एम. ए. पास किया। वह एक सच्चरित्र, दृढ़ स्वभाव और गम्भीर प्रकृति के तरुण हैं। राजाओं के रहन-सहन और दुर्गुणों को उन्होने निकट से देखा था, और वह उनसे घृणा करते है। उनका रहन-सहन सीधा-सादा है। वह साहित्यिक प्रवृत्ति के तरुण हैं, और चाहते हैं कि राज वर्ग में एक क्रान्ति करें। अपने विचार और रहन-सहन से उन्होंने एक हद तक क्रान्ति की भी है। राजवर्गी जनों मे वह पहले ही तरुण हैं, जिन्होंने एम. ए. तक शिक्षा पाई है और अब कानून पढ़ रहे हैं। वह शराब नही पीते, नाच-मुजरों में शरीक नहीं होते, मांस नही खाते, शिकार का शौक भी उन्हें नहीं। कहना चाहिए कि राजवर्गी जनों में वह एक अपवाद हैं। विवाह

राज के पिता गजराजसिंह पुराने टाइप के क्षत्रिय थे। अपने खानदानीपन का उन्हें बड़ा खयाल था। वे एक छोटे से ज़मीदार थे। उनके तीन पुत्र और एक पुत्री थी, सबसे बड़े पुत्र त्रिलोकसिंह आगरा में ही वकालत करते थे। मझले आई० सी० एस० पास करने इंग्लैंड गए थे, सबसे छोटे स्थानीय कालेज में पढ़ते थे। कन्या राजवती उनकी तीसरी सन्तान थी, उसने एम. ए. फाइनल किया था। ठाकुर गजराजसिंह यद्यपि अपने खानदानी रुतबे का खयाल रखते थे, फिर भी वे एक देश-भक्त समझदार और धर्म भीरु पुरुष थे। सन्तान को उच्च शिक्षित बनाने के वे पक्ष मे थे। उदार सुधारवादी थे तथा आर्य समाजी विचार रखते थे। वे स्वामी दयानन्द के भाषणों को सुन चुके थे। स्त्री-शिक्षा के वे भारी समर्थक थे, बच्चों की शिक्षा की सहूलियत के लिए ही वे आगरा में आ बसे थे। जहाँ उनके ज्येष्ठ पुत्र त्रिलोकसिंह प्रैक्टिस कर रहे थे।

त्रिलोकसिंह कांग्रेसी विचार रखते थे। वे अपनी प्रैक्टिस मे कम और देश की राजनीति में अधिक ध्यान देते थे। प्रैक्टिस धीमी चल रही थी। वे एक परिश्रमी, मितभाषी और निष्ठावान् वकील थे। दीन-ग़रीब किसानों के प्रति उनका खिचाव था। उनका रहन-सहन सादा, विचार गभीर और व्यक्तित्व सरल था।

मझले वीरेन्द्रसिंह तेजवान पुरुष थे। मिजाज भी उनका तीखा था। खानदानीपन के विचार उनके पिता के ही समान थे। वे भी अंग्रेजी निष्ठा के समर्थक थे। रुआब रखने और हुकूमत करने की उनकी बड़ी लालसा थी। बड़े भाई से उनका मेल नहीं खाता था। वे एक खर्चीले स्वभाव के आदमी थे।

छोटे लड़के भूपेन्द्र और कन्या राजवती दोनों का बड़ा भारी सौहार्द्र था। दोनों साहित्य और कला के प्रेमी थे। दोनों कल्पना के कोमल वातावरण में रहते, बहुधा ललित कला और संगीत की चर्चा करते और कवि-सम्मेलनों में भाग लेते। वे एकान्त प्रकृति के सौन्दर्य का आनन्द लेते और सरस्वती के मन्दिर की एकनिष्ठ पूजा करते थे। दीन-दुनिया से जैसे उनका कोई सम्बन्ध ही न था, राज की अवस्था २१ को पार कर रही थी और भूपेन्द्र १९ वें वर्ष में पदार्पण कर चुका था। दोनों साथ ही कालिज जाते और साथ ही पढ़ते, लिखते, घूमते तथा सैर-सपाटा आदि करते थे।

महरिन-सी लगती हैं, ठेठ बैसवाड़ी भाषा बोलती हैं। और बहुधा पीढ़ी पर चुपचाप एकान्त में बैठी रहती है। रानीपने का लक्षण उनमे केवल एक ही है—कि उनके एक पैर में मोटा-सा सोने का कडा पड़ा है। यों महल मे सब लोग उन्हें रानी जी ही कहते है। पर किसी प्रकार की आव-भगत और पूछ-ताछ उनकी महल में बिल्कुल नहीं है।

दूसरी रानी से राजा साहेब ने ब्याह अपनी पसन्द से किया था। ब्याह से पहले उन्हे देख लिया था। यह रानी जी एक छोटे-से राजा की ही बेटी थीं; देखने मे सुन्दर, स्वस्थ और पढी-लिखी थी। ब्याह के बाद कुछ दिन तो दोनों में खूब घुटी। राजा साहेब उन्हे मानते रहे। परन्तु बाद मे खटपट रहने लगी और वह बढती ही गई। वह राजा साहेब पर नियन्त्रण चाहती थी। उनकी शराबखोरी और खुशामदी मुसाहिबो से घृणा करती थी। वह चाहती थी कि राजा साहेब एक भले आदमी की तरह रहें। परन्तु भले आदमी की तरह रहें तो राजा कैसे? फिर वह नियन्त्रण मे रह नहीं सकते थे। परिणाम यह हुआ कि बात बढती ही गई, और फिर बोलचाल बन्द हो गई। अब बातचीत और लडाई-झगडे का लेन-देन लिखकर होने लगा। रानी जी प्रत्येक आपत्ति कागज़ पर लिखकर राजा साहेब से जवाब-तलब करती, और राजा साहेब इस काम के लिए एक स्लेट-पेन्सिल हर वक्त पास रखते—रानी जी की हर बात का वासी जवाब स्लेट पर लिखकर देते। कभी-कभी तो यह लेखयुद्ध दिन-दिन भर चलता, और नौकर-नौकरानियाँ दौड़ते-दौडते तग आ जाते। अन्त मे रानी साहेबा ने अन्तःपुर छोड़ दिया। वह मायके चली गईं और फिर राजा साहेब और उनके बीच खूब मुकदमेबाजी हुई, जो बरसों चली। मुकदमेबाजी में रानी जी का एक लाख का जेवर स्वाहा हो गया। राजा साहेब पर भी चपत करारी पडी। राजा साहेब ने बहुत बार उन्हें मरवा डालने, या नाक-कान कटवा देने की योजनाएँ बनाईं, पर वे कारगर न हुईं। अन्त मे दस-बारह बरस मुकदमेबाजी चलने के बाद हाईकोर्ट से रानी को डिग्री मिली। उसके द्वारा काशी स्थित नई कोठी उन्हें रहने को तथा पाँच सौ रुपया माहवार खर्च मिलते रहने का अधिकार प्राप्त हो गया। अब राजा साहेब से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है। न रियासत से रानी जी का सम्बन्ध है। उन्हें हर माह पाँच सौ रुपया भेजना पड़ता है। उस पर राजा साहेब हमेशा पाँच सौ गालियों

का नजराना बढ़ाकर भेजते हैं।

कुंवर साहेब युवा और समझदार है। इसलिए पिता-पुत्र में बहुधा इस सम्बन्ध में विचार-विनिमय हो जाता था। कुँवर साहेब यदा-कदा माता से मिल आते थे, राजा साहेब ने उन्हें इतनी छूट दे रखी थी। वह जब माता से मिलने जाते तो रानी जी राजा साहेब के विरुद्ध बहुत जहर उगलती। परन्तु कुँवर साहेब चुपचाप सुनते, इधर-उधर की बात करते, कुशल-मगल पूछते और सलाम-मुजरा कर अपने होस्टल लौट आते थे।

रानी जी से खटपट होने पर राजा साहेब के ब्याह की भी बात चली थी। परन्तु पिता-पुत्र मे इस सम्बन्ध में बहुत विचार-विमर्श हुआ। राजा साहेब ने पुत्र को समझाया कि विवाह करने से कुँवर साहेब की ही हानि हो सकती है। यदि कोई और पुत्र उत्पन्न हो गया तो उसे गुजारा देना होगा। इसलिए पिता-पुत्र दोनों इस बात पर सहमत हो गए थे कि राजा साहेब किसी वेश्या को नौकर रख लें, इसलिए एक मुसलमान वेश्या राजा साहेब ने नौकर रख ली है। वह महल से बाहर राजा साहब के कक्ष में उनके साथ रहती है। पर महल मे जाने पर राजा साहेब की पुत्र-वधू को उसकी ताजीम रानी की भाँति करनी पड़ती है। महल की दूसरी स्त्रियों को भी उसकी ताजीम करनी पडती है। अन्तःपुर में जाने की उसे रोक-टोक नही है। परन्तु वह वास्तव मे रहती है अन्तःपुर के बाहरी भाग में, राजा साहेब के निजू कक्ष में ही। कुँवर साहेब उसे बराबरी की ताजीम देते हैं। अर्थात् जब वह उसके सम्मुख जाते है तो वह खड़ी होकर उन्हे ताजीम देती है, और तब कुँवर साहेब उन्हे झुककर सलाम करते हैं। इस स्त्री का नाम है मुमताज। महल में केवल एक ही ऐसी स्त्री है, जो मुमताज की आन नही मानती ; और वह है चन्द्रमहल रानी।

७

राजगढ़ में कुछ और भी उल्लेखनीय व्यक्ति हैं। एक हैं ठा० राजनाथसिंह। रिश्ते में राजा साहेब के भाई-बन्द हैं। सुरेश की ही आयु के तरुण है। उनके साथ काशी विश्वविद्यालय मे बी० ए० तक शिक्षा पा चुके है। अब खुद काश्त करते है। उनके दो-तीन फार्म है, दो बड़े-बड़े बाग है। खद्दर पहनते है, जिला कांग्रेस कमेटी के सदस्य है। कांग्रेस के उत्साही कार्तकर्ता है। इसी साल डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चेअरमैन हुए है। भाषण देने का शौक है। गाँव मे जो स्कूल और अस्पताल है उसके भी आप ही चेअरमैन है। आजकल भूदान आन्दोलन में लगे हुए है। अपनी काफी जमीन भूदान मे दे चुके है। गाँव में सब लोग आपको भैया साहेब के नाम से पुकारते है। आप सदा शुद्ध खद्दर पहनते हे।

दूसरे है ठाकुर शिवदत्तसिंह। रियासत मे कानूनगो है। आर्यसमाजी विचार के है। धार्मिक मामलों मे बहस करने का शौक है। आयु आपकी पचास के ऊपर है। आप कद मे लम्बे, शरीर के छरहरे और चुस्त आदमी है। कांग्रेस में भी दखल देते है। अखबार पढते रहते है। चौधरी हुक्मसिंह जात के जाट है। गॉव के पुश्तैनी निवासी है। फौज मे नौकरी कर चुके है। गत महायुद्ध में विदेश जाकर लड़ चुके है। बहादुरी के तगमे भी लाए है। उन्हे कभी-कभी लोगों को दिखाते है। देश-विदेश की बहुत-सी बाते सुनाते हैं। डीलडौल अच्छा है। साठ साल की आयु पार कर चुकने पर भी काफी चुस्त और तन्दुरुस्त हैं। आप भी आर्यसमाजी हैं। छुआछूत नही मानते। देवी-देवता भी नहीं मानते। गाँव में शिवाला है। शिवाला राजा साहेब के पिता ने बनवाया था। राजा साहेब शिवभक्त हैं। इसलिए गाँव के सभी लोग शिवाले में जाते हैं, पर चौधरी साहेब नही जाते है। कहते है पत्थर-पूजा क्या? लोग उनकी बातें चाव से सुनते हैं, सुनकर हँसते हैं। आप खद्दर पहनते हैं और मोटा लठ हाथ में लेकर बाहर निकलते है।

एक हैं पंडित कृपाराम शर्मा। स्कूल के अध्यापक है। कट्टर सनातनधर्मी वैष्णव हैं। जन्मजात राजभक्त है। अंग्रेजी सरकार के भारी प्रशंसक हैं। राजा साहेब को धर्मावतार कहकर पुकारते हैं। जरा भारी बदन के आदमी हैं।

पचास के आस-पास पहुँचे हैं। घर पंडिताइन है, दो बेटे है, एक बिटिया है। अरसे से राजगढ़ में रहते है। जब कभी राजा के सामने जाते है, श्लोक पढ़कर एक फूल उनके मस्तक पर चढ़ाते है। राजा साहेब हाथ जोड़कर उन्हे प्रणाम करते है। पण्डित जी को राजा साहेब की बीमारी की बहुत चिन्ता रहती है। वह बहुधा उनके पास बैठकर उनकी बीमारी की व्याख्या करते रहते है। आप आयुर्वेद के भी ज्ञाता है। जड़ी-बूटी की पहचान और रस-भस्म बनाने में सिद्धहस्त है। आसपास के गाँव-देहातो के लोग आपसे दवा-दारू लेने आते है। कौड़ी-पैसा उनसे आप नही लेते। पर फसल मे उनके यहाँ से अनाज इतना आ जाता है कि साल भर तक खरीदने की आवश्यकता ही नही पड़ती। लकड़ी रियासत मे मुफ्त मिलती है। हर सोमवार को लड़के पण्डित जी को सीधा देते है। सीधे में, एक थाल मे आटा, दाल, घी, चीनी और कुछ नकदी लाते हैं। बढ़िया सीधा जो लड़का लाता है उससे आप प्रसन्न रहते है। आप बड़े मिष्टभाषी है। सबसे हँसकर बात करते है। राजा साहेब शिवभक्त है, यह बात वह जानते हैं, इससे प्रतिदिन शिवाले जाते है।

मुंशी नूरुद्दीन भी राजगढ की एक हस्ती है। उर्दू के शायर है। फारसी में भी दखल देते है। कचहरी मे नौकरी कर चुके है। अब पेशन पाते है। राजा साहेब को सलाम करने प्रतिदिन आते है। राजा साहेब की शाम की बैठक में केवल मुशी जी ही यदा-कदा हाजिर रहते है। राजा साहेब के साथ पीने मे उन्हे कुछ भी आपत्ति नहीं है। इस समय राजा साहेब के मुकद्दमों की देख-भाल वही करते है। वह राजा साहेब के मुख़्तारे आम है। आकृति उनकी आकर्षक है। खसखसी दाढी, जो रोजाना सँवार के तराशी जाती है, पुराने ढंग की ऐनक, जिसकी कमानियाँ ढीली हो चुकी है और पान की सुर्खी की लकीर से आरास्ता ओठ मुंशी जी के व्यक्तित्व को उभारते है। सिर पर ऊँची मखमली टोपी, बदन पर शेरवानी और चुस्त पायजामा, पैरो में विलायती जूता, हाथ में चाँदी की मूँठदार छड़ी—यही मुंशी जी का हुलिया है।

गाँव में सत्तार मियाँ भी रहते हैं। काम लुहार का करते है। थोड़ी अंग्रेजी और उर्दू भी पढे है। अब एकाध खराद की मशीन लगा ली है। और मोटर-मरम्मत का काम भी शुरू कर दिया है। गाँव के किनारे पर ही मियाँ का मकान है। सफेद छीदी-छीदी दाढ़ी है। तराशी हुई मूँछें। पक्का रग, सख्त

ग्रांखें। रोजा-नमाज़ के पाबंद, पक्के लीगी मुसलमान। लेकिन अपने काम में उस्ताद। गाँवभर उन्हें चचा कहता है। किसानों के हल-कुदाल से लेकर बाबू लोगों की साइकिल और राजा साहेब की मोटरों की मरम्मत तक सब काम मियाँ सत्तार करते हैं। मिजाज़ के तीखे है। मगर दिल के साफ़। कोई उनकी बात का बुरा नही मानता। बहुधा लोग उन्हे छेड़ते हैं, गालियाँ खाकर हँसते हैं। करेले से उन्हें चिढ़ है। करेले का नाम लेते ही मियाँ सत्तार सीधा मारने को दौड़ते हैं। गाने-बजाने का मियाँ सत्तार को शौक है। गला खूब पाया है। किसी जमाने में गाँव मे स्वांग होते थे। मियाँ सत्तार उसमें पूरा भाग लेते थे। शीरी-फ़रहाद में फरहाद बनते, गोपीचन्द के स्वांग में गोपीचन्द बनते थे। जब आवाज फेंकते थे—मीलों तक उसकी गूंज जाती थी। अब भी जब मौज में आते हैं, एक तान छेड़ देते हैं। कभी-कभी राजा साहेब की गाने-बजाने की मजलिस में शरीक होते है। राजा साहेब भी इन्हें चचा कहकर ही पुकारते हैं।

वहीद इस गाँव का एक आवारागर्द तरुण है। बाप इसके भिश्ती थे। परन्तु वहीद भिश्ती का काम नही करता, कुछ दिन वह शहर की किसी मिल में काम कर चुका है। वही उसे कम्युनिस्ट होने का चस्का लग गया। बात-बात में झगड़ा करने और खड़ी रार मोल लेने का उसका शौक है। पढ़ा-लिखा कम है। मजदूरों मे जब हड़ताल हुई तो उसका नेतृत्व वहीद ने ही किया। जेल भी गया। अपनी इस जेल-यात्रा को वह बहुत बड़ी क़ौमी खिदमत समझता है। जेल से लौटकर गाँव आ गया है। दिनभर मटरगश्ती करना, मुफ्त के झगड़े-झंझट मोल लेना, जेल के किस्से सुनाना, 'मजदूरो ! एक हो जाओ'—के नारे लगाना उसका काम है। कभी-कभी वह कम्युनिस्टों की तरह भाषण देने लगता है। शाम को वह घर आता है, और खाकर सो रहता है। रोटियाँ उसे दस-बारह चाहिएँ। सालन बिना उसका काम नहीं चलता। बाप उसका बूढ़ा है। आंखों में मोतियाबिन्द हो गया है। आपरेशन अभी हुआ नहीं है। देहली में बैठा वह दिनभर हुक्का गुडगुडाया करता है। भिश्ती का काम उससे होता नहीं है। घर में है वहीद की बूढ़ी माँ, और बारह-तेरह वर्ष की बहिन हैं। माँ ही सब गिरस्ती सँभालती है। कैसे ? यह उसका खुदा जानता है। वहीद ने अपने घर पर एक लाल झण्डा भी लगाया हुआ है। कभी-कभी वह ज़ोर-ज़ोर से

'मजदूरो ! एक हो जाओ' के नारे लगाने लगता है, उसे इस बात की जरा भी परवाह नही है कि कोई उसकी बात सुनने वाला भी है या नहीं ।

८

दीवान जी अब बहुत बूढ़े हो गए है, काम-काज नहीं होता है । उन्हें अब छुट्टी मिलनी चाहिए, ऐसी बातें बहुत बार हुई । अन्त में राजा साहेब ने दीवान जी को ही अधिकार दे दिया—कि वह किसी योग्य आदमी को ढूंढ़कर दीवान की मसनद पर ला बैठाएँ और स्वयं अपनी छुट्टी लें । दीवान जी ने चारों ओर नज़र दौड़ाई, लोगों से कहा, समाचार-पत्रों में विज्ञापन दिए ; बहुत आदमी आए । उनमे से बहुनों को तो दीवान जी ने ही पसन्द नही किया, बहुत रियासत के काम की अधिकता और तनख्वाह की कमी से ही भड़क गये । अन्ततः प्रकाशचन्द्र नामक एक तरुण राजी हुआ, दीवान जी ने भी उसे पसन्द कर लिया । प्रकाशचन्द्र छब्बीस वर्ष का तरुण है । अविवाहित है । बी ए. बी. एल है । दो साल जिला कचहरी में प्रैक्टिस कर चुका है । छः महीने एक फर्म की मैनेजरी भी कर चुका है, पर दोनों ही काम ज्यादा दिन नहीं चले । न प्रैक्टिस चली, न नौकरी निभी । और अब राजी हो गया रियासत की दीवानगीरी को, पर पहले कुछ दिन प्राइवेट सेक्रेटरी के पद पर रहना होगा । तनख्वाह पचहत्तर रुपया माहवार, रहने को घर, जलाने को लकड़ी, सेवा को नौकर रियासत से मुफ्त, सवारी को घोड़ा, टमटम भी मुफ्त । और ; लाग-हक़, इनाम-इकराम की छूट । सब बातों पर प्रकाशचन्द्र ने विचार किया—तनख्वाह कम अवश्य है, पर इज्जत बहुत है; आराम की नौकरी है । बहुत-सी छूट हैं । फिर प्रैक्टिस तो चलती ही नहीं । बहुत दौड़-धूप कर चुके । अन्त में उसने नौकरी करने का निश्चय कर लिया । राजा साहेब ने भी स्वीकार कर लिया । प्रकाशचंद्र नई नौकरी पर बहाल होकर आ गए । कई दिन तो उसे काम सीखने, देखने-भालने में लग गए । राजा साहेब की इन दिनों तबियत ठीक न थी—कभी ठीक रहती ही न थी । इसलिए दस-पन्द्रह दिन बीत जाने पर भी

उनसे उसकी मुलाक़ात हुई ही नहीं। वह कचहरी आता, दीवान साहेब के आदेशानुसार कागज़ात देखता-भालता, मामले समझता और रियासती उलट-फेर सीखता। इसी तरह तीन सप्ताह बीत गए। और तब एक दिन राजा साहेब के हुज़ूर में उसकी पेशी हुई।

खस की टट्टी के बाद दुहरे-तिहरे आसमानी और ऊदे मोटे-मोटे परदों ने उस छोटे-से कमरे को इस दोपहरी मे भी एकदम अँधेरा बनाया हुआ था। तेज़ प्रकाश से एकाएक वहाँ पहुँचकर प्रकाशचन्द्र को यह पता ही न लगा कि राजा साहेब किधर है, वहाँ है भी या नही। अपनी समझ मे प्रकाशचंद्र ने काफी सावधानी से परदा उठाया और बिलकुल आहिस्ता से कमरे में कदम रखा था, परन्तु एक क्षणभर के लिए परदा उठाने से जो प्रकाश की एक किरण भीतर गई तो उसी से राजा साहेब तिलमिला उठे। उन्होने क्रुद्ध स्वर में कहा—"कौन बदतमीज है ?"

प्रकाशचन्द्र हक्का-बक्का जहाँ का तहाँ खड़ा हो गया, उसने ज़रा सहमे हुए स्वर मे कहा—"जी, मै प्रकाशचन्द्र!"

"दहक़ानी हो ?"

"जी, मैं प्रकाशचद्र हूँ।"

"अमा, कौन प्रकाशचन्द्र ?"

प्रकाशचन्द्र का मुँह सूख गया। उसने थूक निगलकर कहा :

"हुज़ूर का ख़ादिम, नया सेक्रेटरी।"

"परदा ठीक कर दो, और चले आओ।"

प्रकाशचन्द्र की समझ में नही आया कि परदे को कैसे ठीक करे। फिर भी वह परदे को जरा इधर-उधर से छू-छाकर आगे बढ़ा। और उसने राजा साहेब के सामने जाकर झुककर सलाम किया। इतनी देर मे उसकी आँखें भी इस अंधकार को सह गई थी। उसने देखा—सामने ही एक छोटी-सी पलंगड़ी पड़ी है। और उसी के पास फर्श पर राजा साहेब का संक्षिप्त-सा शरीर बैठा है। राजा साहेब ने कहा :

"बैठो, लेकिन ठहरो, उस आलमारी में वह शीशी रखी है, ज़रा उठा लाओ।"

उस अपरिचित अंधेरे कमरे में आलमारी किधर है, यह एकाएक प्रकाशचन्द्र

को नहीं दीख पड़ा। उसे यह भी नही समझ आया कि राजा साहेब ने किस दिशा की ओर संकेत किया है। उसने इधर-उधर देखकर कहा : "जी, लेकिन..." इसके बाद ही उसकी नज़र एक आलमारी पर पड़ी। उसके पास जाकर उसने देखा, उसमें ताला पड़ा है। ताला देखकर उसने कहा :

"हुज़ूर, आलमारी मे तो ताला बन्द है।"

"तो खोल लो भई, लेकिन खुदा के लिए इतना चीखो मत; ज़रा आहिस्ता बोलो।"

प्रकाशचन्द्र की अक्ल गुम होने लगी। यहाँ तो क़दम रखना और मुँह से शब्द निकालना भी मुश्किल है। उसने यथासाध्य स्वर को कोमल बनाकर कहा : "हुज़ूर, चाभी ?"

"भई, तुम तो मुझे मार डालोगे, बोलते क्या हो हथौड़े की चोट करते हो। मै बीमार आदमी, भला यह सब कैसे बर्दाश्त कर सकता हूँ। चाभी ले लो।"

लेकिन चाभी कहाँ से ले ले—यह प्रकाशचन्द्र की समझ में नही आया। पर मुँह से बोलने की उसे हिम्मत न पड़ी। उसने इधर-उधर देखा, अंधेरे में अब उसे और भी स्पष्ट दीखने लगा था। इसी समय किसी चीज़ के फ़र्श पर गिरने का शब्द हुआ, चाभी राजा साहेब ने फर्श पर फेंकी थी। प्रकाश ने फर्श पर से चाभी उठा ली, आलमारी का ताला खोला, देखा आलमारी में छोटी-बड़ी बहुत-सी शीशियाँ रखी है। अब वह कौन-सी शीशी उठा लाए ?

उसके माथे से पसीना छूटने लगा। हिम्मत करके वह राजा साहेब के पास चला, राजा साहेब ने हाथ फैलाकर कहा : "लाओ"। उसने हिम्मत करके कहा : "हुज़ूर, कौन-सी शीशी लाऊँ ?"

"तुम चाहते हो कि मै खुद उठकर वह शीशी तुम्हारे हाथ में दूँ ? अरे भाई, सिर दर्द वाली शीशी दो; मगर तुम तो खुद भी एक सिर दर्द हो। वह देख नही रहे, नीले रंग की शीशी—सुर्ख़ लेबुल।"

प्रकाशचन्द्र ने शीशी उठाई और हददर्जे की समझदारी से काम लिया, अर्थात् शीशी ले जाकर राजा साहेब के हाथ में नहीं दे दी, उसकी कार्क खोलकर उसमें से एक टेबलेट निकाल कर राजा साहेब की खिदमत में पेश की। टेबलेट खाकर राजा साहेब मसनद पर उठंग गए। कुछ देर बाद उन्होंने प्रकाशचंद्र को बैठने का संकेत किया। पर बैठने के संकेत के साथ ही एक ओर उंगली उठाई। प्रकाश-

चन्द्र ने देखा, सामने चाँदी का पानदान रखा है। उसने पानदान से दो बीड़ा पान निकालकर राजा साहेब को पेश किए। पान खाकर राजा साहेब मसनद पर फिर लुढक गए। आँखे उन्होंने मूँद लीं।

कुछ क्षणों तक सन्नाटा रहा। फिर राजा साहेब ने कुछ कराहते हुए कहा : ' बहुत बीमार हूँ भई, मगर किसे परवाह है मेरी। बस, अपनी हिम्मत पर जी रहा हूँ।"

प्रकाश ने साहस करके कहा : "सरकार, किसी अच्छे डाक्टर को दिखाना चाहिए।"

"डाक्टर सब एक से बढ़कर एक नामाकूल हैं। मर्ज को समझते ही नहीं है। फिर, रियासत का झंझट, तुमने तो वकालत पास की है ?"

"जी सरकार !"

"आहिस्ता बोलो भाई, आहिस्ता। इस कदर शोर मैं बर्दाश्त नहीं कर सकता। देखते तो हो, न तुम्हारी तरह जवान हूँ, न तन्दुरुस्त; काम तुमने समझ लिया ?"

"जी" प्रकाश ने निहायत मुर्दा आवाज़ में कहा।

"तो भाई, ज़रा मेरी तबियत का भी खयाल रखना। पुराना चर्खा है, ज्यादा देर नहीं चलेगा। ओफ, देखो, यहाँ हाथ रखकर देखो, किस क़दर दिल धड़क रहा है।" राजा साहेब ने प्रकाशचन्द्र का हाथ पकड़कर अपनी छाती पर रखा। उसे हँसी आ गई। दिल तो सभी का धड़कता है। उसका मन हुआ कि कहे, 'जनाब, दिल धड़कना तो जिन्दगी का चिह्न है।' पर वह चुप ही रहा।

राजा साहेब ने मसनद पर करवट बदलते हुए कहा, "ज़रा वह तकिया मेरी गर्दन के नीचे...हाँ...बस। क्या तुम कुछ दवा-दारू की बाबत भी समझते हो ?"

"जी कुछ-कुछ, होम्योपैथी दवा जानता हूँ।"

"अच्छा है, लेकिन जरा यूडीक्लोन में रूमाल तर करके मेरे सिर पर रखो तो, खोपड़ी उड़ी जाती है।"

"हुज़ूर, गर्मी भी सिद्दत की है।" प्रकाश ने कहा और रूमाल सुगन्धित एसेन्स में भिगोकर राजा साहेब की खोपड़ी पर रख दिया।

राजा साहेब कुछ क्षण मसनद पर आँखें बन्द किए पड़े रहे, फिर बोले :

भी राज ने सहमत कर लिया।

अन्ततः ठीक समय पर शुभ मुहूर्त में राज का विवाह ठाकुर राघवेन्द्रसिंह से सम्पन्न हो गया। विवाह मे खूब धूम-धाम रही। डिप्टी साहब की शादी में सभी छोटे-बड़े अफसर शरीक हुए। रोशनी, गाने-बजाने, आतिशबाजी और खेल-तमाशों की धूम रही। ठाकुर साहब ने अपनी शान मे चार चाँद लगा दिए। लोग बारात को देखते थे और वाह-वाह कहते थे। ब्रजराज तीन दिन से रात-दिन अथक परिश्रम से बारात की सेवा-खातिर और इन्तजाम में लगा था।

तीसरे दिन, बारात की विदाई थी, दहेज का सामान सजाया जा रहा था। ब्रजराज ने चुपचाप तीन बड़े-बड़े सन्दूक लाकर दहेज के कमरे में रख दिए। इसके बाद एक-एक करके उनमें से साड़ियाँ, चाँदी के बर्तन, जड़ाऊ जेवर और बहुत-सी सामग्री निकालकर फैला दी गई। लोगों ने देखा और चकित हो गए। राज की माँ ने आकर अधीर होकर ब्रजराज को छाती से लगाकर कहा—"यह क्या किया बच्चा!"

ब्रजराज ने कहा—"है ही क्या, माँ राज के लिए थोड़ी-सी चीजें हैं!"

ठाकुर गजराज ने क्षण-भर सब देख-भालकर गद्गद् कण्ठ से ब्रजराज से कहा—"ब्रज, हमें तूने आँखें ऊँची करने योग्य भी नहीं रखा!"

इसी समय समाचार सुनकर राज कमरे में आ गई। एक नज़र उसने ब्रज के लाए हुए सामान पर डाली—ब्रजराज की ओर देखा। उस दृष्टि को सहने में असमर्थ होकर ब्रजराज धीरे से कमरे से खिसक गया।

बहुत देर तक राज खड़ी कुछ सोचती रही। फिर उसने मन-ही-मन कुछ संकल्प किया, और उसके नेत्रों में दृढ़ता की एक आभा आई। वह वहाँ से अपने कमरे में चली गई। उसको कॉलिज की साथिनी-सहेलियाँ सभी वहाँ थीं, उन सबको उसने उस कमरे में बुलाकर भीतर से कमरा बन्द कर लिया। उसने एक-एक करके सब पर दृष्टि डाली। फिर स्थिर स्वर में कहा—"सखियो, तुम सब मेरी प्राणों से बढ़कर प्यारी हो, हम सदैव एक प्राण दो शरीर रहीं हैं; आज मेरे विवाह के उपलक्ष्य में तुम सब बड़े-बड़े उपहार लेकर आई हो, लेकिन बुरा मत मानना सखियो, वे उपहार मुझे कुछ भाये नहीं—मैं तुम सबसे आज मन-

कोई बीमारी समझता नही है।"

"जी", कहकर प्रकाशचन्द्र चुप हो गया। वह अब और क्या कहे यह उसकी समझ मे नही आ रहा था। पर सनकी राजा की सनक वह समझ गया था। उसमें उसे मजा भी आ रहा था। किसी रईस की नौकरी करना कितना मुश्किल काम है, यह भी उसकी समझ में आ रहा था। इसी समय राजा साहेब बोल उठे। उन्होने कहा : "क्या तुम्हारी शादी हो गई है ?"

"जी नही ?"

"यह अच्छा है। बेहतर हो कि तुम शादी के पचड़े में न पड़ो, शादी करना हो तो पढ़ी-लिखी लड़की से शादी न करना। समझे ?"

"जी"

"पढ़ी-लिखी लड़कियाँ अक्सर बीमार रहती है। और बीमार औरत को पल्ले बाँधना सरासर बेवकूफी है।"

"जी"

"मैं तो तुम्हे नेक सलाह दे रहा हूँ, अभी दुनिया का तुम्हे तजुर्बा नही है। समझते हो न ?"

"जी"

"इस वक्त कैसे आए थे, हमसे क्या तुम्हे कुछ काम है ?"

"जी, हुजूर ने मुझे याद फर्माया था।"

"मगर किसलिए ?"

अब प्रकाशचन्द्र क्या जवाब दे ? वह क्षण भर चुप रहा, फिर कहा : "हुजूर को सलाम भी अर्ज करनी थी।"

"कोई मुजायका नही, लेकिन जेनी कहाँ है ?" राजा साहेब को एकाएक अपनी कुतिया की याद आ गई। वह बेचैन हो उठे। प्रकाशचन्द्र भी इस प्रश्न से घपले मे पड़ गया। उसने यह सोचा भी न था, कि राजा साहेब के दीवान को राजा साहेब की कुतिया का भी पता रखना पड़ेगा। परन्तु उसने बुद्धिमानी से कहा : "क्या उसे सरकार के पास भिजवा दूँ ?"

"हाँ, हाँ, भिजवा दो। लेकिन आहिस्ता बोलो। शोर न करो।"

"जो हुक्म", कहकर प्रकाशचन्द्र एकदम उठ खड़ा हुआ। आहिस्ता से परदा उठाकर बाहर आया। जान बची लाखों पाए। उसने एक खिदमतगार से कहा

कि जेनी को अभी राजा साहेब के पास पहुँचा दे। और अपने आफिस में चला आया। वह सोच रहा था कि राजा साहेब के दीवान होने की पूरी योग्यता प्राप्त करने में अभी उसे बहुत कुछ सीखना होगा। पर क्या चिन्ता है। ओखली में सिर दिया तो मूसली का क्या डर।

९

राजा साहेब गुस्से से भरे हुए अपनी मसनद पर उकस-मकस रहे थे। पुराने दीवान मुन्शी नौरंगराय और उनका नया सेक्रेटरी प्रकाशचन्द्र नीचा सिर किए चुपचाप खड़े थे। नौकर-चाकर, खिदमतग़ार सब चुप मुँह लटकाए खड़े थे। किसी के मुँह से बोल नही फूट रहा था। बीच-बीच में राजा साहेब लाल-लाल आँखें करके दीवान नौरंगराय और सेक्रेटरी प्रकाशचन्द्र को देख लेते थे।

इस बेहद गुस्से का कारण यह था कि गाँव के चमार ने राजा साहेब की बेगार ढोने से इन्कार कर दिया था। पुराना दस्तूर चला आता था कि रियासत की सब खिदमत चमार और दूसरे कमीन पेशा लोग बेगार में करते थे और उन्हें शाम को सिर्फ तीन पाव आटा और एक या दो आना पैसा मिलता था। चमार का बेगार से इन्कार कर देना इस रियासत की अभूतपूर्व घटना थी।

बहुत देर तक गुस्से में भरे बैठे रहकर राजा साहेब ने मुन्शी नौरंगराय की ओर गुस्से से देखकर कहा : "तो इसका मतलब यह कि अब हिन्दुस्तान में किसी रईस की इज्ज़त कायम नही रह सकती ?"

"सरकार, अब उनके बिरादरी के लोग मिनिस्टर-मेम्बर बन गए है। इसी से उनके मिजाज़ बढ़ गए है।"

"कौन गया था वहाँ हमारा हुक्म लेकर ?"

"सरकार, रामचरन प्यादा गया था।"

"हमने उसे बंदूक दे रखी है ?"

"जी हाँ सरकार।"

"तो क्या वजह कि उसने उस बदमाश को गोली नहीं मार दी ?"

"सरकार, उसे बन्दूक चलाना नहीं आता है, दूसरे मैंने जान-बूझकर उसे कारतूस नहीं दी थी।"

"क्यों नहीं दी थी ?"

"सरकार गरीब-परवर है, ऐसा न हो—यह प्यादा नामाकूल गोली चला दे और कम्बख्त चमार मर जाए, तो लोग सरकार के नाम की बदनामी करें।"

"लेकिन हम हुक्म उदूली बर्दाश्त नहीं कर सकते, उसे हाजिर करो और बन्दूक हमारे पास रख दो।"

"मैंने उसे बुलाया है सरकार।"

इसी समय रामचरन प्यादे ने आकर झुककर राजा साहेब को सलाम किया। और अर्ज की कि हुजूर मँगतू चमार हाजिर है।"

राजा साहेब उत्तेजना के मारे उठकर खड़े हो गए। मुन्शी नौरंगराय ने बन्दूक सम्हाली। राजा साहेब ड्योढ़ियों तक चले आए। उन्होंने देखा—एक बाईस बरस का छरहरे बदन का तरुण निर्भय सामने खड़ा है। शरीर पर उसके स्वच्छ खद्दर का कुर्ता और सिर पर गांधी टोपी है। उसके नेत्रों में भय का कोई चिह्न नहीं है। उसने दस्तूर के मुताबिक राजा साहेब को झुककर सलाम-मुजरा नहीं किया। हाथ जोड़कर नमस्ते की।

राजा साहेब क्रोध भरी नज़र से उसे कुछ देर देखते रहे।

उन्होंने मुन्शी से पूछा : "यही वह शरकश मँगतू चमार है ?"

"महाराज, मेरा नाम मँगतराय है।"

राजा साहेब एकदम मँगतू की ओर घूम गए। उन्होंने कहा :

"क्या तू मँगतू चमार नहीं ?"

"जी नहीं।"

"क्यों नहीं ?"

"इसलिए कि मैं मँगतराय हूँ।"

"मँगतराय क्यों ? मँगतू चमार क्यों नहीं ?"

"मँगतराय क्यों नहीं ? मँगतू चमार क्यों; यह आप ही बताइए।"

"क्या हमीसे पूछता है, यह गुस्ताखी ?"

"गुस्ताखी नहीं महाराज, सवाल पूछा है। जैसा आपने पूछा था।"

"तू बेगार क्यों नहीं करता।"

"बेगार करना और कराना दोनों ही अपराध हैं।"

"क्या तेरे बाप-दादा बेगार नहीं करते थे ?"

"जी करते थे, मगर मैं नहीं करता।"

"क्यों नहीं करता ?"

"महाराज के बाप-दादे डाकेजनी का पेशा करते थे;—आप क्यों नहीं करते ?"

राजा साहेब क्रोध से थरथर काँपने लगे। उन्होंने कहा : "कोई है, लगाओ इसके पचास जूते !"

लेकिन किसी की हिम्मत आगे बढकर उस खद्दरपोश चमार को जूता लगाने की नही हुई। राजा साहेब ने आँखें तरेरकर बूढ़े दीवान की ओर देखा। मँगतू निर्विकार भाव से शान्त खड़ा हुआ था। उसके नेत्रों में अब निर्भयता के साथ ही दृढता भी दीख रही थी। दीवान नौरंगराय ने मँगतू की ओर देखकर कहा : "बदमाश, मालिक से इस तरह बात की जाती है ? माफ़ी माँग।"

"दीवान जी, मुँह से गालियाँ निकालते हुए आपको शर्म आनी चाहिए। आपको बुजुर्ग समझकर मैं आपको उलटकर बदमाश नही कहता।"

दीवान जी बौखला गए। राजा और सब नौकरों के सामने ही यह चमार का बच्चा दीवान का और राजा का भी अपमान कर रहा था। उन्होने गरजकर कहा :

"मुँह से ज़बान खींच ली जाएगी, बज्जात।"

"हक़ीकत तो यह है कि आप बड़े ही बज्जात हैं।"

दीवान साहेब क्रोध से तिलमिलाकर काँपने लगे। राजा साहेब ने लाल-लाल आँखें करके कहा : "देना ज़रा बन्दूक।" उन्होंने बन्दूक पर हाथ डाला।

इसी समय कुँवर सुरेशसिंह लपकते हुए राजा साहेब और मँगतू के बीच में आ खड़े हुए। वह अभी-अभी बनारस से चले आ रहे थे। यह हंगामा देखते ही सीधे यहीं चले आए। सिलेटी रंग का बुशर्ट, आँखों पर धूप का काला चश्मा, खुलता हुआ रंग, ओठों पर पतली मूछों की लकीर, कमर में काली पैन्ट और पैरों में सैंडल। आते ही उन्होंने पैर छूकर राजा साहेब को प्रणाम किया। बन्दूक उनके हाथ से ले ली। और आहिस्ता से कहा : "दाता, ऊपर पधारें।"

कुँवर साहेब को देखकर महाराज का गुस्सा ठंडा हो गया। इधर एक साल से भी ज्यादा अरसे में कुँवर सुरेशसिंह रियासत में आए हैं। बी० एल० फाइनल की परीक्षा देकर। राजा साहेब चुपचाप दीवानखाने को लौट गए। चलती बार कुँवर साहेब ने मंगतू से कहा—"मँगतू, तुम घर जाओ। शाम को आकर मुझे मिलना।"

मँगतू ने कुँवर साहेब को नमस्ते किया। और 'बहुत अच्छा' कहकर चलता बना।

१०

राजा साहेब की तबियत एकदम अलील हो गई। इतना हंगामा हुआ। कमीना चमार मुँहजोरी कर गया। रियासत के दीवान को राजा के सामने गाली दे गया। यह राजा साहेब कैसे बर्दाश्त कर सकते थे। दर्जनों झूठे-साँचे रोग तो राजा साहेब के शरीर में पहले ही बने रहते थे। अब उन पर इतना भारी हंगामा हो गया।

राजा साहेब मसनद पर उठंग गए। कुँवर साहेब ने दीवान और सेक्रेटरी को इशारे से पहले ही ऊपर जाने से रोक दिया था। पर राजा साहेब का गुस्से से खून खौल रहा था। उन्होंने कहा .

"दीवान साहेब को हाजिर करो।"

"इस वक्त नहीं दाता, अभी आप आराम करें।"

"मैं हुक्म देता हूँ कि इस चमार के बच्चे की झोंपड़ी में इसी वक्त आग लगा दी जाय। और उसकी औरतों को नंगी कर के पेड़ से लटका दिया जाय।"

"शाम को मैंने उसे बुलाया है। मैं खुद इस मुकदमे को देखूंगा और उसे मुनासिब सज़ा दूंगा।"

"क्या सज़ा दोगे तुम उसे। रईसों की तो बस अब मौत है। भला इसकी यह मजाल ? हुक्म उदूली और शरकशी; इस पर बदकलामी। मैं उसे

जिन्दा न छोड़ता। तुमने नाहक बन्दूक पकड़ ली।"

"दाता इन छोटे आदमियों के मुँह आपको न लगना चाहिए। आप खातिर जमा रखिए, मैं उसे ठीक कर दूंगा। लेकिन मालूम होता है, आपने इस वक्त दवा भी नही ली।"

"वह मूंजी तो मुझे मार ही डालता।"

"लेकिन दवा की शीशी कहाँ है ?"

"वह नीली शीशी है।"

कुँवर साहेब ने शीशी से दो टेबलेट निकालकर राजा साहेब को पेश की और राजा साहेब उन्हें खाकर मसनद पर लेट गए। कुँवर साहेब आहिस्ता-आहिस्ता उनका सिर दबाने लगे। राजा साहेब का गुस्सा ठण्डा हुआ। बोले "इस बार तुमने बहुत दिन लगाए ?"

"जी, सोचा फाइनल परीक्षा है, निबट कर ही चलूं।"

"अच्छा किया। परचे तो अच्छे किए है ?"

"आपके आशीर्वाद से अव्वल नम्बर से पास होऊँगा। तब आपको मुझे नई मोटर दिलानी पडेगी।"

राजा साहेब के चेहरे पर मुस्कान छा गई। इस अवसर से लाभ उठाकर कुँवर साहेब ने बात का रुख फेरा। कहा : "दाता, स्वामी जी भी आए हैं।"

"कौन स्वामी जी ?"

"आनन्द स्वामी। मैने आपको जिनके सम्बन्ध में लिखा था। आप उनसे मिलकर और उनकी बातें सुनकर प्रसन्न होंगे।"

"लेकिन मैं ऐसी सेहत कहाँ से लाऊँगा। देखते हो मेरी क्या हालत है ?"

"लेकिन दाता, वे बड़े भारी वैद्य भी है। उनका आयुर्वेद का ज्ञान अगाध है।"

"अच्छा है, देखूंगा, मेरे मुतल्लक मर्ज की भी कोई दवा उनके पास है या नहीं।"

"जरूर है पिता जी, मैंने उनसे आपकी बावत कहा था। अब आज्ञा हो तो जाकर उनके ठहरने आदि की व्यवस्था कर दूं।"

"हाँ हाँ, जाओ और आराम करो। मगर उस चमार के बच्चे को छोड़ना नहीं। ऐसा सबक सिखाना कि दूसरों को भी नसीहत रहे।"

"बहुत अच्छा।"

कुँवर साहेब चले गए। राजा साहेब अपने भूत-भविष्य का विचार करते चुपचाप आँखे बन्द किए पड़े रहे।

११

गाँवभर मे हुडबोंग मच गया। जितने मुँह उतनी बाते। मँगतू का साहस और दृढ़ता ने सभी का ध्यान उसकी ओर आकर्षित कर लिया। कुछ लोग उसके साहस से खुश थे। उसने दीवान साहेब को गाली दी है, यह सुनकर गाँव की स्त्रियाँ मुँह में उँगली दाबकर कलियुग को कोसने लगी। किसी ने कहा—हाय दैया! मुए चमार का इतना कलेजा! अब ये नीच भगी-चमार भी हमारे सिर पर पैर रखकर चलेगे। काग्रेस की अधेरगर्दी है। छोटे-बड़े का कुछ विचार ही नही है।

मँगतू कांग्रेस का सदस्य है। वह लखनऊ में नौकरी करता है। मैट्रिक तक उसने शिक्षा पाई है। इसके बाद किसी टेक्निकल स्कूल में खराद का काम सीखकर मिस्त्री हो गया है। कभी-कभी घर आता है। घर उसका राजगढ़ में क़दीम से है। बाप-दादे उसके सदैव से रैयत बनकर रहे है। सदा से बेगार करते आए हैं। राजा साहेब को नहीं मालूम था कि मँगतू लखनऊ में नौकरी करता है। न वह यही जानते थे कि वह पढ़ा-लिखा है और कांग्रेस का सदस्य है। इसके अतिरिक्त यह तो कल्पना भी नहीं की जा सकती थी कि वह राजा के सामने इस प्रकार सवाल-जवाब करेगा। और दीवान को तुर्की-बतुर्की गाली का जवाब गाली से देगा। दीवान साहेब बहुत बौखलाए हुए हैं। उनकी बड़ी किरकिरी हुई है। परन्तु गाँव में इससे बहुत लोग प्रसन्न भी हुए हैं। गाँव के चमारों के दो दल बन गए हैं। बड़े-बूढ़ों का कहना है, बुरा हुआ। मँगतू को मालिक के सामने ऐसी बेअदबी नहीं करनी चाहिए थी। लेकिन जवान लड़के मँगतू के साथ हैं। वे कहते हैं, खूब हुआ। ऐसा ही करना चाहिए। हम किसी की धौंस नहीं बर्दाश्त कर सकते। और हम अब बेगार भी नहीं

देंगे। मँगतू न इनकी किसी बात का जवाब देता है, न उनकी। वह चुपचाप मुस्कराता बैठा है। उसे न चिन्ता है, न उद्वेग।

शाम को कुँवर साहेब ने उसे बुलाया है। कुछ लोगों का कहना है उसे नहीं जाना चाहिये। शायद मार-पीट हो जाय। बात बढ जाय। राजा साहेब तो सुबह ही बन्दूक तान रहे थे। लेकिन मँगतू कहता है, जाने में कोई हरज नही है। मै जरूर जाऊँगा। तरुणों ने कहा—'तो हम भी चलेगे, लठी से लैस होकर। देखा जायगा, दो-दो को मारकर मरेंगे। कोई मखौल नही है। जनता का राज है, लद गए पुराने वे दिन, जब ये राजे-महाराजे हमारे सिर पर लात रखते थे। अब सब बराबर है। सबका बराबर हक है।' शाम को मँगतू गढ़ी मे गया। लोगों ने कहा, लकड़ी तो हाथ मे रखो, महात्मा गांधी भी लाठी रखते थे। लाठी रखने में कुछ हरज नही है। किन्तु मँगतू ने हँसकर जवाब दिया : "महात्मा गांधी बूढ़े थे, इसलिए लाठी रखते थे। मैं तो जवान आदमी हूँ। मुझे लाठी की क्या जरूरत है।"

कुँवर साहेब ने मँगतू को देखकर कहा : "आओ भाई मॅगतू, बैठो, मोढ़े पर बैठो। बहुत दिनों मे देखा मैने तुम्हें, कहाँ रहते हो आजकल।"

"अधिक रहना तो लखनऊ ही होता है। वहाँ एक फर्म में मिस्त्री का काम करता हूँ।"

"बहुत अच्छी बात है। बाल-बच्चा कोई है?"

"एक लडका है डेढ़ साल का।"

"तो कभी लाना भाई, देखूँगा। हाँ, दादा से तुमने क्या रार ठान ली?"

"भला ऐसा भी हो सकता है कि मैं महाराज से रार ठानूँ? ज्यादती उधर ही से हुई।"

"खैर वह बुजुर्ग हैं, बड़े हैं। मेरी बात माननी पड़ेगी तुम्हें, दाता से माफ़ी माँगनी होगी।"

"कुँवर साहेब, आपको मैं बहुत मानता हूँ। आप देवता हैं। आप कहेंगे और महाराज और दीवान साहेब चाहेंगे तो मैं उन्हें माफ़ कर दूँगा, लेकिन मैं माफ़ी काहे की माँगू, ज्यादती तो सरासर उन्हीं ने की है!"

"बात खत्म करने का भी एक ढंग होता है मँगतू!"

"जी हाँ, मैं भी नही चाहता कि मैं अपने बड़ों से रार ठानूँ।"

"तो बस तुम दाता से माफी माँग लो !"

"लेकिन किस बात की ?"

"भाई मेरे, सिर्फ इस बात की, कि तुम जात के चमार हो और महाराज तुम्हारे मालिक है।"

"जात-पाँत का तो यहाँ कोई सवाल ही नही है, सवाल है नागरिक अधिकारों का, परस्पर के व्यवहार का।"

"कुछ ऐसी भी बाते हैं जो ठीक नहीं हैं, पर माननी पड़ती है।"

"मुझे आशा नहीं थी कि आप ऐसी बात कहेगे !"

"खैर, तो तुम चाहते क्या हो ?"

"महाराज और दीवान साहेब मुझसे माफी माँगें और भविष्य में ऐसी हरकत न होगी यह वचन दें तो मै, केवल आपके लिहाज़ से उन्हें माफ़ कर दूँगा।"

कुँवर साहेब हँस पड़े। उन्होंने कहा : "वरना तुम क्या करोगे मँगतू ?"

"मैं कानून की शरण जाऊँगा। महाराज ने और दीवान साहेब ने मुझे डराया-धमकाया है, गालियाँ दी हैं। इसका अदालत में दावा दायर करूँगा।"

"दावा दायर करने में कितनी दिक्कतें हैं, और कितना खर्च करना होता है, जानते हो ?"

"जानता हूँ।"

"फिर भी तुम ऐसा विचारते हो ?"

"जो अनिवार्य है, वह काम तो करना ही पड़ता है।"

"क्या तुम मेरी इतनी-सी बात नहीं रख सकते मँगतू ?"

"आपकी बात रखकर मैं उन्हें माफी देने को तैयार हूँ। परन्तु उन्हें पहले माफी माँगनी चाहिये।"

कुँवर साहेब का मिजाज भी गर्म होने लगा। एक चमार का छोकरा इस प्रकार उनके सामने बढ़-बढ़ कर बातें करता जा रहा है। उनका आभिजात्य खून गर्म होने लगा, उन्होंने कहा : "इसका नतीजा क्या होगा मँगतू, यह भी तुमने सोचा ?"

"जी नही, नतीजा मेरे हाथ की बात नहीं है। इसलिए मैं नतीजे की बात नहीं सोचता। मैं केवल अपना कर्त्तव्य भर सोचता हूँ।"

"तो तुम माफ़ी नहीं माँगोगे ?"

"अफसोस है कि आप गलत प्रश्न कर रहे हैं।"

"खैर, तो अब तुम जा सकते हो।"

मँगतू ने नमस्ते की और चल दिया। कुँवर साहेब बड़ी देर तक उसी के सम्बन्ध में सोचते बैठे रहे। चिन्ता की रेखाएँ उनके माथे पर उभर आईं।

१२

बी० एल० की परीक्षा देकर इस बार सुरेश जो छुट्टियों में घर आए तो रियासत भर में खुशी मनाई गई। राजा-रईसों में पढ़ने-लिखने का शौक कम ही होता है, इस वर्ग में सुरेश ही पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त की है। सौभाग्य की बात यह कि उन्हें पत्नी भी विदुषी मिली। यह भी कोई साधारण घटना नहीं है। राजवर्गी जनों में जहाँ पुरुषों ही की शिक्षा का कोई आधार नहीं, तो कड़े पर्दे और रूढि में पली हुई राजपरिवार की कन्याओं की शिक्षा तो आशा से सर्वथा ही बाहर की बात थी। परन्तु जैसे कुँवर सुरेशसिंह तरुण राजवर्गियों में अपवाद हैं, उसी प्रकार प्रमिलारानी राजवर्गी स्त्रियों में। यह उनके पिता का सत्साहस ही कहना चाहिए कि उन्होंने अपनी इकलौती पुत्री को इतनी शिक्षा दी, और किसी बड़े राजा के रनिवास में न झोंककर, उन्होंने इस छोटी रियासत के सच्चरित्र और सुशिक्षित राजपुत्र को वह कन्या दी। महत्त्वपूर्ण बात यह कि इतनी उच्च शिक्षा प्राप्त करने पर भी प्रमिलारानी शील-मर्यादा का राजवर्गी पद्धति पर ही पालन करती हैं। वह नैष्ठिक हिन्दू महिला की भाँति पूजा-पाठ, व्रत, दान, कथा, पर्दा-मर्यादा का पालन करती हैं। इन बातों से सबसे ज्यादा मोह लिया है प्रमिला ने अपनी दादस को। उनका अधिकांश समय उन्हीं के पास व्यतीत होता है। कथा-वार्ता श्रवण में उनकी भी बहुत रुचि है। दादस को पोतबहू की वह बात बहुत पसन्द है। वह सबसे ज्यादा अपनी पोतबहू को ही पसन्द करती हैं। इस बार सुरेश बनारस से उसके लिए बहुत-सी नए फैशन की साड़ियाँ, ब्लाउज़ लाए हैं। क्रीम, पाउडर, एसेन्स,

सैन्ट ग्रौर न जाने क्या-क्या प्रसाधन सामग्री लाए हैं। वह सब प्रमिलारानी ने दादी को ले जाकर दिखाईं। दादी के सामने सब चीज ले जाकर कहा, "इन सब फालतू चीजों की भला क्या ज़रूरत थी दादी जी, जरा देखिए तो !"

सब चीजों को उलट-पलट कर देखकर दादस हँस दी। हँसते-हँसते ही उन्होंने कहा—"तो क्या हर्ज है बेटी, मेरा सुरेश बहुत ग्रच्छा लडका है। उसका जैसा शौक हो, जैसी रुचि हो वह करे। इसमें हानि क्या है। ग्ररी पुरुष तो ऐसे होते ही हैं। ग्रपनी पसन्द ही को सबसे ग्रागे रखते है। तू तो हमारे घर की लक्ष्मी है बहू, वह तुझे मेम बनाकर रखना चाहता है तो हर्ज क्या है। मेम बनकर ही रहो।"

प्रमिला को दादी की यह बात पसन्द नही ग्राई, उसने मुँह फुलाकर कहा, "दादी जी, ग्राप तो उन्हीं की-सी बात करती है।"

"ग्ररी बेटी, तू राजा-रईसों की ग्रादत नहीं जानती। मुझे तो यही सब देखते ग्रस्सी बरस बीते है। कैसे खराब होते है ये सब मर्द लोग। जिनकी सारी ज़िन्दगी शराब ग्रौर बुरी संगतों में बीतती है। राजघराने की ग्रौरतों को हीरे-मोती तो बहुत मिलते हैं, पर वे सब उनके ग्राँसुग्रों मे डूबे रहते है। मेरा सुरेश ऐसा नही है। तेरी तकदीर ग्रच्छी है पोतबहू, तुझे सुरेश के रूप में देवता मिला है।"

प्रमिलारानी स्वयं भी ऐसा ही समझती थीं। ग्रब दादस के मुँह से ये बातें सुनकर वह लाज से लाल हो गई। इसी समय सुरेश ने हँसते-हँसते ग्राकर दादी के पैर छुए। दादी ने उठकर सुरेश को छाती से लगा लिया। प्रमिलारानी इसी सुयोग में, वह सब साज-सामान वहीं छोड़कर भाग खड़ी हुई।

दादी ने इधर-उधर देखा, बहू तो भाग गई थी। पर वे सब सुरेश के लाए हुए प्रसाधन द्रव्य वही पड़े थे। दादी ने हँसते हुए कहा : "क्योंरे सुरेश, यह सब तू क्या उठा लाया है? मेरी बहू को तू क्या मेम साहेब बनाना चाहता है?"

सुरेश ने भी हँसकर कहा : "दादी जी, ये सब चीजें तो ग्राज सभी बड़े घर की स्त्रियाँ काम मे लाती हैं। वे मेम साहेब थोड़े ही हो जाती हैं।"

"मैं क्या जानू भाई, मैंने तो ग्रपने जीवन में ये चीजें देखी भी नहीं।

उन्होंने लिपस्टिक उठाकर अपनी आँखों के सामने नचाकर हँसते हुए कहा—"यह क्या है रे?"

"लिपस्टिक है दादी जी, होठों पर लगाई जाती है, जरा लगाकर देखो।" सुरेश ने भी हँसकर कहा।

"इसके लगाने से क्या होता है रे ?"

"बस होंठ अपने आप ही बन्द हो जाते हैं। ज्यादा बोलना रुक जाता है।"

"तब तो बड़ी अच्छी चीज है। जा इसे मौसी को दे आ।"

"दाम बहुत लगते हैं दादी जी, मौसी जी को नहीं दूँगा। फिर मौसी जी का बोलना बन्द हो जायगा तो घर में सन्नाटा जो हो जायगा। उन्हीं के दम की बदौलत इतनी धूमधाम रहती है कि नक्कारे बजाओ तो भी न हो।"

दादी हँस दी। उन्होंने कहा : "जा सुरेश, ये सब चीज़ें उन्हें दिखा ला।"

"जब तुम्हारी बहू पहनेगी तो वह आप ही देख लेंगी। जाकर दिखाने की क्या ज़रूरत है। लेकिन दादी जी, चलो जरा दिल्ली घूम आएँ। वहाँ बड़ी भारी प्रदर्शनी हो रही है। देश-देशान्तर की सरकारों ने वहाँ अपने भवन बनाए हैं। दिल्ली भारत की राजधानी है दादी जी, चलो देख आएँ।"

"बेटा, मैं अब क्या देखूँगी। तू बहू को ले जाकर दिखा दे। यहाँ बेचारी पिंजरे की पंछी बनी तड़प रही है। जा उसे दिल्ली दिखा ला।"

"आपकी आज्ञा होगी तो दिखलाऊँगा। पर वह तो इस घोंसले को छोड़ना ही नहीं चाहती।"

"क्यों नहीं ! अरे सुरेश, उस दिन उसी ने वह किताब पढ़कर सुनाई थी, उसमें लिखा था—स्त्री-पुरुष सब बराबर हैं।"

"वाह यह कैसे हो सकता है दादी जी ? स्त्री स्त्री है, मर्द मर्द है। फिर तो राजा-प्रजा भी एक बराबर हो जायेंगे ?"

"एक कैसे हो जायेंगे ? राजा राजा है, परजा परजा है।"

"तो दादी जी, स्त्री स्त्री है, पुरुष पुरुष।"

"अरे ये सब बातें तो हमारे पुराने जमाने की हैं। अब तो देखता नहीं, बड़े-बड़े घर की बहू-बेटियाँ मुँह उघाड़े बाजार में जाती हैं।"

"तुम भी तो अपनी बहू को भेज रही हो !"

"बेटा, वह तो पढ़ी-लिखी है। फिर बाहर की दुनिया देखने में क्या हर्ज

है ? हमारे ज़माने की बात तो हमारे साथ ही ख़त्म हुई। अब तो नए युग के साथ ही सबको चलना होगा।"

"तो तुम भी दिल्ली चलो दादी। और अपनी आँखों से देख लो, तुम्हारी पोतबहू ऊँची एडी का प्लेटफ़ार्म सैण्डल पहनकर और मेम साहेब बनकर किस तरह खटाखट चलती है।"

"जा जा, बहुत बातें न बना। जा दिल्ली दिखा ला बहू को।"

"लेकिन दादी जी, दिल्ली में भीड़-भाड़ बहुत है। आदमी वहाँ खो जाता है। एक बार खो जाने पर फिर ढूँढे मिलता नहीं। यह बड़ी मुश्किल है।"

दादी जी बहुत देर तक हँसती रहीं। सुरेश ने कहा : "दाता क्या उसे ले जाने की आज्ञा दे देंगे ?"

"दे देंगे, मैं कह दूँगी।"

"अच्छा तो अपनी बहू से भी तो पूछ लीजिए ?"

"तू ही पूछ ले। दिल्ली से मेरे लिए लक्ष्मीनारायण की एक अच्छी मूर्ति लाना बेटा !"

"लक्ष्मीनारायण की युगलमूर्ति अवश्य लाऊँगा दादी जी।" सुरेश हँसता हुआ चला गया।

१३

राजा साहेब से जो मँगतू की इतनी झक-झक हुई और मँगतू ने जो राजा और दीवान का अपमान किया, उससे गाँव भर मे सबसे अधिक खुशी हुई मियाँ सत्तार और वहीद को। वहीद लपकता हुआ मियाँ सत्तार की दूकान पर पहुँचा, हँसते हुए बोला : "सुना तुमने चचा, आज तो उस चमारू ने राजा साहेब और दीवान की बस नाक ही काट ली।"

"अबे वह तो कटनी ही थी। आज नहीं तो कल, और कल नहीं तो आज। कांग्रेसी सरकार ने जब उनकी दुम ही काट ली तो नाक कब तक रह सकती है।"

"चचा, क्या हमारे पाकिस्तान में भी ऐसा ही हो रहा है ?"

"खुदा न करे। म्या, क्या हदीस मे ऐसा लिखा है कि छोटे लोग बड़ों के आगे बेअदबी करें। अमा, पाकिस्तान में ऐसी धाँधली नही है। वहाँ तो शरअ की हकूमत है, जिसे किसी ज़माने में अमीरुल मोमनीन ने जिन्दगी दी थी।"

"लेकिन चचा, तंग आकर ही इन्सान जंग पर तुल जाता है, और हमारी यह कांग्रेसी सरकार तो अभी बच्चा है। मैं कहता हूँ कि ये बुर्जुए हम मिहनत-कशों का खून पीने से तब तक बाज न आयेंगे, जब तक इनका खात्मा नही कर दिया जाता।"

"तो खात्मा हो तो गया, रियासत-ज़मीदारियाँ सब छिन तो गई।"

"लेकिन रस्सी जल गई चचा, मगर ऐंठ अभी बाकी है। ये बुर्जुए अभी तक अपने वही पुराने हथियार आजमाना चाहते है। जनता का राज है, पर उन्हें तो चमारों से बेगार लेनी ही होगी। उन्हे यह भी तो सोचना चाहिए कि अब ये चमार नही है, हरिजन है।" इतना कहकर वहीद ठहाका मारकर हँस पड़ा। सत्तार मियाँ मुस्कुराकर रह गए। वहीद अपनी कम्युनिस्ट धुन मे कहता गया : "चचा, ये बुर्जुए हमेशा के बुजदिल हैं, अपनी कमज़ोरी छिपाकर दूसरों पर रुआब डालते है, लेकिन उनकी हालत उस तपेदिक के मरीज की जैसी है जो खून थूक रहा हो और दम तोड़ रहा हो। बस, समझ लो, अब उनका अन्त समय आ पहुँचा।"

"अबे जा-जा, ज्यादा डींग न हाँक। बड़ा कम्युनिस्ट बना फिरता है, किसी दिन राजा साहेब को भिश्ती की ज़रूरत पड़ गई तो बच्चू जी, बेगार में घेरे जाओगे।"

"चचा, बेगार में घेरे जाने वाले कोई और होंगे। यहाँ दो टूक तुर्की बतुर्की जवाब देंगे। दो बार जेल काट आया हूँ, राजा साहेब क्या खाकर हम से बेगार लेंगे ? मैं राजा साहेब से नहीं डरता।"

"ख़ैर, किसी दिन देखा जायगा। लो वह मँगतू आ रहा है।"

मँगतू नीचा सिर झुकाए धीरे-धीरे चला आ रहा था। वहीद ने आवाज़ लगा-कर कहा :

"वाह यार मँगतू, खूब बढ़िया रोमांटिक सीन रहा। मुबारिकबाद देता हूँ। लो बीड़ी पीओो।"

वहीद ने एक बीडी निकालकर सुलगाई। दूसरी मँगतू के आगे की।

मँगतू ने कहा : "मैं बीड़ी नहीं पीता, लेकिन मेरा नाम मँगतराय है।"

"अरे यार, हमसे भी शान, हम तो लंगोटिया यार है, हमेशा से यही मँगतू नाम ज़बान पर चढ रहा है।"

"तो अब याद कर लो मियाँ वहीद, मेरा नाम मँगतराय है।"

"खैर, तो मिस्टर मँगतराय, तुम शायद अभी-अभी कुँवर साहेब से मोर्चा लेकर आ रहे हो। कहो कैसी निपटी। चित या पट।"

"जैसी भी समझो। उन्होने कहा—महाराज से और दीवान से माफी माँग लो।"

"तो माँग ली माफी तुमने ?"

"मैंने कहा—केवल आपके लिहाज से मैं इतना कर सकता हूँ कि यदि राजा साहेब और दीवान साहेब मुझसे माफी माँगे तो मैं उन्हें माफ कर दूँगा।"

"वाह दोस्त, खूब कहा। मान गए गुरु। तब क्या राजा साहेब माफी माँगने को राजी हैं ?"

"नहीं।"

"तो अब तुम क्या करोगे मिस्टर मँगतराय ?"

"मैं कांग्रेस के जनरल सेक्रेटरी से सलाह लूँगा। और कोशिश करूँगा कि घर बुलाकर डराने-धमकाने और बन्दूक से मार डालने की धमकी देने तथा गालियाँ देने का मामला अदालत में चलाया जाय।"

मियाँ सत्तार ने कहा : "भई, ज़रा हाथ-पैर बचाकर काम करना। रियासत का मामला है। लाख जमींदारियाँ खत्म हो गईं, पर अभी हुकूमत है इन्हीं बड़े लोगों के हाथ में। बस कहने भर को ही जनता का राज है।"

"तुम ठीक कहते हो चचा, परन्तु हमारे करोड़ों भाइयों पर ये लोग सदियों से जुल्म करते आए हैं। हम लोग जो कल तक अछूत थे और आज हरिजन बन गए हैं सदियों से पीड़ित और पददलित हैं। अब तो हमें उभरना होगा—अपने ही बल-बूते पर।"

"ठीक कहते हो बरखुरदार, लेकिन यह भी तो सोचो भाई, कि यह हरिजन कहने भर का ही नाम है। तुम्हारे लाखों-करोड़ों भाई तो पहले से बदतर हालत में अब भी रह रहे हैं। जब तक उनकी हालत नही सुधरती तुम कैसे यह उम्मीद कर सकते हो कि दूसरों की नज़रे बदल जायँ।"

"लेकिन चचा, बिना रोए तो माँ भी बच्चे को दूध नही पिलाती। हम आगे बढ़कर राह के काँटे दूर न करेगे तो काम नहीं चलेगा।"

"आगे बढो, लेकिन धीरे-धीरे।"

"नही चचा, ये बड़ी जात वाले और रईस जमींदार हम पर जो गुलामी का बन्धन लादे हुए है, जो जुल्म करते रहे है, इससे समाज में ही धुन लग गया है। असल में यह किसी एक आदमी का कसूर नही है। इसी से मैं सिर्फ राजा साहेब को इसके लिए जिम्मेदार नही ठहराता। यह तो परम्परा से चली आती हुई बुराई है।"

"तो धीरे-धीरे इसका इलाज करो भाई। फोड़े पर मरहम लगने ही से तो वह अच्छा होगा।"

"लेकिन जिस फोड़े की जडे रगों में घुस गई है, वह मरहम से अच्छा नही होगा। उसमें तो नश्तर ही देना होगा।"

अब वहीद ने आवेश में आकर कहा :

"खूब कहा—भई—मिस्टर मँगतराय। नश्तर लगने दो। मवाद बहने दो, इन्क़लाब आने दो। इन्कलाब जिन्दाबाद!" वहीद चिल्लाया और हाथ की बीड़ी फेंककर नाटकीय अदा से सत्तार की ओर देखकर कहने लगा: "चचा, गर्म लहरें जमीन के नीचे जब तक उछलती हैं तब तक उनका किसी को पता नहीं लगता। लेकिन जब वे ज्वारभाटे के रूप में या तूफान बनकर ऊपर आती हैं तब दुनिया उन्हें देख पाती है। हमें वे दिन याद हैं चचा, जब सिर्फ कांग्रेस ही कांग्रेस किसी तरह दबी ज़बान से इन्क़लाब की आवाज़ उठा रही थी और अब तो हमारी यूनियन है। हमारी ताक़तें बढ़ गई हैं। अब हम मेहनतकश कभी इन बुज़ुर्गों को मनमानी न करने देंगे।" इतना कहकर वहीद ने जोर का नारा लगाया—'दुनिया के मजदूरो! एक हो जाओ!' सत्तार ने कहा: "अबे यहाँ दुनिया के मज़दूर कहाँ हैं, क्यों चीख रहा है।"

मगर वहीद हँस पड़ा। उसने कहा: "हम सब मेहनतकश दुनिया के मजदूरों

के नुमाइन्दे हैं। इन्क़लाब जि़न्दाबाद।"

"अच्छा दोस्त मँगतू—नहीं—नही—मिस्टर मँगतराय, फिर मिलेगे।"

और वह इन्क़लाब के नारे लगाता हुआ चला गया। मँगतू भी अपनी राह लगा।

१४

इसे बार पूरे एक साल के बाद सुरेश घर आए थे। आते ही वह मँगतू के चक्कर में फँस गए। सुरेश नए विचार और उदार भावनाओं के सुशिक्षित तरुण थे। कांग्रेस के प्रति उनका रुख सहानुभूति पूर्ण था। अछूतों के प्रति भी उनमें समानता की भावना थी। मँगतू को जो उन्होंने अपने पास बुलाया था—उन्हे आशा थी—कह-सुनकर मँगतू से माफ़ी मँगवा देगे। दाता खुश हो जाएंगे। सनक उनकी उतर जायगी। पर मँगतू ने आकर न केवल माफी माँगने से ही इन्कार कर दिया—उसने राजा साहेब से माफीनामा तलब किया। आज तक भला ऐसा कभी हुआ है कि राजा प्रजा से माफी माँगे। वह भी एक चमार से। परन्तु नए युग का चमत्कार न राजा साहेब समझे थे न कुँवर साहब। मँगतू का हठ अनुचित न था, यह कुँवर साहेब जैसा सुसंस्कृत तरुण समझ गया था परन्तु उन्हें बुरा जरूर लगा। और जैसे उनके आत्म सम्मान को चोट लगी। परन्तु बात यहाँ केवल आत्म सम्मान तक ही सीमित नहीं थी—यदि मँगतू अदालत में राजा साहेब के विरुद्ध मानहानि का आरोप करे, डराने-धमकाने का मुकदमा चलाए तो क्या होगा? सुरेश कानून पढ़े थे। वह इसके परिणाम को सोचकर चिन्तित हो गए। फिर भी अभी तक वह मँगतू की असली शक्ति से जानकार न थे। तो भी इतने दिन बाद घर आने की प्रसन्नता उनकी फीकी हो गई। गाँव मे उनके आने के उपलक्ष्य में जो स्वागत की तैयारियाँ पहले से हो रही थीं वे सब अमल में तो लाई गई, परन्तु उन्हीं के स्वागत सम्बन्धी काम-काज की तो बेगार में मँगतू को बुलाया गया था—अतः एक प्रकार से मँगतू काण्ड में वह भी सम्मिलित हैं; ऐसा उन्हें भान हुआ। और उनके स्वागत

सत्कार में जो धूम-धाम महल में तथा गाँव में हुई, उसमें उन्होंने उदास भाव से ही योग दिया। स्वयं राजा साहेब भी बहुत उदास रहे। अपने जीवन में ऐसा अपमान उन्होंने बर्दाश्त नहीं किया था। अभी तक उनके खून की एक-एक बूँद जल रही थी। मँगतू को तबाह करने के मंसूबे उनके दिमाग़ में आते थे और जाते थे। इसी उधेड़-बुन में वह रात भर न सो सके। ह्विस्की की डबल डोज भी आज उन्हें निश्चिन्त न कर सकी। वह सोच रहे थे—न वह राजा हैं—न रईस है। न उनकी कोई इज्जत है। आज पहले पहल उन्होने अपनी जमींदारी छिन जाने का मातम मनाया। नियमानुसार शाम को गुमाश्ते, कारिन्दे, दीवान, सेक्रेटरी, बारी-बारी से मुजरा करते—हाजिर होकर रियासत से सम्बन्धित सलाह-मश्वरा करते थे; परन्तु आज राजा साहेब ने द्वार बन्द कर लिया। किसी से मुलाकात नही की।

कुँवर साहेब भी इस प्रश्न की गहराई में जा रहे थे। मँगतू ने यदि अदालत का द्वार खटखटाया, तो परिणाम चाहे जो हो—पर राजा साहेब फजीते में ज़रूर पड़ जाएँगे। यह भी निश्चित था कि कांग्रेस वाले मँगतू का पक्ष लेगे। परन्तु इस समय राजा साहेब से उन्होंने इस सम्बन्ध में बात करना ठीक नहीं समझा।

रात को शयनागार में प्रमिलादेवी से मिलना हुआ। प्रमिलारानी ने दिन भर प्रतीक्षा की थी। और अब वह रूठी बैठी थी। उन्होंने कहा: "आपको फ़ुर्सत मिल गई ?"

"नाराज न होना प्रमिला ! मैं तो यहाँ आते ही झमेले में पड़ गया। और अब भी परेशान हूँ।"

"क्यों, क्या बात है ?"

"वही मँगतू वाली बात है।"

"क्या और कुछ घटना हुई ?"

"मैने उसे बुलाकर समझाया था कि दाता से माफी माँग ले परन्तु उसने स्वीकार नहीं किया।"

"क्या कहता है वह ?"

"वह तो कहता है—दाता ही माफी माँगें ?"

"उसकी यह हिम्मत ?"

"हिम्मत उसकी नहीं है, समय की है । वह भी तो समय था जब हम कीड़े-मकोड़ों की तरह उनसे व्यवहार करते थे और वे उफ तक न कर सकते थे।"

"तो अब वे हमारे सिर पर पैर रखकर रहेंगे ?"

"सिर पर पैर रखने की तो बात नहीं है। पहल तो इधर ही से हुई। उसे बेगार के लिए बुलाया क्यों ? गालियाँ दी क्यों ?"

"गालियाँ दीं तो उसको घाव हो गया ? दाता सबके बडे हैं, वह तो हमें भी जो चाहें कह सकते हैं।"

"उस कहने और इस कहने में अन्तर है।"

"क्या अन्तर है ?"

"वह हमें प्यार भी तो करते हैं। हमारी पालना भी तो करते हैं। हमसे ममता भी तो रखते हैं।"

"वह उन्हें प्यार नहीं करते—पालना नहीं करते ?"

"करते हैं। पर वह बात ही दूसरी है प्रमिला रानी। यों पालना तो हम अपने पालतू कुत्ते की भी करते है।"

"तो यह तो मर्यादा की वात है। मर्यादा हमारी बांधी हुई नहीं है। बुजुर्गों की है। चमार बेगार न करेगा तो क्या हम करेंगे ?"

"बुजुर्गों की तो सभी बातें बदल रही है। हमारे बुजुर्गों की जमींदारियाँ छिन गई। अब हम लोगों के मालिक कहाँ रहे। अब तो समानता का युग है। सबको बराबर बनकर रहना पड़ेगा।"

"खाक रहना पड़ेगा। वहाँ कालेज में पढ़कर आप अपने ही विद्रोही हो गये हैं।"

"विद्रोही नहीं प्रमिला ! मैं युगधर्म की बात कर रहा था। खून में तो मेरा भी आभिजात्य है। मँगतू की सच्ची और न्यायपूर्ण बात सुनकर भी मुझे गुस्सा चढ आया।"

"न्यायपूर्ण बात उसने क्या कही ?"

"वह कहता है कि यदि महाराज माफी न माँगेंगे तो वह अदालती कार्यवाही करेगा।"

"क्या यहाँ तक ? उसकी इतनी हिम्मत है ?"

"हिम्मत उसकी नहीं है। समय ने उसे दी है। शक्ति तो समाज के गठन

में है । हम लोगों की कभी यह शक्ति थी कि हम उन्हें पशु और कीड़े-मकोड़ों की तरह रखते रहे और वे हर तरह हमारे नीचे रहते रहे । अब उस शक्ति का स्थानान्तर हो गया है ।"

"तो क्या वह सचमुच दाता के विरुद्ध कचहरी-अदालत करेगा ?"

"करेगा तो दिक्कत आयेगी प्रमिला रानी, मै समझ नही पा रहा हूँ कि क्या करूँ ?"

"क्या आपने दाता से यह बात कही ?"

"वह तो सुबह की घटना से ही बहुत दुखी है । बडा भारी अपमान हुआ है उनका । यह बात वे कैसे सहन कर सकते थे । अब इस समय इस सम्बन्ध में उनसे चर्चा करना मैंने ठीक नही समझा ।"

प्रमिला रानी ने तकिया उनकी ओर सरकाते हुए कहा :

"जाने दीजिए, देखा जाएगा, अभी आप आराम फर्माइए । मैं कहती हूँ—ये इतनी ढेर-सी चीजे आप किसलिए उठा लाए है ?"

"क्या एक भी चीज़ पसन्द नहीं आई प्रमिला रानी !"

"वाह पसन्द की क्या बात है ? चीजे सब बहुत सुन्दर है । पर इतनी चीज़ों की क्या ज़रूरत थी ?"

"ज़रूरत तो अभी और भी पड़ेगी । ये ख़त्म हो जाएँगी । और दूसरी और आएँगी । पर तुम्हें यह क्या सूझी कि उन्हें दादी जी के पास ले गईं ।"

"क्यों ? उन्हें दिखाना तो ज़रूरी था, पूछती, कहाँ से आईं ? लेकिन आप इतने दुबले क्यों हो गये ? क्या खाना ठीक नही मिलता था ?"

"बहुत अच्छा खाना मिलता था । मैं खाता भी खूब था ।"

"फिर दुबले क्यों हो गए ?"

"तुम्हारे विरह में प्रिये !" सुरेश ने प्रमिला रानी पर मोहक दृष्टि डाली और प्रमिला रानी ने लजाकर कहा :

"जाइये, एक महीने से एक भी खत नही लिखा । बाते बनाते है ।"

"सोचा, चलना तो है ही, खत लिखने की ज़हमत अब कौन उठाए । परन्तु तुम तो बहुत मोटी हो गई हो ।"

"सच ?"

"सच-झूठ की बात नहीं है । प्राचीन भारतीय रिवाज़ यह है कि जब बहुत

दिन बाद किसी प्रिय का मिलन हो तो छूटते ही कहा जाय कि तुम बहुत दुबले हो रहे हो। तुम हो प्राचीन आदर्श की महिला, सो तुमने मुझसे यही बात कही। परन्तु मैं ठहरा नई रोशनी का आदमी, मैने मोटे होने की बात कह दी। बस छुट्टी हुई।''

दोनों आदमी ठहाका मारकर हँस पड़े। प्रमिला ने कहा :

"अच्छी बात है। इलाज कल से ही शुरू हो जाएगा।"

"किस बीमारी का इलाज ?"

"आपको मोटा करने का—और मुझे दुबली होने का। आपको खूब मक्खन, मलाई खाना होगा और मै एक हफ्ते का उपवास करूँगी।"

"कल से न ?"

"हाँ, बस कल से ?"

"गनीमत है, तो अब खाना मँगाओ। आज तो मेरे साथ डटकर खाओ।"

प्रमिला ने हँसते हुए नौकर को खाना लाने का आदेश दिया। और बहुत दिन बाद युगल युग्म प्रेमपूर्वक गप्पें उड़ाते हुए खाना खाने लगे।

१५

आनन्द स्वामी आधुनिक युग के तरुण संन्यासी है। देश-विदेश की उन्होंने इसी उम्र मे बहुत यात्रा कर डाली है। वे अनेक भाषाओं के पण्डित हैं, जड़वादी हैं। अधिकांश में वे मौन रहते है। पर जब बोलते हैं तो प्रामाणिक पद्धति से बोलते हैं। वे कई वर्ष से काशी रह रहे हैं। काशी रहकर उन्होंने हिन्दू और बौद्ध दर्शनों का अध्ययन किया है। परन्तु वे दार्शनिक नहीं हैं। स्वभाव उनका बालक के समान सरल है। विचार उग्र और भाषा तीखी है। अध्ययन उनका बहुत गम्भीर है। फिर भी वे कुछ न कुछ पढ़ते ही रहते हैं। भगवा धारण करते हैं। क्लीन शेव करते हैं। चाय पीते हैं, टोस्ट खाते हैं। मौज में आकर बढ़िया सिगरेट पीते हैं। पाकेट में क़ीमती फाउन्टेन पेन और घड़ी रखते हैं। आँखों पर सुनहरी फ्रेम का चश्मा लगाते हैं।

सुरेश से उनकी मुलाक़ात काशी ही में हुई थी। वह मुलाक़ात अब मित्रता में परिणत हो गई है। सुरेश के विचारो का जो परिष्कार हुआ है उसका अधिकतर श्रेय आनन्द स्वामी को ही है। आनन्द स्वामी गुरुडम मे विश्वास नही रखते। वे प्राणी मात्र में मैत्री भावना रखते है। इस बार काशी से वह भी सुरेश के साथ राजगढ़ आए हैं। सुरेश का अधिक समय उन्हीं के पास बीतता है। उनके साथ सुरेश की धर्म-समाज और राजनीति पर बहुधा चर्चा होती है। परन्तु उनकी चर्चा का प्रिय विषय जीवन आदर्श है। जीवन के आदर्श के संबंध में उनके अपने विचार हैं। उन विचारों की व्याख्या करते-करते आनन्द स्वामी कभी तो बहुत गम्भीर हो जाते है, कभी अत्यन्त उत्तेजित हो जाते है। कभी-कभी बोलते-बोलते उनके आकुल-व्याकुल नेत्र चंचल हो उटते हैं। कण्ठ आवेग से अवरुद्ध हो उठता है। तब ऐसा प्रतीत होता है प्रलय मेघ गरज रहे है, देवदूत बोल रहे हैं।

सुरेश को वह प्यार करते है। सुरेश की संस्कृत आत्मा को वह पहचान गए है। सुरेश भी उनके प्रति भक्ति की अपेक्षा प्यार की भावना ही अधिक रखता है। बात करते-करते ऐसा नहीं प्रतीत होता कि कोई संन्यासी गुरु अपने शिष्य को सदुपदेश देता है। बहुधा वार्तालाप मैत्री भावना से होता है। सायं-प्रातः सुरेश आनन्द स्वामी के साथ भ्रमण को जाते है। उस समय बहुत विषयों पर विचार होता है, वहुत विषयों की व्याख्या की जाती है। दिन-दिन सुरेश की आसक्ति आनन्द स्वामी के प्रति बढ़ती जाती है।

आज बदली का दिन है। आषाढ़ के प्रथम मेघ आकाश में बहुत भले प्रतीत हो रहे है। दिनभर उमस रही है। थोडी देर पहले बड़ा भारी अधड़ आ चुका है। और अब बूंदा-बांदी हो रही है। पृथ्वी के भीगने से एक सोंधी सुगन्ध वातावरण में मिलकर चित्त को प्रसन्न कर रही है।

राज भवन के दूसरी मजिल के एक छोटे-से कमरे के बाहर बरांडे मे स्वामी जी चौकी पर बैठे हैं, पास ही कुर्सी पर सुरेश हैं। दोनों मित्रों ने अभी चाय पी है। और आनन्द स्वामी ने एक सिगरेट सुलगाई है। आज वह बहुत प्रसन्न मुद्रा मैं है, भ्रमण उनका आज नहीं हो रहा है। उसके बदले एकांत वार्तालाप का आनन्द लाभ किया जा रहा है। आनन्द स्वामी ने कहा :

"तुम्हारे दिल्ली जाने का क्या रहा सुरेश ?"

"दादी जी ने तो इज़ाजत दे दी है, पर प्रमिला जाने को राजी नहीं होती है। रूढियों में उसका मन बँधा है। परदे की दासता जैसे इन स्त्रियों का शृंगार हो गई है। उनसे वह छूटती ही नही है।"

"कैसे छूट सकती है भला। वह ठहरी पुरुषों की जिन्दा दौलत। सुना नही तुमने स्त्री को 'रत्न' कहते है। कीमती रत्न। इसी से उसे घर की चहारदीवारी मे छिपाकर रखा जाता है। कोई उसे देख न सके, छू न सके, उसे हवा न लग जाय।" आनन्द स्वामी खिलखिलाकर हँस पड़े।

"परन्तु स्त्री तो पुरुष की जीवन-संगिनी है।"

सुरेश की बात सुनकर आनन्द स्वामी कुछ उत्तेजित हो गए। उन्होने कहा : "तुम जीवन-सगिनी कहते हो? किन्तु पुरुषो की हिंसक वृत्ति ने उन्हें सहस्राब्दियों से दासता के बन्धन मे डाल रखा है। बहु पत्नित्व, वैधव्य, और पातिव्रत धर्म का बोझ उन पर लादे रखा। जहाँ एक पुरुष एक ही समय में अनेक स्त्रियाँ रख सकता था, वहाँ स्त्री को मृत पति के साथ जीवित जला देना धर्म बना दिया गया। पुरुष वृद्धावस्था तक ब्याह कर सकता है। किन्तु स्त्री के लिये ८ से ६० तक वैधव्य का विधान बना दिया। वह कभी स्वतन्त्र नही रह सकती। उसकी सारी आर्थिक और सामाजिक स्वतन्त्रता छीन ली गई। और उसकी स्थिति एक दासी की बना डाली गई, और परदे की घृणित और भयानक प्रथा उन पर लाद दी गई। यदि स्त्री-हृदय में सुख, मातृप्रेम का अंकुर न होता तो वह शायद पुरुषों के इस अत्याचार को कभी सहन नहीं कर सकती थी।"

"यह तो बडी ही भयानक बात है।"

"हास्यास्पद भी कम नही है। अरे, स्त्री को 'रत्न' तो जरूर कहा गया है, और उस रत्न को खूब यत्न से छिपाकर भी रखा जाता है, पर उसका मूल्य इन पुरुषों की नजर में क्या है। जानते हो? कानी कौड़ी। क्योंकि वह हीरे-मोती के समान दुर्लभ नहीं है। सुलभ है। पानी की भाँति अति सुलभ। जो मनुष्य की प्यास तृप्ति से बहुत अधिक सर्वत्र बहता और बिखरता रहता है। लेकिन तुम एक बात जानते हो सुरेश?"

"क्या?"

"यदि पानी प्यास के समय मिलना दुर्लभ हो जाय तो मैं समझता हूँ कि

उसकी एक बूंद के लिए कोई भी सम्राट् अपने मुकुट के सारे हीरे दे डालेगा, इसी प्रकार यदि संसार में स्त्रियाँ दुर्लभ हो जायें तो जाना जायगा कि उनका मूल्य क्या है ?"

"परन्तु स्त्री का महत्व तो उनकी सेवा और प्रेम की दुर्लभ भावना के कारण ही है।"

"ऐसा क्यों ? सारे संसार में सतीत्व ही स्त्री का सबसे बड़ा गुण माना जाता है। क्योंकि वही पुरुष के लिए सबसे अधिक लाभदायक है। रामायण, महाभारत, पुराण सभी तो स्त्री के सतीत्व की प्रशंसा में भरे पड़े है।"

"तो यह सतीत्व क्या स्त्रियो ही के लिये है, पुरुष के लिए नही ?"

"यही तो मजेदार बात है सुरेश ! धर्मशास्त्रो ने पुरुषों को यहाँ तक छूट दे दी है कि वे पैशाच विवाह को भी विवाह कह गए है। तभी तो जब विवाह का विचार उठता है तब धर्मशास्त्रों को टटोला जाता है। जानते हो सुरेश धर्मशास्त्र की मर्यादा ? उसमें विधवा विवाह के अधिकारों पर तो बहुत टीका-टिप्पणी की गई है, परन्तु सतीत्व का चरम रूप सती होने को दिया गया है— चिता पर जिंदा जल जाना।"

इतना कहकर आनन्द स्वामी एकाएक भावावेश में आ गये। उनका कण्ठ अवरुद्ध हो गया—कुछ अटककर उन्होने कहा : "यह किसी ने भी तो नहीं सोचा कि जिसे एक दिन गाजे-बाजे के साथ अपनी वंश-वृद्धि के लिए अपने घर में गृहलक्ष्मी बनाकर लाए, आज कैसे उसकी इस प्रकार निर्मम हत्या की जाय। पर इन बातों पर विचार कौन करे ? परलोक में पतिदेव की सेवा कौन करेगा ? देखो तो सुरेश, ऐसी बातो को धर्म वचन कहा जाता है।"

"लेकिन ऐसी भयानक बाते धर्म-वचन कैसे मानी जा सकती हैं ?"

"क्यों नही मानी जाएँगी ? धर्मशास्त्रो मे जो लिखा है ? मनु जी तो साफ़-साफ़ कहते है कि पति-सेवा को छोड़कर स्त्री के लिए कोई काम नही है। जब पति ही स्वर्ग चला गया तो उसकी इस सेविका को भी, बस, उसी के साथ चिता पर रखकर रवाना कर दिया जाय। देर करने से पतिदेव को परलोक में बिना सेवा के कष्ट हो सकता है।"

आनन्द स्वामी उत्तेजना के मारे चौकी से उठ खड़े हुए। वह कह रहे थे : "बड़े-बड़े लोगों ने निर्लज्जतापूर्वक सतियों की महिमा बखान की है। जानते

हो तुम, सती किस ढंग से बनाई जाती थी ?"

"जी नही।"

"ओफ बडी, भयानक बात है! उसे एक कटोरा भंग-धतूरा मिलाकर पिला दी जाती थी, जिससे वह नशे मे बदहवास हो जाय। फिर उसे मृत पति की अर्थी के पीछे खूब सजा-धजाकर ले जाया जाता था। वह बदहवासी मे ही कभी हँसती, कभी रोती, कभी जमीन पर गिरकर लोट जाती थी। फिर चिता पर बैठाकर उसे कच्चे बाँस की मचिया से दबा दिया जाता था और चिता पर बहुत-सी राल और घी डालकर बहुत-सा धुँआ कर दिया जाता था कि उस अभागिन की छटपटाहट और मृत्यु-यन्त्रणा देखकर कोई डर न जाय। दुनिया भर के ढोल, दमामे, खरताल, शख फूँके जाते थे कि उसका आर्तनाद कोई न सुन सके।" इतना कहते-कहते आनन्द स्वामी अपने दोनों हाथों की मुट्ठियाँ बाँध-कर चिल्ला उठे—"ओ हत्यारो, अरे खूनियो, समय आएगा जब इस सती धर्म का पूरा मूल्य पुरुषों को चुकाना पडेगा।" वे दोनों हाथों से सिर पकडकर भूमि पर बैठ गए, उनकी उगलियों के नीचे से झर-झर आँसुओ की धार बह चली। सुरेश पत्थर की मूर्ति की भाँति निश्चल खड़ा रहा। बहुत देर तक दोनो के मुँह से बात नही फूटी।

थोडी देर बाद शान्त होकर आनन्द स्वामी ने कहा :

"केवल भारत ही में नही, सारी दुनिया में विधवाओं के विवाह को अनादर की दृष्टि से देखा जाता है। इसी से पति की चिता पर स्त्री को जला डालना ही एक प्रकार से नारी-पूजन समझा जाने लगा और वह सती-धर्म बन गया। कैसे शोक की बात है कि मृत पति के साथ पत्नी की आत्महत्या का प्रचार अन्य देशों में भी रहा है।"

"क्या अन्य देशों में भी ?"

"हाँ भाई, यह मानव-हृदय-हीनता की पराकाष्ठा है। परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि इतना अत्याचार और पैशाचिक निष्ठुरता सहन करके भी स्त्रियाँ कैसे पुरुषों से प्यार करती हैं ?"

"शायद वे अभी तक यह नहीं समझ पाई हैं कि जिन्हें वे पिता, भाई या पति कहती हैं वे कितने स्वार्थी और निष्ठुर हैं। ये स्त्रियाँ सदैव उसी पर विश्वास करती आई हैं, जिसे पुरुषों ने धर्म कह दिया। उन्होंने पुरुषों की इच्छा

को अपनी इच्छा मानकर भूल की है, परन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि वे अपनी भूल पर गर्व और सुख की अनुभूति करती हैं।"

"मै तो यह कहना चाहता हूँ कि अपने स्वार्थों के लिए पुरुषों ने सदैव स्त्रियों का अपमान किया है। और अफसोस की बात तो यह है कि स्त्रियाँ यह बात समझकर भी नही समझती। और इस बात पर विचार नहीं करती कि उनके सब दुःख-दर्दों की तह में उनके भाई, पिता और पति है जो पुरुष हैं। वे उन्हें आत्मीय, पत्नी या पुत्री समझकर नही—नारी समझकर उनके सम्बन्ध में निर्णय करते है; और उनका केवल एक ही ध्रुव ध्येय है कि किस प्रकार अधिक से अधिक स्त्री जाति का शोषण किया जाय।" आनन्द स्वामी कुछ देर जैसे गहन चिंतन मे मग्न हो गये। उन्होंने अत्यन्त गम्भीर वाणी में कहा : "मनु है, पराशर है, मूसा है, जो श्लोक पर श्लोक, वचनों पर वचन बनाते चले जाते हैं। इन्होने स्वार्थ को धर्मासन पर बैठाकर समाज पर शासन कराना चाहा है, स्वार्थ जब धर्मासन पर बैठ जाता है तब क्या होता है जानते हो ?"

"आप ही कहिए।"

"तब, सुरेश, उसके रुआब के सामने व्यक्तिगत सब सुख-दुःख, स्नेह, ममता, ज्ञान, विवेक अतल पाताल में डूब जाते है। हमारी सती-प्रथा और दूसरे देशों की ऐसी ही निष्ठुर प्रथाओं का मूल कारण यही है।"

"लेकिन ये पगड़बाज पण्डित जी प्रत्येक सामाजिक बात पर अपनी पोथी खोलकर उसके पन्ने उलटते है। क्या वे यह नहीं जानते कि विद्या के आलोक से हृदय उदार होता है ?"

"नही भैया, वे तो केवल शास्त्रों के श्लोकों को जानते हैं। उन्होंने जनता को अपनी पोथियों के जादू से ऐसा वश में किया हुआ है कि जनता प्रत्येक सामाजिक मामलों के निर्णय कराने को उन्हीं के पास दौड़ती है। हर बात में लोग उन्हीं से पूछते हैं—क्या यह बात ठीक है ? परन्तु इन थोथी पोथियों ने उनकी दृष्टि को और विचारों को अति क्षुद्र बना दिया है, और इन धर्म-शास्त्रों ने नारी जाति को सदैव के लिए दुःख सहने की परिस्थिति में डाल दिया है।"

"परन्तु जिन स्त्रियों को हम अन्धकार में और घर के धन्धों में जीवन भर लगाए रहते हैं—क्या वे आर्थिक आय और उच्च कामों के उपयुक्त नहीं हैं ?

क्या उनमें साहस, बुद्धिमत्ता या सब कलाओं में प्रवीण होने की क्षमता नही है ?"

"क्यों नही, परन्तु यदि उन्हें उभरने दिया जाय तो पुरुषों का उन पर तथा समाज पर प्रभुत्व कैसे स्थापित हो सकता है। नेपोलियन जैसे पुरुष भी स्त्रियों को हीन दृष्टि से देखते थे। तुम जानते हो सुरेश, प्राणीमात्र पर दया का वरद हस्त रखने वाले बुद्ध का स्त्रियों के पक्ष में क्या मत था ?"

"जी नही।"

"बुद्ध ने स्त्री को परिग्रह कहा है। उन्होंने स्त्री को उपभोग्य वस्तु कहा है, और वह सब उपभोग्य वस्तुओं को परिग्रह मानते हैं। इसलिए—'अपरिग्रह' के दायरे में उन्होने धन-दौलत, दास-दासी, जमीन आदि उपभोग की सामग्री को त्यागने के साथ ही स्त्री को त्यागने का भी आदेश दिया है। बौद्धो की भाँति जैन भी स्त्री-परिग्रह को सबसे बड़ा परिग्रह मानते हैं।"

"परन्तु इस मान्यता का कारण क्या है ?"

"कारण तो स्पष्ट है। स्त्री के घर में आते ही उसके पीछे घरबार, नौकर, बाग-बगीचे, आदि सारे सामान जुटाने पड़ते है। इसी से जैनों और बौद्धों ने स्त्री परिग्रह को सबसे बड़ा मानकर स्त्री से सब प्रकार का सम्बन्ध रखना संघ के नियमों में सबसे बडा अपराध करार दे दिया है।"

"क्या पाश्चात्य देशों में स्त्री स्वतन्त्र है ?"

"खाक स्वतन्त्र है, मैने तो सर्वत्र यही देखा कि यह कोरा दिखावा है। भीतरी दासता स्त्रियों की वहाँ भी वैसी ही है। वास्तविक बात यह है कि सारे ही संसार की स्त्रियाँ आर्थिक दृष्टि से पुरुष पर अवलम्बित हैं—इससे वे स्वतन्त्र नहीं हो पाती हैं। पति दुराचारी हो, शराबी हो तो भी तो उसे उसी का सहारा लेना पडता है। क्योंकि वह निरुपाय है। फिर उस पर बच्चों का भी तो भार है। पति को तलाक देकर वह किसी तरह अपना पिण्ड छुडा सकती है—पर बच्चों का क्या करे ? बच्चों को लेकर तो वह दूसरा ब्याह भी नहीं कर सकती।"

"परन्तु योरोप-अमेरिका में तो बहुत स्त्रियाँ स्वतन्त्र आजीविका उपार्जन करती हैं ?"

"करती हैं। फिर भी उनमें बहुतों की इच्छा है कि वे विवाह कर के सन्तान

की माता बनें। परन्तु वे यह जानती हैं कि विवाह करते ही उन्हें पुरुषों की दासता भोगनी पड़ेगी।"

"तो इसका तो अर्थ यह है कि पुरुषों ने स्त्रियों को राजनैतिक दृष्टि से अपने शासन के अधीन रख छोड़ा है। और उनका आगे भी यही विचार है।"

"बेशक यही बात है। पुरुषों को स्त्रियों पर हुक्म चलाने की जो आदत पड़ गई है ? फिर राष्ट्रवादी देशों मे तो स्त्रियाँ पुरुषों के भोग-विलास की तथा युद्ध में तोपों के मुँह में झोंक देने के लिए नए प्राणी पैदा करने की ज़िन्दा मशीनें हैं। इसलिए स्वभावतः ही वे अपने सब यन्त्रों मशीनों की भाँति इस जिन्दा मशीन पर भी अपना कब्ज़ा बनाए रखना चाहते है।"

"परन्तु मै समझता हूँ कि अब समय आ गया है कि उन्हें समाज में समानता के अधिकार दे दिए जाएँ। स्त्री तब तक सतुष्ट न होगी जब तक उसे सामाजिक स्वाधीनता नहीं मिलेगी।"

"हाँ, यह बात तो है ही। पर स्त्रियों की स्वाधीनता तब मिलेगी जब राष्ट्रवाद और पूँजीवाद के सड़ते हुए मुर्दे दफना दिए जाएँगे।"

"परन्तु ऐसी हालत में प्रेम का क्या स्थान है ?"

"स्त्री से प्रेम तो उतना ही हो सकता है जितना किसी का अपनी सम्पत्ति से। क्योंकि सारे संसार की सभ्य-असभ्य जातियाँ स्त्री की गणना अपनी संपत्ति के अन्तर्गत ही करती आई है। इसी से सम्पत्ति का उत्तराधिकार भी स्त्री की ही ओर से आया है।"

"परन्तु स्त्री जाति के लिए जो यह स्वार्थपरता, एकान्त उन्मत्तता, और पाशविक प्रवृत्ति दुनिया भर मे रही है, उसने केवल स्त्री को ही आहत नहीं किया है। पुरुष ने अपना भी अपमान किया है। वास्तव मे इस मामले में पुरुष बहुत नीचे गिर गया है।"

"यह तुम्हारे जैसे इने-गिने विचारशीलों की बातें है सुरेश, वास्तव मे आज के सभ्य जीवन में भी नारी का स्थान वैसा ही है, केवल उसका रूपान्तर हो गया है। परन्तु अब मानव जाति के इतिहास में विकास का वह युग आ गया है, जब स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों में सब पुराने आधार समाप्त हो जाने चाहिएँ और प्रेमाकर्षण ही उसका मूलाधार होना चाहिए। तभी स्त्री-पुरुष समान भाव से परस्पर पूरक होकर एक दूसरे के जीवन-साथी बन सकते हैं।"

"मैं भी यही समझता हूँ, परन्तु जो पुरुष इस मार्ग में आगे कदम उठाते हैं उनमें सबसे बड़ी बाधक स्त्रियाँ ही है। आप प्रमिला को ही लीजिये। वह तो सुशिक्षिता है—परन्तु समाज मे आगे आने की उसकी तनिक भी रुचि नही है।"

"तो सुरेश, यह तो युग-युगान्तरों के संस्कार है। इसके अतिरिक्त आज के सभ्य युग मे स्त्रियों के लिए खुले संसार के सामने आने मे पुराने असभ्य युग से कम खतरे नही है। उन खतरों से उन्हें बचाना अकेले पुरुषों के बूते का काम नही है, स्त्रियों को इस दशा मे स्वय भी कृत कार्य रहने की आवश्यकता है।"

"मै चाहता हूं, आप एक बार प्रमिला से बात करे।"

"नही सुरेश, बातचीत की जरूरत नही है। समाज की खुली पोथी खोलकर उसके सामने रख दो। और जो कुछ उन्हे दिखाना-सुनाना है, देखने-सुनने दो; सीखने दो। इसी से उनमे साहस बढ़ेगा। नये जीवन का दर्शन होगा। उनके मस्तिष्क की दासता का अन्त होगा।"

सुरेश बड़ी देर तक सोचते बैठे रहे। स्वामी जी ने कहा :

"क्या सोच रहे हो सुरेश ?"

"मैं सोच रहा हूँ—कि हमने जो स्त्रियों को अबला की संज्ञा दी है—सो इसका कारण क्या है। संसार के किसी भी प्राणी ने अपनी माता को मातृ जाति की सदस्य होने के नाते अबला की संज्ञा नही दी। यह पतन तो हम बुद्धिजीवी मानव ही में पाते हैं।"

"तो इसमे झूठ भी क्या है ? आदिकाल ही से नारी को नरक का द्वार कहा गया है। उसमें पुरुष से कई गुना अधिक क्षुधा और काम का वास है। वह न विद्या अध्ययन के योग्य है, न विश्वास के। प्राचीन ऋषि-मुनी यही तो कहते आए है।"

"जी हाँ, और उन विचारों का पालन भी खूब कठोरता से हुआ है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम ने गर्भवती सीता को केवल एक अपवाद के कारण ही त्याग दिया, धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने अपनी सम्पत्ति के समान द्रौपदी को भी जुए के दाव पर लगा दिया। दुष्यन्त ने शकुन्तला के साथ जो सलूक किया, उसकी चर्चा करना ही व्यर्थ है। मध्ययुग मे सती के नाम पर न जाने कितनी

स्त्रियों को बर्बर पशुओं की भाँति जीती जला दिया गया। और आज भी समाज उन पर अत्याचार कम नही कर रहा।"

"तो यह तो वर्ग-संघर्ष की कहानी है। तुम यह तो मानोगे सुरेश, कि संसार का पहला वर्ग विभाजन स्त्री और पुरुष का ही हुआ।"

"जी हाँ, परन्तु मै ज़रा दूसरे ढग पर यही बात कहना चाहूँगा। मैं यह कहूँगा कि इतिहास का पहला वर्ग-उत्पीड़न पुरुष द्वारा स्त्री का उत्पीड़न है। परिवार मे स्त्री सर्वहारा के रूप में और पुरुष बुर्जआ के रूप मे है। और यह दमन और उत्पीड़न सार्वदेशिक है।"

"परन्तु प्रागैतिहासिक काल मे ऐसा नहीं था सुरेश। उन दिनों ज़मीन की कमी नही थी। जनसंख्या बहुत कम थी। व्यक्तिगत सपत्ति का अभी विकास ही न हुआ था। सम्पत्ति पर सामूहिक सत्ता थी। और उसका सार्वजनिक उपभोग होता था। पुरुष जंगल मे आखेट करते, मछली मारते, फल-मूल लाते, और स्त्रियाँ घरो मे भोजन बनाती, सूत कातती, और कपड़ा बुनती थी। उस समय स्त्री का स्थान काफी महत्वपूर्ण था।"

"परन्तु उस काल मे नारी के महत्व का एक कारण यह भी था कि तब समाज मातृसत्तात्मक था। यौन सम्बन्ध मुक्त होने के कारण बच्चे माता के संरक्षण मे ही रहते थे। समाज भिन्न-भिन्न गणो या गोत्रो मे बँटा था और प्रत्येक गोत्र का केन्द्र एक स्त्री थी।"

"किन्तु ससार तो परिवर्तनशील है। समाज ने धीरे-धीरे प्रगति की। पशु-पालन और कृषि का युग आया। उद्योग और शिल्प का विकास आया। यह स्वाभाविक था कि उत्पादन के साधनों पर पुरुष का प्रभुत्व हो। क्योकि पुरुष के कृषि उद्योग और पशु पालन की तुलना में स्त्रियों के पाक-नैपुण्य और गृह-कार्यो की गणना कुछ वज़न न रखती थी। उस आदिम युग मे असभ्य योद्धा और शिकारी का स्थान गौण था, तथा स्त्री का स्थान प्रमुख था। सभ्य पशु-पालक युग में वह न रह सका।"

"और इसके बाद ही विवाह-प्रथा ने विकसित होकर पुरुष को अमर्यादित स्वतन्त्रता और स्त्री को चिरदासता प्रदान कर दी।"

"यह तो होना ही था। विवाह ने परिवार प्रथा का विकास किया। और तब पिता का महत्व बढ़ा। आदि काल में तो पिता को कोई जानता ही न था।"

"यहाँ से पुत्र सत्ता का आरम्भ हुआ। पुरुष परिवार का स्वामी बन गया। और जब सम्पत्ति का विकास हुआ तो उत्तराधिकार प्रथा ने पिता की सम्पत्ति पर पुत्र का अधिकार स्थापित किया।"

"जी हाँ और पुरुष स्त्री का भी परिवार की भाँति स्वामी हो गया। उसके पल्ले सतीत्व और पातिव्रत बाँध दिया गया।"

"तो सुरेश, इससे लाभ भी हुआ। सामूहिक और गान्धर्व विवाह के स्थान पर एक अधिक सभ्य और मानवोचित विवाह-प्रणाली का विकास हुआ।"

"पर इससे स्त्री जाति की स्वतन्त्रता तथा अधिकारों का तो सदा के लिए अपहरण हो गया। और अब उनका मुख्य कर्त्तव्य यही रह गया कि वह वैध संतानों को जन्म दे और व्यक्तिगत परिवार के दायित्व को सम्हाले।"

"इसी से स्त्री का सब सामाजिक महत्व ख़त्म हो गया। और वह गृहदासी बन गई। गृह का स्थायी पुरुष उसका पति—प्रभु हो गया।"

"तो क्या तुम समझते हो कि आदिम साम्यवाद सभ्यता के विकास में भी क़ायम रह सकता था? और वर्ग-विभाजन रुक सकता था, वह नये काल की माँग न थी?"

"मैं यह तो खैर नहीं कहता। पर यह तो स्पष्ट ही है कि इसी युग मे स्त्री-विरोधी विचार समाज में पनपे। मनु वर्गविभक्त समाज के स्मृतिकार थे। उन्होंने स्त्रियों के सम्मान की तो हिमायत की, परन्तु उनके लिए शूद्रों के समान-विद्योपार्जन और स्वतन्त्रता की मनाही कर दी। तथा उन्हे आजीवन पिता-पति और पुत्र पर आश्रित कर दिया। पति को अमर्यादित अधिकार भी इसी युग मे मिले। और उसकी स्थापना एक देवता के रूप में कर दी गई। तथा स्त्री का स्थान एक चरणदासी का स्थायी रूप से क़ायम हो गया।"

"तो यह स्वाभाविक भी तो था। नारी तो माधवी लता के समान कोमल है। वह तो सदैव ही आम्र तरु में लिपटकर आश्रय लेती रही है।"

"वाह, क्या सुन्दर कवित्व है। कैसी मोहक उपमा है, शायद यही भावुकता भारत में संसार के सब स्त्री-पुरुषों से ऊपर जा पहुँची और हिन्दुओं मे पति-पत्नी का सम्बन्ध इस लोक तक ही नहीं सीमित रहा। वह तो जन्म-जन्मान्तर तक व्याप्त हो गया। और इसीलिए पति के मर जाने पर परलोक में उसकी प्राप्ति के निमित्त उसे चिता में जीवित जलकर सती होना पड़ा। शताब्दियों तक यह

सती धर्म हिन्दू स्त्री का सर्वोपरि धर्म माना जाता रहा।"

"परन्तु सुरेश, यह उस युग की एक अनिवार्य सामाजिक आवश्यकता थी। वह युग ही ऐसा था कि मनुष्य विचारते थे कि उनकी मृत्यु के बाद उनकी सम्पत्ति और स्त्री का क्या होगा। सम्पत्ति के लिए तो पत्नी ने पुत्र पैदा कर ही दिया, पर पत्नी की रक्षा कौन करे ? इसीलिए यह घोषित कर दिया गया कि स्त्री पति के साथ जल मरे और सती की उपाधि धारण करे।"

"परन्तु आज की स्त्री तो स्वतन्त्रता के लिए छटपटा रही है।"

"यह भी युग-प्रभाव है। योरोप के सम्पर्क से जो अनेक परिवर्तन भारतीय समाज में हुए है, नारी का यह जागरण भी उनमे एक है। राष्ट्रीय चेतना के साथ इस नारी जागरण ने भी एक सक्रिय रूप धारण किया। और वे भी पुरुषों की भाँति अपने देश-धर्म और राष्ट्र के लिए पुरुषों के समान ही सजग और क्रियाशील हुईं।"

"और इसका कारण यह था कि योरोप का सामन्तवाद भारतीय सामन्त-वाद से कही अधिक उदार था। इसी से वहाँ स्त्रियों को अधिकार जरा पहले मिले। १९वी शताब्दि की प्रोटेस्टैण्ट बुर्जुआ क्रान्ति और फ्रेन्च क्रान्ति ने नारी को समस्त योरोप में समानाधिकार से सम्पन्न कर दिया। उसके बाद उदीयमान पूँजीवाद ने सामन्ती चक्की के नीचे पिसने वाली समस्त नारियों को समानता और स्वतन्त्रता का संदेश दिया। वास्तव में उसने सामाजिक उत्पादन के क्षेत्र मे इतनी बहुलता ला दी कि स्त्री को अब उसमे प्रत्यक्ष भाग लेना पड़ा। और इस तरह वे समाज में एक स्वतन्त्र सदस्य की भाँति जीवनयापन करने लगीं। इसके बाद उन्हें धीरे-धीरे राजनीतिक, सामाजिक, और आर्थिक अधिकार मिलते चले गए।"

"यही बात हुई। और जब योरोपीय पूंजीवाद और राष्ट्रीयता की आंधी भारत में चली तो पूँजीवादी उत्पादन के साथ ही नारी स्वातन्त्र्य की आवाज़ भी तेज़ होती गई। स्त्रियों को भारत में भी स्वतन्त्र जीविका की सुविधाएँ मिलती चली गईं। और सार्वजनिक जीवन में भी उन्हें स्थान मिलता गया।"

"परन्तु इसी समय पूंजीवाद ह्रासोन्मुख होने लगा। दोनों योरोपीय महा-युद्धों ने योरोप के पूंजीवाद और राष्ट्रीयता की कमर तोड़ दी। इससे स्त्रियाँ भी पूर्णरूपेण स्वतन्त्र न हो सकीं। केवल उनकी दासता की जंजीर की कुछ

कड़ियाँ ही टूट कर रह गईं। इस ह्रासोन्मुखी पूंजीवाद ने बेकारी, मंदी और युद्ध के संकट संसार पर लाद दिए। और जब पुरुष ही उत्पादन क्षेत्र में बेकार हो गए तो स्त्रियों का वहाँ अग्रसर होना रुक गया।"

"असल बात यह है कि बिना आर्थिक स्वतन्त्रता के स्त्री मुक्त नही हो सकती।"

"आप आर्थिक स्वतन्त्रता की ही बात कहते है। परन्तु इसमे जो एक नैसर्गिक दुविधा है उस पर भी तो विचार कीजिए।"

"कौन-सी द्विधा ?"

"मातृत्व की। मातृत्व को नारी की चरम सार्थकता माना गया है। परन्तु जब कोई स्त्री अपने परिवार की ज़िम्मेवारी ग्रहण करती है तो वह सामाजिक उत्पादन मे भाग नही ले सकती। और यदि वे सामाजिक उत्पादन मे सक्रिय भाग लेती है और स्वतन्त्र रूप मे अर्जन करना चाहती है तो अपना पारिवारिक कर्तव्य नही निभा सकती। अतएव वे चाहे जितनी भी स्वतन्त्रता के लिए छटपटाएं उन्हें दो-ही काम घर मे रहकर करने होंगे।"

"दो काम कौन-से ?"

"प्रजनन और पाक संचालन।"

"परन्तु आज भी भारत मे बहुत स्त्रियाँ जीविकोपार्जन कर रही हैं।"

"अवश्य कर रही है। परन्तु उनमे बहुत ऐसी है जिनको पारिवारिक जीवन दिनो दिन अप्राप्य होता जा रहा है। हमारे समाज का गठन ही कुछ ऐसा है कि पुरुष जीविकोपार्जन करे तो उसका पारिवारिक जीवन जैसा का तैसा रहता है। पर स्त्रियो की बात तो इससे सर्वथा ही भिन्न है। आप जानते है—इस विषम परिस्थिति का क्या परिणाम हमारे सामने आता जा रहा है ?"

"आप ही कहिए, क्या कहना चाहते है।"

"मैं यह कहना चाहता हूँ कि स्त्रियों मे से मातृत्व और विवाह-दायित्व की भावना नष्ट हो रही है। और पुरुषो के प्रति घृणा के भाव उनमें उत्पन्न होते जा रहे हैं। आप जानते है इसका क्या परिणाम होगा ?"

"क्या परिणाम होगा ?"

"यह, कि वे स्त्रियाँ सब बन्धनमुक्त आधुनिकाएँ हो जाएँगी। और

समाज में यौन अनाचार और नैतिक अराजकता फैल जाएगी। जो समाज के लिए एक भयानक अभिशाप होगा।"

"तो इसके लिए तो पूँजीवादी समाज ही जिम्मेदार है। आप चाहे जितना भी उनके धर्मरक्षक और समाज-सुधारक बनकर चीख-पुकार करें, उसका कुछ परिणाम न होगा। अब तो भारतीय स्त्रियों के सामने दो ही मार्ग है— गृहदासी होना या मुक्त आधुनिकाएँ होना।"

"एक तीसरा मार्ग भी है।"

"वह कौन-सा ?"

"कि समाज की सम्पत्ति का राष्ट्रीयकरण करके एक ऐसी सुश्रृंखल उत्पादन प्रणाली का संगठन किया जाय जिसका लक्ष्य सर्वोदय हो। उसमे पुरुषों के साथ स्त्रियों का भी सामाजिक उत्पादन मे महत्वपूर्ण भाग हो। वैवाहिक और पारिवारिक जीवन के दायित्व को सम्भालने के लिए स्त्रियो को वेतन-अवकाश यथेष्ट मिले। और मातृत्व का सुचारु रूप से सम्पादन करने के लिए सब संभव सुविधाएँ उन्हें निशुल्क प्राप्त हो। ऐसी अवस्था मे नारी पुरुष की सही अर्थों में जीवन-सगिनी बन सकती है। उसे मातृत्व का दायित्व लेने में भी उत्साह होगा। और वह विकृत आधुनिका न बन पाएगी।"

"लेकिन यह भी तो आवश्यक है कि गृह-कार्य को भी एक सार्वजनिक उद्योग में परिणत कर दिया जाय। जिससे स्त्रियाँ गृह-कार्य की तुच्छता, एक-रसता तथा श्रमभार से ऊब न उठें। और विवाह-बन्धन और मातृत्व उनपर तनिक भी बोझिल न होने पाए।"

"आप शायद यह कहना चाहते है कि देश मे सार्वजनिक भोजनगृहों, शिशुगृहों, मातृसदनों आदि गृहस्थ जीवन सहायक संस्थाओ की स्थापना हो।"

"बेशक, मेरी मशा यही है। तभी तो नारी पर से मातृत्व और गृहस्थी की दासता का बोझ हट सकता है। और वह मुक्त भाव से आत्म विकास प्राप्त कर सकती है।"

"आपकी बात एक प्रकार से ठीक है। वास्तव में नारी की प्रतिद्वन्द्विता पुरुषों से राजनीतिक नही है। वह तो केवल ठोस आर्थिक समानाधिकार चाहती है। आदिमकाल की नारी सामाजिक उत्पादन में खुलकर भाग ले सकती थी। आज की नारी भी तभी सच्चे अर्थों में समाज की स्वतन्त्र अंग बन

सकेगी जब वह आधुनिक उत्पादन प्रणाली में अपना महत्वपूर्ण भाग प्राप्त कर सकेगी। तभी नारी माता, पत्नी और सखी का पद सार्थक कर सकेगी।"

इतना कहकर आनन्द स्वामी एकदम चौकी पर से उठ खड़े हुए। उन्होंने आकाश की ओर देखा। हाथ में लाठी उठाई और कहा : "आकाश खुला है जरा-सा घूम आया जाय सुरेश।"

वे चल दिए। और सुरेश मन ही मन विचार करता हुआ उनके साथ चला।

१६

सद्यः स्नाता कुँवरानी प्रमिला शतधौत कमल की शोभा धारण कर रही थीं। उन्होने श्वेत कौशेय पहिना था। स्नान के बाद वह पूजाघर मे जा बहुत देर तक देवार्चन करती रही। फिर देवता को प्रणाम कर और देवपूजा के दो फूल आँखों से लगा वह अपने शयन-कक्ष में आई। शयन-कक्ष में कुँवर सुरेश की तस्वीर चाँदी के चौखटे में लगी थी। प्रमिला ने तस्वीर के पाद पद्म में वे दोनों फूल एक बार आँखों से लगाकर चढ़ा दिए। और अपने ओठ उन चरणों में छुआ दिए। इसी समय किसी के पैर की आहट पाकर उसने पीछे फिर कर देखा—सुरेश चुपचाप खड़े उसकी पूजा को देख रहे हैं। पति को वहाँ देख प्रमिला रानी कुण्ठित हो गई। उसने खडी होकर आँचल सम्हालते हुए कहा : "चोर की तरह यों चुपचाप आ खडे होने की तुम्हें क्या जरूरत थी ?"

"चोर से तुम यह आशा करती हो कि वह ढोल पीट कर आए ?"

"बड़े वो हो तुम ! मैं जाती हूँ ..वह मुँह फेर कर जाने लगी। उसका रास्ता रोककर सुरेश ने कहा : "चोर जिस काम से आया था, वह तो सुनती जाओ।"

"कुछ जरूरत नही है, चोर जो चाहे चुरा ले जाय। मैं शोर मचाकर उसे गिरफ्तार नही कराना चाहती।"

"लेकिन उसका इरादा तुम्हें गिरफ्तार कर ले जाने का है।"

"कहाँ ?"

"दिल्ली।"

"किस लिए ?"

"बहुत काम है। तुमने दिल्ली कभी देखी नहीं, देख लोगी। बाहरी दुनिया से जान-पहचान होगी।"

"बाहरी दुनिया से मुझे क्या लेना-देना है ?"

"अभी तो कुछ नही कहा जा सकता। संभव है वहाँ जाने से कुछ लेने-देने की इच्छा हो जाए।"

"मैं क्या लेन-देन का व्यापार करती हूँ ?"

"यदि मुनाफा काफी हो तो मुनाफे का व्यापार करने में क्या हर्ज है।"

"मुनाफे के चक्कर में तुम पुरुष लोग ही पड़ो—यही अच्छा है। हम स्त्रियाँ जन्मजात कजूस है। मुनाफे के लोभ में हम अपनी गांठ की थोड़ी-सी पूँजी को खतरे में नहीं डालना चाहती।"

"और यदि खतरा न हो ?"

"तो भी नही! परेशानी तो है ही।"

"खैर, तो जरूरी चीजों की खरीद-फरोख्त तो स्त्रियों को भी करनी पड़ती है।"

"ऐसी कौन-सी ज़रूरी चीज़ है ?"

"जैसे पत्नी के लिए पति और पति के लिए पत्नी।"

"वाह, यह भी कोई सौदा हुआ ?"

"सौदा ही समझा जाय तो क्या हर्ज है ?"

"तो मेरा सौदा तो हो चुका। मैं तो तुम्हें खरीद चुकी।"

"परन्तु यह सौदा तो अभी कच्चा ही है।"

"क्यों ? कच्चा क्यों है ?"

"तुम मुझमें अभिभूत हो, तुम यह कहाँ जानती हो कि तुमने किसे प्राप्त किया है, और किसे चाहती हो ?"

"वाह, ये तुम्हारी बाते मैं नहीं सुनना चाहती।"

"तुम्हें सुनना चाहिए। तुम्हें जानना चाहिए। घर की दुर्भेद्य दीवारों के बाहर भी संसार है। और उसमे स्त्रियों की आवश्यकता पुरुषो से भी अधिक हैं। स्त्रियाँ जब तक घर की दीवारों को लांघकर बाहर नही निकलेंगी—तब

तक वे न अपने अहं को समझेंगी, न संसार के साथ उनका जो सम्बन्ध है उसी को समझेंगी।"

"परन्तु हमारा राजघराना है। हमारे घर में परदे से बाहर कोई स्त्री नही आई। फिर भी हम यह नही मानती कि हमें कुछ भी प्राप्त नहीं हुआ। भला राजघराने की बहू घूंघट उठाकर बाहर सड़क पर घूमेगी तो उसका गौरव कहाँ रहेगा ?"

"तो तुम समझती हो कि स्त्री पिंजरे की चिड़िया है, और उस पिंजरे में बन्द रहने ही मे उसका गौरव है ?"

"तुम जो चाहो सो कहो—परन्तु मुझे तो इसी पिंजरे मे जो कुछ मिला है, उसके सामने मैं सारे ससार की संपदा को हेय समझती हूँ।"

"पर सारे ससार की संपदा तुमने अभी देखी कहाँ है ? देखोगी तो शायद यह मत न रहे। फिर मुझे भी तुमने खरीदा कहाँ है ? मैं तो तुम्हारे पल्ले बाँध दिया गया हूँ। खरीद तो तब होती जब बहुतो मे से एक पसंद किया जाता।"

"चलो रहने दो। तुम क्या दादी जी को नही देखते ? आठ बरस की उम्र मे इन ड्योढियों में बहू बनकर आई और अब अट्ठासी बरस की हो गई है, पर इस घर की देहरी उन्होंने नही उलांघी।"

"हर युग मे अपना-अपना जीवन-क्रम रहता है। हमारा आज का युग भी क्रान्ति का युग है। अब न राजघराने रह सकते हैं न उनकी पुरानी मर्यादाएँ। फिर पर्दा तो एक दकियानूमी चीज़ है।"

"होगा, पर मुझे तो दादा जी के जीते जी घर की दहलीज उलांघना बनेगा नही।"

"और यदि दादी जी तुम्हें दिल्ली जाने की आज्ञा दे दें ?"

"आज्ञा उनसे कौन माँगेगा ? मैं तो माँगू नही।"

"मैं माँगू तो ?"

"तो दाता क्या कहेंगे ? घर के लोग क्या कहेंगे ? दादी जी ही क्या समझेंगी ?"

"तुम्हारी समझ में यह इतनी बड़ी अनहोनी बात है ?"

"है ही ? आखिर हमारा राजमर्यादा है। साधारण स्त्री की भाँति कैसे हम बाजारों में घूम सकती है।"

"वही तो मैं तुम्हें दिखाना चाहता हूँ कि मजे में घूम सकती हो। तुमने तो कालेज मे शिक्षा पाई है फिर भी तुम इतनी-सी बात नही समझ सकती हो ?"

"खूब समझती हूँ। मैं तो यही जानती हूँ कि स्त्री का स्थान घर ही है। घर से बाहर का क्षेत्र पुरुषों का है।"

"तुम स्त्री होकर स्त्रियों के प्रति इतनी अनुदार हो ?"

"क्यों ? घर पर अपना अधिकार समझती हूँ तो अनुदार कैसे हूँ ?"

"लेकिन घर ही तो संसार नहीं है ?"

"स्त्री के लिए घर ही संसार है।"

"तुम तो दादी जी से भी बढ़कर पुराणपन्थी हो गई हो। खैर सुनो, दादी जी ने आज्ञा दे दी है।"

"कैसी आज्ञा ?"

"कि तुम मेरे साथ दिल्ली जा सकती हो।"

"और दाता का क्या हुक्म है ?"

"वह हुक्म तुम्हे उनसे लेना होगा।"

"मैं उनसे कहूंगी भला ?"

"न कहोगी तो दिल्ली कैसे देखोगी ?"

"दिल्ली देखने का मुझे ऐसा चाव नही है।"

"तो जाने दो, मेरा सूटकेस ठीक कर देना। सुबह की गाड़ी से मैं बनारस जा रहा हूँ।" सुरेश ज़रा मुँह फुलाकर जाने लगे।

"अजी सुनो तो, तुम तो बड़े वो हो। अच्छा मै दादी जी से पूँछ लूँ।"

"जैसा तुम्हें ठीक लगे वही करो। तुम स्त्री लोग तो शिवालय के शिव-शंकर हो, अपनी जगह से हिलने-डुलने का नाम ही नही ले सकती हो।"

प्रमिला खिलखिलाकर हँस पड़ी। आगे बढ़कर उसने सुरेश के गले में बाहें डाल दीं और कहा : "शिवजी प्रसन्न है—वरंब्रूहि।"

"दिल्ली दर्शनेदेहि" दोनो खिलखिलाकर हँस पड़े।

१७

राजा साहेब ने अपना शाम का शगल आरम्भ किया। खिदमतगार ने गिलास, सोडा, बरफ और ह्विस्की की बोतल सामने रक्खी और झुककर आहिस्ता से कहा : "सरकार, नूरू मुन्शी हाजिर हुए है। ड्योढियों से सलाम भेजा है।"

राजा साहेब इस समय मूड मे थे। कहा—"आने दो।"

खिदमतगार चला गया। मुंशी नूरुद्दीन ने आते ही झुककर सलाम किया और सामने सिकुड़कर खडे हो गए।

राजा साहेब ने आहिस्ता से कहा : "बैठिए, कब आए ?"

"सरकार, बस चला ही आ रहा हूँ। आते ही छोटी बीबी ने कहा—आजकल हुजूर के, दुश्मनों की तबियत ज्यादा अजील है। बस दौड़ा चला आया"—मुंशी जी ने बैठते हुए कहा।

"तबियत अब क्या ठीक होगी मुंशी जी, मौत आए तो पिण्ड छूटे।"

"तोबा, तोबा, हुजूर, यह क्या कलमा जबान से कहा। हुजूर का दम ग़नीमत है।"

"कानपुर मे बहुत दिन लगाए ?"

"क्या कहूँ, नज़ीर ने आने ही नही दिया। उसकी माँ भी वहीं है, नजीर के लड़का हुआ था; चली गई थी। वह वहाँ बीमार हो गई, इसी से हुजूर, ज्यादा दिन लग गए। कुँवर साहेब तो इम्तिहान देकर तशरीफ़ ले आए न ?"

"आ गए है। एक इल्लत बाँध लाए है।"

"सुना है, कोई आलिम फ़कीर है ?"

"देखा तो मैने भी नही। सुना है, सुनहरी चश्मा लगाते है, सिगरेट, चाय पीते है।"

"खूब खूब, तब तो मुमकिन है हुजूर, कि शाम की मजलिसों में भी आकर शौक फर्माएँ।" मुंशी जी ने हाथ बढ़ाया, गिलास तैयार किया, और खड़े होकर जाम राजा साहेब को पेश किया।

राजा साहेब ने जवाब नही दिया। मुस्कराकर रह गए।

दूसरा गिलास मुंशी नूरुद्दीन खुद लेकर बैठ गए।

राजा साहेब जाम नोश फर्माने लगे। कुछ रुककर उन्होंने कहा : "नजीर मियाँ अच्छे तो हैं ?"

"हुजूर की दुआ से अब तो उसकी तरक्की भी हो गई है सरकार।"

"देखा नही, मुद्दत हुई, इस बार छुट्टियों मे बुलाना।"

"बहुत अच्छा हुजूर। इलेक्शन आ रहे हैं सरकार, इस बार कांग्रेस से जोड़-तोड़ मार्के का रहेगा।"

"मगर इस बार मै सोचता हूँ इरादा तर्क कर दूँ। सेहत कहाँ है जो दौड़-धूप करूँ। फिर, अब तो यह भटियारों का राज है। जो न हो जाय वही थोड़ा। वह तो अंग्रेजों के दम का ज़हूर था कि रईसों की कद्र होती थी। अब तो सब रियासतें ही धूल में मिल गईं, न आली खानदान की कद्र, न लियाकत की। बस जेल का सर्टिफिकेट चाहिए। जै बार जेल गए, उतनी ही बार मिनिस्टर बन जाइये।"

राजा साहेब ने जाम पीकर रख दिया। मुंशी जी ने दूसरा पैग तैयार करते हुए कहा : "यह तो ठीक फर्माया सरकार, बस, जेल सर्टिफिकेट चाहिए। मगर इन जेल के कैदियों की भी खूब ही बन आई है। इन सुकुल जी को ही लीजिए सरकार, पिद्दी न पिद्दी का शोरबा, हुजूर ही की रियासत मे मास्टरी करते थे। वह दिन भूल गया जब घंटों सरकार के हुजूर में सलाम करने आकर खड़े रहते थे।"

"अब उन बातो को कौन पूछता है। अब तो वह चौधरी साहेब की मूँछ के बाल बने हुए है। मगर है यह शख्श पूरा बेग़ैरत। मतलब के लिए हर जगह पहुँच जाता है। उस दिन मेरे पास भी पैग़ाम भेजा था।"

"जरूर कोई बढ़िया सुर्खी रही होगी सरकार।"

"जी हाँ, वह इन्कम टैक्स का झगड़ा चल रहा है न, उसी सिलसिले में जेब भरना चाहते थे।"

"बेहयाई की हद है। असल बात यह है सरकार कि उन्हें चौधरी साहेब ने बहुत मुँह लगा रखा है।"

"तो भई, चौधरी साहेब ऐसों-ऐसों ही की बदौलत तो मुख्य मन्त्री बने हुए हैं। भला उनमें मुख्य मंत्री होने की क्या लियाक़त थी। एफ० ए० पास भी तो नहीं है।"

"जी, यह लियाकत क्या कम है कि वह जाट है। जाटों को खुश करने का यह गुर है। सरकार गुस्ताखी मुआफ हो। यह हमारी सरकार तो चूँ चूँ का मुरब्बा है। एसेम्बली क्या है, लड़ाई का अखाड़ा है। मुल्क का करोड़ों रुपया बर्बाद हो रहा है। टैक्स पर टैक्स लादे जा रहे हैं। मगर नतीजा क्या है ?"

"बस बर्बादी।" राजा साहेब ने एक लम्बी साँस ली। और दूसरा पैग खाली किया। शराब की गर्मी दिमाग में आ रही थी। और आवाज करारी होती जा रही थी।

ख़िदमतग़ार ने आकर अर्ज की : "सरकार, करामत मियाँ ड्योढियों पर सलाम के लिए हाजिर हुए हैं।"

"बुलाओ, बुलाओ। मुंशी, नीट (शराब) देना इस करामत के बच्चे को।"

"है कौन सरकार ?"

"मीरासी है। कभी बचपन मे हमने इससे हारमोनियम बजाना सीखा था, बस अपने को हमारा उस्ताद ही समझता है। आता-जाता कुछ नहीं है। मगर आदमी मजेदार है। जरा चहकाना इसे।" मुंशी जी भी पैग़ खाली कर चुके थे। अब तीसरा पैग राजा साहेब के आगे रखा। और मूछों पर ताव देकर कहा : "जरा आने तो दीजिए मूँजी को।"

करामत मिया ने आकर लम्बी सलामें झुकाई और रोते हुए-से सुर मे कहा : "दुहाई सरकार की, सुबह से ड्योढियों पर घूम रहा हूँ। मगर इत्तला नही हुई। सरकार का उस्ताद हूँ, मगर अब इस दरबार में क़द्र नही है। हुजूर, चालीस मील पैदल सफर किया, पैरों में छाले पड़ गए, न खाना न पीना।"

"बैठो, बैठो। मुंशी, जरा उस्ताद का हलक तर करो।"

"बहुत अच्छा सरकार।" उन्होंने खिदमतगार को इशारा किया। ख़िदमतगार घटिया किस्म की एक बोतल शराब ले आया। उसमें से उँडेलकर एक गिलास भरकर मुंशी जी ने करामत मियाँ के हाथ मे दिया। करामत मियाँ ने मुफ्त का माल समझ एक ही साँस में पूरा गिलास चढ़ा लिया। हकीक़त में मियाँ करामत पैदल लम्बा सफर करके आया था। भूखा-प्यासा था, दिनभर कुछ खाया-पिया न था। अब जो भर गिलास नीट (तेज़ शराब) उसने एकबारगी ही हलक में उँडेल ली तो कलेजा जैसे उलटने लगा। बुरी तरह छटपटाने लगा। वह जमीन में औंधे मुँह गिर गया।

मुंशी जी ने घबराकर राजा साहेब की ओर देखा। राजा साहेब धीरे-धीरे मुस्कुरा रहे थे। अब वह उस दुनिया मे थे कि जहाँ रंजोगम का नामो-निशान नहीं रहता। उन्होंने कहा : "अभी ठीक हो जायगा, परवाह न करो।"

मुंशी जी चुपचाप शराब पीने लगे। करामत मियाँ जमीन में मुँह दिए औंधे पड़े रहे। इस ओर से ध्यान हटाकर उन्होने बातों का सिलसिला जारी करते हुए कहा : "तो हुजूर, इलेक्शन हम लड़ेंगे जरूर। हुजूर को खड़ा होना होगा ही।"

"मुकाबला कड़ा होगा।"

मुन्शीजी ने मूँछों पर ताव देकर कहा :

"तो हजूर, हम लाखों में जीतेंगे। देख लेगे कौन मुकाबले में आता है। भला तालाब में रहना और मगरमच्छ से वैर करना। यह कहाँ की अक्लमंदी है।"

"अरे भाई, यह हिन्दुस्तान है। हिन्दुओं में जो नगा फिरे और मुसलमानो में जो पागल हो जाय वही पुजने लगता है।"

"सच कहा सरकार ने। अंग्रेज़ों से तो हमे आजादी मिल गई। पर अभी गुलामी का जो असर खून मे है वह तो रंग लायेगा ही। लेकिन सरकार, एक बात मेरी समझ मे आज तक न आई। कांग्रेस तो सरकार से लड़ाई करने वाली जमात थी। अब जब सरकार ही कांग्रेस की हो गई तो फिर अब अलहदा कांग्रेस की क्या जरूरत है? कांग्रेस का प्रेसीडेन्ट क्या हस्ती रखता है?"

"महज़ कठपुतली। कांग्रेसी सरकार उसे मुँह नही लगाती। मगर लोगों को बहकाने का तो कुछ बहाना चाहिए। अरे भई, पुराने जमाने मे ब्राह्मण लोग राजाओं की तारीफें करते थे—राजा ईश्वर का अवतार है। राजा यह है, राजा वह है। लोगों को राजभक्त रखने का धन्धा करते थे—अब इस कांग्रेसी सरकार की पीठ ठोकने का काम कांग्रेस कर रही है।"

"लेकिन असली ताकत तो हाई कमाड के हाथ में है, पर ताने सहने पड़ते हैं प्रेसीडेन्ट को।"

"तो भई अंग्रेजी अमलदारी में इन पर पुलिस के डंडे पड़ते थे, अब वे जनता के डंडे खाएँ।"

"लेकिन यह सरकार जनता की क्या खिदमत कर रही है हुजूर, लोगों के

ग्राम व्यवहार की चीजों की कीमते बेतहाशा बढ़ रही है। बेचारे सफेद पोशों की मुसीबत है, बस मिनिस्टरो की चाँदी है। पेशाब करने को भी मोटरों में जाते है।"

"उधर कम्युनिस्ट जोरों पर है।"

"उन्हें जेल मे डाला जा रहा है। कही इस तरह मुल्क मे शांति रह सकती है ? कहीं गोली चलती है, कहीं लाठीचार्ज होता है—तंग ग्राया इन्सान तो मरने-मारने पर तुल ही जाता है। मुल्क भर मे बदनामी फैलती जा रही है, सरकार कहती है यह कम्युनिस्ट की करतूत है।"

"ग्रपनी कमजोरी छिपाने के लिए ही दूसरों पर इलज़ाम लगाया जाता है।"

"इधर शरणार्थियों का मसला भी कम उलझन का नही है।"

"इसकी ग्राड़ में बहुतों का पेट भर रहा है।"

"लेकिन ग्राए दिन जो मिलों मे हड़ताले हो रही है, उनसे यह तो साफ़ ज़ाहिर है कि कांग्रेस का मज़दूरों पर कुछ भी ग्रसर नही है।"

"हुज़ूर, पूँजीपतियों के रुपयों से धर्मशालाएँ ग्रौर ग्रस्पताल बनाए जा सकते हैं। चन्द भाड़े के टट्टू भी नारे लगाने वाले खरीदे जा सकते है। किन्तु मज़दूरों का विश्वास वही प्राप्त कर सकते हैं जो खुद मजदूरों की तरह रहते हैं ग्रौर उनके दर्द ग्रौर तकलीफ को पहचानते है।"

"ग्ररे भाई, दुनिया के तौर-तरीके ही ग्रजीब है। इधर हम जमीदारों की तो सब छीन-छानकर सरकार ने छुछ कर दिया, उधर बड़े-बड़े पूँजीपति सेठ खूब रुपया बना रहे है। ग्रब ये लीडर बनना चाहते हैं। ग्रजीब तमाशा है। हमारे देश के जो लीडर हैं वे रुपया बनाना चाहते हैं, ग्रौर जो रुपया बना चुके हैं—वे लीडर बनना चाहते हैं।"

"लेकिन हुज़ूर, देशभक्त महज़ वे ही लोग नहीं हैं जो गांधी टोपी पहनते है।"

"पर भई, ग्रब तो गांधी टोपी वालों ही की जीत है। खानदान वालों की तो तबाही है।"

राजा साहेब पैग खाली करके मसनद पर उठंग गए।

मुन्शी जी ने कहा: "लेकिन हुज़ूर, यह देर तक नहीं रहेगी। ग्रा रहे हैं लाल

झंडे वाले इन्किलाब लेकर।"

"वहीद जैसे गुण्डे ! इनका राज हो जाय तो बस तबाही में जो कसर है वह पूरी हो जाय। क्या कर रहा है वह बदमाश ?"

"इमली के पत्ते पर डंड पेलता है सरकार ! न कमाना न धमाना। दिन भर मटरगश्ती, इन्कलाबी नारे, मज़दूरो एक हो जाम्रो—की आवाज। शाम को घर जाकर खाना दस-बारह रोटियाँ और दस-बीस गालियाँ बाप को देना।"

राजा साहेब खिलखिलाकर हँस पड़े। मुन्शी जी ने नए दो पैग भरे।

करामत मियाँ ने सिर उठाया। दोनों हाथ छाती पर रखकर कहा : "बस, दम निकलने में जरा-सी ही कसर रह गई सरकार।"

"शुक्र है जिन्दा हो। बहुत दिनों में आए हो, सुनाओ कुछ उस्ताद।"

"जी हुक्म।"

करामत अली ने हाथ बाँधकर कहा। राजा साहेब के इशारे से नौकर तबला और हारमोनियम ले आया। तबला राजा साहेब ने सम्भाला और हारमोनियम पर उस्ताद की उंगलियाँ थिरकने लगी। राजनीतिक बातचीत का वातावरण संगीत की लहर मे बदल गया। उस्ताद बेसुरे गले से कोई सस्ती-सी पुरानी गजल गाने लगे। राजा साहेब धुन बाँधकर तबले पर थाप देने लगे। मुन्शी जी ने फिर एक बड़ा गिलास नीट भरकर कहा : "उस्ताद, जरा एक बार फिर हलक तर कर लो।" राजा साहेब ने कहा : "मर जायगा, कम्बख्त, नीट मत दो मुन्शी।" मुन्शी जी ने राजा साहेब की बात का कुछ भी ख्याल नही किया। अदब-कायदे की दुनिया अब दूर हो चुकी थी। तीन-तीन पैग दिमाग में ऊधम मचा रहे थे। अब न राजा साहेब जमीन पर थे—न मुन्शी जी, कसर करामत मियाँ की थी; सो दूसरा समूचा गिलास भी जब उसके हलक में उलट गया तो वह भी चहकने लगा। एक-दो गजलें उसने और गाई। अब वह एक भद्दी-सी ठुमरी ले बैठा। राजा साहेब ने कहा : "नाचकर उस्ताद !"

और बेतुके-से उस्ताद करामत अली इधर-उधर हाथ-पैर मारने और नाचने लगा। नाचते-नाचते हा वे ठुमरी भी गा रहा था। मगर अब हिचकियों ने उसे अधमरा कर दिया। वह धम से जमीन पर बैठकर लम्बी-लम्बी साँस खीचने

लगा। इसी समय मुन्शी जी ने तीसरा गिलास भरकर उसे थमा दिया। और करामत अली ने उसे भी हलक में उँडेल लिया।

राजा साहेब बराबर तबला बजाए जा रहे थे। करामत मियाँ अब गा नही रहा था। परन्तु राजा साहेब का इधर ध्यान न था। एकाएक करामत मियाँ ने हाथ नचा-नचाकर कहना शुरू किया : "ओ राजा, हम तेरे उस्ताद है। हमारे साथ बुरा सलूक हुआ है। खुदा गवाह है। हम चालीस मील पैदल चलकर आए हैं। तूने हमे धोखा दिया।" करामत मियाँ सरककर एकदम राजा साहेब से सट गए। परन्तु राजा साहेब अभी तक तबला ठोके जा रहे थे। मुन्शी जी ने एक और गिलास भरकर करामत मियाँ के हलक में उँडेल दिया। उसे बिना उज़् पीकर करामत अली 'ओ राजा,' 'ओ राजा', कहते हुए एकदम राजा साहेब के ऊपर गिर पड़ा। उसने अपने दोनों पैर राजा साहेब के ऊपर फैला दिए और उलटियाँ करनी शुरू कर दी।

मुंशी जी ने उसे बलपूर्वक धकेलकर फर्श पर गिरा दिया और खिदमतगारों को बुलाकर कहा : "इसे बाहर ले जाओ!" दो खिदमतगारों ने जब करामत मियाँ को हाथ-पैर धर कर लाया तो वह चिल्लाकर कहने लगा : "ओ राजा, ओ राजा, हम तेरे उस्ताद है। तूने हमसे दगा की। हम नहीं जायेंगे।" इतना कहकर वह दोनों खिदमतगारों के हाथों से छूटकर फिर राजा साहेब के ऊपर गिर गया। परन्तु राजा साहेब अब भी दनादन तबला बजाये जा रहे थे। ख़िदमतगारों ने फिर उस्ताद को उठाकर ऊपर टाँग लिया। मुशी जी ने भी सहारा दिया। वे उस्ताद को टाँगकर बाहर ले गये। राजा साहेब अब भी तबला बजाये जा रहे थे।

१८

विजयादशमी की धूमधाम से आज राजमहल मुखरित हो उठा है। शहनाई, ढोल, ढफ, नक्कारे डचोढ़ियों पर आज सुबह ही से बज रहे है। दीवान, कारिंदे, बरकन्दाज, सिपाही, गुमाश्ते, अमीन-अमले सभी सजधज कर राजमहल में

प्रभात ही से आ रहे है। खूब धूमधाम है, चहल-पहल है। गाँवों से ठठ के ठठ आसामी, किसान चले आ रहे हैं। वे सब अपनी-अपनी हैसियत से नज़राना दे रहे है। कचहरी में गद्दी पर कारिंदे साहेब सजधज कर बैठे पान कचर रहे हैं। आज उन्होंने नकली सिल्क की चपकन और चूड़ीदार पायजामा पर बढ़िया लखनऊ की चिकन काम की दुपल्ला टोपी पहनी है। वे पान कचरते जाते हैं और आसामियों से हँस-हँसकर बातें करते जाते है। आसामी नजराना के रुपये देते है और कारिंदा कुशल-क्षेम के एकाध शब्द कहकर उनकी मिजाज़पुरसी करते है। साथ ही यह भी कहते है: "देखो भई, बिना खाये मत जाना।" बाहरी अहाते में वनस्पति घी की गंध उड रही है। आसामी जनों के लिये पूरियाँ तली जा रही है। लोग नजराना देकर अहाते में जाते है। और खाने पर बैठ जाते है। वहाँ सस्ती वनस्पति घी की पूरियाँ वे डटकर उड़ा रहे हैं। असल मे पूछा जाय तो यह भी उन्हें कभी-कभार ही नसीब होती है। वे खुश है। आनन्द स्वामी और सुरेश शाम के वक्त लान पर टहल रहे हैं।

स्वामी जी ने कहा: "यह सब क्या हो रहा है। इतनी धूमधाम, शोर शराबा। कानों के पर्दे फाड़ दिये इस कम्बख्त शहनाई ने।"

"लेकिन आज दशहरा जो है। आसामी नज़राना देने आ रहे हैं। धूम-धाम न होगी?" सुरेश ने हँसकर कहा।

"नज़राने के रुपये देने में और इस शहनाई के तीखे सुर में क्या तुक है?"

"क्यों? बकरे को जब बलि के लिए ले जाते है तब गाजा-बाजा क्या नहीं होता? ढोल नहीं बजता?"

"अच्छा, तो यह गरीब रैयत के बलिदान का बाजा है।"

"आप जैसा समझें पर नीरस लेन-देन में भाव-सौंदर्य मिला देना बुरा थोड़ा ही है। राजा-प्रजा में भाव का ही तो संबंध है। आज राजा-प्रजा का मिलन है। राजा की धरती किसान जोतता है। वह आज कृतज्ञतास्वरूप राजा को नज़राना देने आया है। आज छोटे-बड़े का मेल होने का दिन है, ऊँच-नीच का अविच्छिन्न भाव-संबंध है, यह दिखाने को नज़राने के साथ बाजा बजता है, दावत होती है। ऊँच-नीच का अविच्छिन्न संबध ही भार सहन की क्षमता रखता है। पैरों को देह का भार असह्य नहीं होता। बाहर का बोझ जब उस पर लादा जाता है तो उसे बोझ लगता है।"

"ठीक है भाई, पर मैं तो कुछ दूसरी ही बात सोचता हूँ।"

"आप क्या सोचते है ?"

"मैं तो यही सोचता हूँ कि राजा के स्वेच्छाचार से जब प्रजा निस्तार पा नहीं सकती तब निरुपाय,वह उसे देवता की तरह पूजती है। इससे उसके मन में अपनी हीनता का दुःख नही होता।"

"यह तो भाव से अभाव को ढकना हुआ।"

"बेशक, और यदि मनुष्य मे यह कौशल न होता तो शायद वह हिंस्र जानवर बन जाता।"

"कौशल बुरा नहीं है। जहाँ हम हार जायें वहाँ आत्मीयता के आँचल मे अपनी हार को ढाँप लें। यह अच्छा ही है।"

"ऐसा क्यों? इसके विपरीत भी तो है। गाय तो एक असहाय जानवर है। हम बलवान् है, वह दुर्बल है। हम मनुष्य है, वह पशु है। हम जबर्दस्ती उसके बच्चे को रस्सी से बाँधकर उसका दूध पीते है, और उसके साथ एक भावात्मक सम्बन्ध कायम करके उसे गोमाता कहते है।"

"इससे आप क्या प्रमाणित करना चाहते है ?"

"यही कि हमारी विवेक बुद्धि मकडी की भाँति केन्द्र मे रहकर चारो ओर जाल फैलाती है। और आसपास की वस्तुओं मे आत्मीयता का सम्बन्ध स्थापित करके विसदृश को सदृश बनाती है।"

सुरेश जोर से हँस पड़ा। उसने कहा : "खूब कहा आपने। मकड़ी जो अपने जाल में मक्खी फँसाती है वह उसके साथ आत्मीयता स्थापित करती है।"

"अरे भाई तो इसमें बुरा क्या है। विवेक का काम तो मेल कराना ही है।"

"ठीक है। छोटे-बड़े का मेल यदि गा-बजाकर हो तो बुरा क्या है। फिर अपना-अपना दृष्टिकोण ही तो है। काले-काले बादल जब आषाढ़ मे आकाश में छाते हैं तब उन्हें किसान किसी और नजर से देखता है और कवि दूसरी नजर से।"

"काश कि हम जान पाते कि गा-बजाकर बकरे को जब हम बलिदान के लए ले जाते है तब उस समय बकरे का दृष्टिकोण क्या होता है।"

"बकरे का दृष्टिकोण भी मालूम है स्वामी जी।"

"कैसे ?"

"आपने देखा नहीं उस दिन मँगतू चमार ने हमारे महाराज से कैसा करारा मोर्चा लिया ?"

"और आज यह क्या हो रहा है ? इनमें क्या एक भी मँगतू नहीं है ?"

"बहुत होंगे । आप तो पहली बार ही रियासत मे आए हैं, पिछली धूम-धाम आपने देखी होती तो आप समझ लेते कि आज यह धूमधाम नही है, धूम-धाम की शव-यात्रा है ।"

"अरे ! यहाँ तक ?"

"मैं तो दुर्भाग्य से राजकुल मे उत्पन्न हुआ हूँ स्वीमी जी, उसके सब गुण-दोष मै जानता हूँ । किसानों के—आसामियों के गुण-दोष और उनकी मनोवृत्ति भी मुझसे छिपी नहीं है । इसीसे मै कहता हूँ—यह धूमधाम की शव-यात्रा है ।"

"तब तो भाई, मुझे इससे सहानुभूति प्रकट करनी ही होगी ।"

"आप जैसा भी कुछ समझें । परन्तु कुछ लोग है जो रूढ़ि से जकड़कर बँधे हुए है । हमारे महाराज ही को लीजिए—अभी तक अपने को वैसा ही राजा समझते हैं । रियासत, ताल्लुके, जमींदारियाँ सब खत्म हो गईं । आमदनी अब दसवाँ भाग भी नही रही --परन्तु हमारे महाराज के खर्चे और लानतान वैसे ही है । न सही आमदनी—दबा हुआ रुपया निकल रहा है । और खर्च हो रहा है ।"

"लेकिन यह कब तक ?"

"मै भी यही सोचता हूँ कि यह कब तक ? जो लोग पीढ़ियों से बिना ही कुछ करे-धरे अपना अलस जीवन विलास और वासना में व्यतीत करने के अभ्यस्त है, उनका अब क्या होगा ?"

"क्यों ? वे शहनाइयाँ बजवाएँगे, आसामियों से नज़र-मुजारे लेगें ।"

"और यदि इस अवसर पर एकाध मँगतू निकल खड़ा हो तो क्या होगा ?"

"तो उसके लिए राजा साहेब की बन्दूक जो है !" स्वामी जी जोर से हँस दिए ।"

परन्तु सुरेश ने गम्भीर होकर कहा : "लेकिन बन्दूक में गोलियाँ कहाँ हैं, बन्दूक चलाने की शक्ति राजा साहेब में कहाँ है ? देखा न आपने उस दिन

बन्दूक चली कहां ? मँगतू जबान चलाकर सही-सलामत चला गया । पहले भी कहीं ऐसा हो सकता था ? यह स्वाधीनता का युग है । स्वाधीनता की एक ललकार उस दिन मँगतू ने दी थी । आज जो इतने किसानों-आसामियों की भीड़-भाड़ यहाँ जुड़ रही है, स्वाधीनता उनके मन में भी पनप रही है । एक दिन वह ललकार उठेंगे, तब शहनाई का यह कर्णकटु स्वर मूक हो जाएगा ।"

"स्वाधीनता ? तुम्हारी आवाज से तो ऐसा प्रतीत होता है सुरेश, कि तुम भी उस स्वाधीनता का आवाहन कर रहे हो ?"

"मैं आवाहन कैसे कर सकता हूँ स्वामी जी, मै ठहरा राजकुल का बालक । मैं तो यही चाहता हूँ कि लोग दासता के बन्धन में बंधे ही रहें । परन्तु महाराज, यह बात वे नहीं चाहते जो पीढ़ियों से दासता के बन्धन में बधे है । वे अब स्वतन्त्र होना चाहते है । गुलामी का बन्धन तोड़ने के लिए स्वाधीनता की आवाज ही एक जोरदार आवाज़ है ।"

"परन्तु ऐसी बात नही है सुरेश, गुलामी के बन्धन स्वाधीनता की पुकार करने से नही कटेंगे । अपने मे साहस, तेज और अहिसा तथा दूसरों के साथ सहयोग करने से कटेंगे ।"

"दूसरों के साथ सहयोग करने से ?"

"तुम्हें मैं भेड़ के बच्चे की कहानी सुनाऊँ—जो इस बात पर सख्त नाराज था कि उसे और उसकी माँ को मालिक क्यों बाड़े में बन्द करके दरवाजे पर ताला जड़ देता है ? शिकारी कुत्ते क्यों स्वच्छन्द छोड़ दिए जाते है ? इस बन्धन का क्यों नही उसकी माता विरोध करती है ? परन्तु उसकी माता कहती थी—पुत्र, यह बन्धन नही, अनुशासन है, सुरक्षा है । पर वह बच्चा समझता नही था । वह एक दिन अवसर पाकर संध्याकाल में, जब सब भेड़ें लौट रही थीं, एक चट्टान की आड़ मे छिप गया । सारी भेडें वापस बाड़े में आ गई । पर वह बच्चा हरी-हरी घास पर उछलकर किलोल करने लगा । अस्तंगत सूर्य के सुनहरे प्रकाश में उसे अपना वह स्वाधीन विचरण बड़ा ही प्यारा लग रहा था । परन्तु शीघ्र ही अन्धकार फैल गया, और भेडियों की गुर्राहट उसके कानों के निकट आने लगी । उसने अपनी भूल समझी परन्तु अब क्या हो सकता था । शीघ्र ही उसे अपनी गर्दन पर एक दबाव प्रतीत हुआ । और उसीका गर्म रक्त उसके

खुरों को तर करने लगा।"

स्वामी जी इतना कहते-कहते गम्भीर हो गये। फिर उन्होंने कहा : "सुरेश, मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। इसीसे वह नगर बसाकर रहता है। विज्ञान ने संसार को समेट कर बहुत छोटाकर दिया है, और अब मनुष्य का सम्पर्क विश्वव्यापी हो गया है। अब युद्ध, संघर्ष के दिन बीत जाने चाहिएँ। अब तो विश्व-एकता और पारस्परिक सहयोग का काल उपस्थित है। अब मनुष्य को स्वाधीन होने की नहीं, सबसे सहयोग करने की, एक संयुक्त विश्व समाज बनाने की—जिसका आधार प्रेम और कर्तव्य हो—सोचनी चाहिए। यह बात तुम्हारे महाराज को भी और उस मँगतू को भी सोचनी चाहिए, तथा दोनों ही को अपना दृष्टिकोण सुधार लेना चाहिए।"

"आप समझते हैं स्वामी जी, कि इस सम्बन्ध मे दोनों ही के दृष्टिकोण में कही त्रुटि है ? महाराज के भी और मँगतू के भी ?"

"हाँ, मैं ऐसा ही समझता हूँ। दोनों ही को अपने अधिकार का मद त्यागना होगा।"

"क्या स्वाधीनता की भावना त्याग देने से मनुष्य दासता के फन्दे मे फँसा न रह जायगा ?"

"दासता तो उसे भोगनी ही पड़ती है, जो स्वाधीन होने की भरसक चेष्टा करता है, फिर भी वह दासता की परिस्थिति में पहुँच चुका है। तुम भारत विभाजन की ही दुखदाई घटना को देख लो। स्वाधीनता ही के विष ने भारत को ठीक उस समय विभाजित कर दिया जब उसे एक होने का पूरा लाभ उठाना था। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही परस्पर का विश्वास और प्रेम खो बैठे। और इतने दिन साथ-साथ गुलामी के दुःख झेलकर भी मुक्ति का मिलकर आनन्द से स्वागत न कर सके। अब दोनों ही दुःखी है। दोनों ही दोनों पर संदेह की नज़र रखते है, स्वाधीनता की भावना आगे भी अपना काम करती जा रही है। अब हिन्दुस्तान से शायद जाटस्तान या सिखस्तान निकलेगा और पाकिस्तान से पख्तूनिस्तान।"

"परन्तु देश और राष्ट्र की बात तो जुदा है। व्यक्तिगत स्वाधीनता तो सभी को मिलनी चाहिए।" सुरेश ने गम्भीर भाव से कहा।

"तुम्हारी ही तरह सब लोग सोचते है सुरेश ! इसी से आज पति पत्नी

से, भाई भाई से, पत्नी पति से, पुत्र पिता से और मित्र मित्र से स्वाधीन रहने ही में जीवन का लाभ समझते है। और इससे समाज में समता, विश्वास और शान्ति छिन्न-भिन्न हो रही है। वह देखो—राजा साहेब का महल सामने खड़ा है, इसकी ईंटों को एक पर एक रखकर जो दीवार बनाई गई है, इसके खिलाफ ये ईटे फर्याद कर रही है। वे तुम्हारे अन्याय का विरोध कर रही है। उन्हे तुमने एक के ऊपर एक मिलाकर खूँदा क्यों ? उनकी दीवार चुनी क्यों ? ये ईटे स्वाधीन होना चाहती है। इन ईटो को स्वतन्त्र कर दो—महल को ढहा दो। ईंटों को बखेर दो, और दुनिया को स्वाधीनता का सच्चा स्वरूप दिखा दो।"

"तो आप क्या यह कहना चाहते है कि समाज का संगठन एक दूसरे की पराधीनता से होगा ? क्या आप पुरानी सामन्तशाही के पोषक है। आप चाहते है कि कुछ लोग ऊपर रहे और बाकी सब उनके बोझ से पिस सके।"

"नही रे भाई नही ! मै यह नही चाहता। मैं सबका सम सहयोग चाहता हूँ। मै नही समझता कि सब लोग कभी बराबर हो सकेंगे। पैर पैर रहेंगे—सिर सिर रहेगा। पैर अपना काम करेंगे और सिर अपना—मै केवल यह चाहता हूँ कि पैरों का सिर से सम सहयोग रहे। पैरों को सिर का बोझा ढोना असह्य न हो, और सिर पैर मे एक काँटा चुभे तो भी उन्हे सावधान कर दे। इसी का नाम है सम सहयोग।"

"आपका अभिप्राय यह तो नही है कि सब मनुष्य समान नहीं है ?"

"मेरा यही अभिप्रायः है। मनुष्य बुद्धिजीवी है, और सामाजिक प्राणी है। बुद्धिजीवी होने के कारण वह निरन्तर विकासशील है। मनुष्य का विकास व्यक्ति में है, समष्टि मे नही। शरीर-चेतना और परिस्थिति—यह मनुष्य के व्यक्तित्व को वैशिष्ट्य देती है। इसी से साधारण मनुष्य से बुद्ध, ईसा, शंकर, दयानन्द, गाधी निकलते है, जो युग-युग तक करोड़ों मनुष्यों के शासक होते हैं। इसी से सब मनुष्य समान नहीं हो सकते। परन्तु इस असमानता में भी एक शृंखला है, व्यवस्था है, तारतम्य है—उसी से समाज सुन्दर, सभ्य और शिष्ट बनता है।"

"परन्तु इस असमानता के सामंजस्य और तारतम्य के क्या आधार है ?"

"तुम तो संगीत के पण्डित हो। उस दिन तुम हारमोनियम बजा रहे थे। तुम भली भाँति समझते हो कि हारमोनियम के सब स्वर भिन्न-भिन्न हैं। परन्तु

उनकी भिन्नता में भी एक तारतम्य है। अनुक्रम है। उसी से उस में से राग का सर्जन होता है। यदि सब स्वर एक-से होते—आरोह-अवरोह, तार, मन्द, मंद्र, क्रम न होता—कोमल और शुद्ध स्वर न होते तो क्या साज मूर्त होता ?"

"नही होता।"

"बस, यही बात है। समाज में धनी भी है, निर्धन भी; विद्वान् भी है, मूर्ख भी; दुर्बल भी है, निर्बल भी; प्रगतिशील भी है, और अनुगत भी—आज है, सदा से रहे, सदा रहेगे। व्यक्ति का यह वैशिष्ट्य—ज्यों-ज्यों सभ्यता और विज्ञान की शक्ति का विकास होगा—बढता जायगा। अब समाज का हित इसमें है कि सबका सम सहयोग हो। प्रत्येक एक दूसरे का सहायक और पूरक हो। सारा समाज एक शरीर की भाँति जीवन यापन करे। वेद में लिखा है कि समाजरूपी विराट पुरुष के सिर-हाथ-पैर-धड़ ये सब भिन्न-भिन्न वर्गीय जन ही है। मुख भोजन खाता है तो समान भाव से सारे शरीर की पुष्टि होती है। यही सामाजिक जीवन के सुख की कुंजी है।"

"किन्तु जब तक समाज में ऊँच-नीच, छोटे-बड़े की भावना बनी है, उसमें सहयोग कैसे हो सकता है ?"

"आत्मार्पण के द्वारा। समाज का प्रत्येक व्यक्ति बिना शर्त दूसरे के प्रति आत्मार्पण कर दे तो यह सम सहयोग आसानी से हो सकता है। देखो, तुम नगर, गाँव-बस्ती बसाते हो, परस्पर मिल-जुलकर व्यापार करते हो; फर्म बनाकर, कम्पनी बनाकर, परस्पर के इस सहयोग से बड़े-बड़े उद्योग-केन्द्र बनते है। सीमित उद्योग-संस्थाओं मे धनी भी है, निर्धन भी। किसी के लाखों रुपए लगे हैं, किसी के केवल कुछ सौ ही रुपए है, पर है सब भागीदार जो अपने हिस्से के सीमित लाभांश से न्यायतः संतुष्ट हैं।"

"परन्तु यदि हमारे मस्तिष्क से स्वाधीनता की भावना निकल जायगी तो क्या हममें दासता बद्धमूल न होगी ?"

"स्वाधीनता तो गुलामों की आवाज है। जहाँ स्वाधीनता होने की न चाह न अभिलाषा है, वहाँ दासता भी नहीं है। वास्तव में सम सहयोग ही जीवन की सबसे बड़ी सफलता है।" कुछ रुककर आनन्द स्वामी ने कहा : "आज स्वाधीनता की आवाज एशिया भर की आवाज है। इसका कारण यह है कि जब से योरोप में राष्ट्रीयता का उदय हुआ है तब से योरोप के सभी राष्ट्रों ने

सम्पूर्ण एशिया को अपनी दासता में जकड़कर बाँध रखा है। दोनों युद्धों से प्रथम तक तो योरोप के घमंडी राष्ट्र एशिया के सब नर-नारियों को अपना जीवित शिकार समझते रहे थे। उनका यह विश्वास था कि हम चिरकाल तक इस शिकार का स्वादिष्ट मांस खाते रहेंगे। परन्तु युद्ध ने उन्हें सही रास्ता दिखा दिया—वे समझ गए कि यह राष्ट्रीयता ही भयानक विष है। और अब वे इस राष्ट्रीयता के बन्धनों को तोड़-फोड़कर एक महाराष्ट्र बनाने की बात सोचने लगे हैं। राष्ट्रसंघ की स्थापना का मूल कारण ही यह है, परन्तु वे जब तक राजनैतिक और आर्थिक गुलामी से पार नहीं पा लेते, और विशुद्ध सांस्कृतिक सम सहयोग की नीति को नहीं अपना लेते तब तक उनका निस्तार नहीं है। वे हलाहल विष तो पी चुके अब वे उसकी ज्वाला से छटपटा रहे है। कहा नहीं जा सकता कि वे बच भी सकेंगे या नहीं। परन्तु बचने की केवल एक ही राह है, कि वे मानव धर्म को अपनाएँ और कर्तव्य को अपना आदर्श बनाएँ तथा अधिकार का सर्वथा त्याग कर दें। इसी मे उनकी भलाई है, नहीं तो उनकी खैर नहीं। अभी तो गत दोनों-युद्धों में उनके लाखों जवान बेटे कुत्तों की मौत मरे हैं, उनकी लाखों पुत्रियाँ विधवा हो कर रोई है, लाखों बच्चे बिना बाप के हुए हैं। उनका सारा धन स्वाहा हो चुका है। उनकी अकड़ समाप्त हो चुकी है। वे सब जगह से निकाले, भगाए और दुत्कारे जा रहे है।" उत्तेजना के मारे आनन्द स्वामी का मुँह लाल हो गया। कुछ रुककर उन्होंने कहा : "पर अभी हुआ क्या है ? अभी तो उन्हें भूख, प्यास और महामारी से बीच सड़क पर कीडे-मकोड़ों की मौत मरना है।"

"हिरोशिमा का खून रंग लाएगा। उसकी प्रतिक्रिया उनके नगरों पर बाल-बच्चों पर होती है। विनाश का नग्न नृत्य उनके आँगन मे होता है।"

इतना कहकर आनन्द स्वामी मौन हो गए। सुरेश चुपचाप सिर नीचा किए कुछ सोचते हुए टहलते रहे।

आनन्द स्वामी ने कहा : "भलाई इसी में है कि भारत उनका अनुकरण न करे। गांधी जी ने भारत को सीधी राह दिखाई है। मनुष्य के प्रति मनुष्य का आत्म समर्पण। कर्तव्य पर अधिकारों का बलिदान। भारत यदि इस पथ पर चलेगा तो वह विश्व का नेतृत्व करेगा। संसार के मानवों को अभयदान-जीवनदान देगा।"

इतना कहकर आनन्द स्वामी ने आँख उठाकर आकाश की ओर देखा। आकाश में असंख्य तारे जगमगा रहे थे। बहुत देर तक वह चुपचाप टहलते रहे। फिर अपने डेरे की ओर लौट चले। सुरेश भी उनके पीछे-पीछे कुछ सोचते हुए चले।

१९

दशहरे का जश्न मनाने राजा भैया कई महीने बाद राजगढ़ लौटे हैं। इस बीच वे रिश्तेदारी में सभी जगह मेहमान बनकर रहते रहे है। राजा के बेटे हैं तो राजा ही है—इसलिए उनके मब गुन-औगुन बराबर है। परन्तु राजा भैया के पास जेब मे पैसा टिकता नहीं है। कोई भी उन्हें पाँच रुपया उधार देकर पचास का रुक्का लिखा सकता है। रुक्के के रुपये मौसी को चुकाने पडते हैं। रुपये चुकाने के समय मौसी जी बहुत गर्जती-बरसती है, पर रुपया उन्हें चुका देना ही पडता है। राजा भैया की हाथ की सफाई प्रशंसा के योग्य है। नाते-रिश्तेदारी मे जाकर वह ठहर जाते हैं। जहाँ जाते है, खातिर-तवाजा होती है। चाँदी के थालों में बढिया खाना मिलता है। राजवर्गी मेहमान को कांसा के थाल मे भोजन कराने से अपमान होता है। एक नातेदारी मे राजा भैया गए। वहाँ उनका भोजन कांसे के थाल में आया तो राजा भैया गुस्सा होकर बिना खाए ही उठ गए। बहुत मिन्नतें करने पर भी रुके नहीं—जहाँ-जहाँ गए सब-से यह शिकायत की। ठिकाना क्या है दिवालिया है। रईस नही चमार है, हमें कांसे के थाल में खाना दिया।

परन्तु राजा भैया दो-चार दस-पाँच दिन ठहरते, खातिर-तवाजा का मजा लेते—तब पर्स खो जाने या 'रियासत से रुपया मँगाया है आने पर दिया जायेगा' कहकर दो-चार सौ पर हाथ साफ कर चलते बनते। यह सुअवसर यदि उन्हें न मिलता तो खाना खाकर चाँदी के बर्तन ही लेकर रफूचक्कर होते। बाजार में सौ रुपये का माल दस में बेचते—और शराब या बदकारी में उड़ा देते। यही उनका नित्य का जीवन था। बहुधा शराब में मतवाले होकर इक्के-ताँगे

में बैठ जाते और बिना किराया चुकाये चल खड़े होते—तब इक्के वाले उन्हें पकड़ कर जूता, छतरी, टोपी, अंगूठी, घड़ी जो भी उसके हाथ लगता छीन-छान कर उन्हे विदा करते । इन सब बातों को वह हँसकर टाल जाते या निर्लज्ज हँसी हँस देते ।

इस बार जरा उनका हुलिया तग था । दशहरे का त्योहार । राजगढ़ में जल्सों-महफिलों के ठाट—महल की ड्योढ़ियों पर शहनाई बज रही है । पूरियाँ तली जा रही है । आसामियाँ आ रही है । नकद भेंट करके पूरी-मिठाई उड़ाकर जा रही है । पर राजा भैया की जेब खाली है । मौसी ने जो दस-बीस रुपये दिये थे—वे सब उन्होने खर्च कर डाले थे । आज सरूर गाँठने को धेला भी पास न था । राजा साहेब उन्हें अपनी सोहबत मे फटकने नही देते थे । इससे यह उनकी मजलिस में जा नही पाते थे । बहुत तिकड़म भिड़ाने पर भी जब उन्हे कही से न पैसा मिला न शराब, तो वह तलमलाते हुए—महल के चारों ओर चक्कर लगाने लगे । ड्योढी पर रघुवीरसिंह सिपाही बन्दूक कन्धे पर रखे पहरा दे रहा था—उसने इन्हें देखकर कहा : "सलाम राजा भैया ।"

"बहुत अच्छे, बहुत अच्छे, तुम्ही को हम ढूंढ रहे थे । क्या नाम है तुम्हारा ? अच्छा ही-सा नाम है । लेकिन इस वक्त याद नही आता । खैर एक अठन्नी तो तुम्हारे पास जरूर होगी ।"

सिपाही राजा भैया से ठीक-ठीक परिचित था । उसने कहा : "अफसोस है राजा बाबू, अठन्नी इस वक्त नही है ।"

"तो चवन्नी ही सही । लाओ दो, कल तुम्हे एक रुपया दूँगा । क्या कहूँ बक्स की चाभी ही कही गुम हो गई ।"

"रघुवीर सिंह ने हँसते हुए चवन्नी राजा भैया के हाथ पर रख दी ।"

राजा भैया लपकते हुए कलवार की दूकान पर पहुँचे । चवन्नी फेंककर कहा : "जल्दी कर बे ! किसी ने देख लिया तो बेइज्जती हो जायेगी । ठर्रा ही दे दे ।"

कलवार भी राजा भैया को खूब जानता था । उसने चवन्नी अपनी संदूक मे रखते हुए कहा : "कल चवन्नी की पी गये थे राजा भैया, यह चवन्नी उसमें जमा की गई । अब चवन्नी और लाओ ।"

"नामाकूल हो तुम; रईसों से बात करने की तमीज़ नहीं । शऊर सीखो,

रही है। नारायण शर्मा अचल थे। रघुनन्दन की मण्डली आग उगल रही थी। रघुनन्दन गिरफ्तार हो चुका था। अब उत्तेजित होकर स्त्रियों ने भी अपना एक दल संगठित किया था। वह दल जगह-जगह हाथ-माथा और छाती पीटकर—"ठाकुर साहब हाय-हाय, बूढ़े ठाकुर हाय-हाय, जुल्मी ठाकुर हाय-हाय" के नारे लगा रहा था। लड़कों ने छोटे-छोटे कपड़े और कागज के पुतले बनाए थे, वे जगह-जगह उन्हें जलाकर "मर गए बड़े ठाकुर हाय हाय" चिल्ला रहे थे। भीड़ अब दस हजार हो चुकी थी, सुना था सदर से कांग्रेस-कार्यकर्ता और महिला-मण्डल भी आ रहा है। अब मंडल-दल के आने की खबर भी किसी तरह राज को मिल गई थी।

पुलिस का घुड़सवार दस्ता आ पहुँचा। उसके साथ मे स्वयं पुलिस-कप्तान था। मजिस्ट्रेट राघवेन्द्र भी अपनी सरकारी जिम्मेदारी से साथ थे। मजिस्ट्रेट से सलाह करके पुलिस कप्तान ने हुक्म दिया कि तुरन्त भीड़ तितर-बितर हो जाय, नहीं तो भीड़ पर गोली चलाई जायगी। घुड़सवार दल ने अपनी राइफलें सँभाल लीं।

लोगों ने सीने तान दिए। बहुत सी महिलाएँ पुरुषों से आगे थीं। इसी समय बड़े ठाकुर नंगे बदन, पाँव-प्यादे भीड़ को चीरते हुए सीधे मन्दिर की पौर पर चढ़ गए। सबके देखते-देखते उन्होंने जमीन में गिरकर देवता को साष्टांग प्रणाम किया। फिर उन्होंने नारायण शर्मा से कहा—"गुरु जी! मुझे बहू ने आपके पास भेजा है, आप उससे मेरा अपराध क्षमा करा दीजिये। मैं सब प्रकार के दण्ड सहन करने को तैयार हूँ।"

नारायण शर्मा ने 'जयनृसिंह देव' का प्रचण्ड रव किया और बड़े ठाकुर से कहा—"तब पहले पुलिस को यहाँ से विदा कीजिये।"

पुलिस हटा दी गई। राज ने कहलाया कि 'बड़े ठाकुर एक पत्र में अपना अपराध स्वीकार करके पिताजी से अपने अपराध की क्षमा-याचना करें।' ठाकुर में विरोध की शक्ति नहीं रह गई थी। उन्होंने जो-जो कहा गया—वही-वही स्वीकार किया। पत्र राज को दिखाकर गजराजसिंह को भेज दिया गया। ठाकुर ने कहा-'मैं कर्जे के रुपये और दहेज से भी दस्तबर्दार होता हूँ।' पर राज ने कहा—'उसके

छदाम का आदमी, लाख रुपये की इज्ज़त उतार ली। नीच साले, रईसों से बात करने तक का तरीका नहीं जानते। न हुई बन्दूक, वरना गोली से उड़ा देता।"

राजाभैया बडबड़ाते हुए पैलेस की तरफ को लौटे। उधर से चौधरी हुक्मसिंह आ रहे थे। उन्होंने हँसते हुए कहा : "किसे गोली से उड़ा रहे हो राजा भैया!"

"भई खूब मिले चौधरी साहेब, भला एक अठन्नी होगी आपके पास?"

"हाँ, हाँ, लेकिन गोली किसे मार रहे थे?"

"बस, मार ही डालूंगा उसे। लाइए अठन्नी दीजिए कल ले लीजिएगा।"

"अठन्नी का क्या करेंगे राजाभैया?"

"इत्तफाक की ही बात है, खाली कुर्ता पहन कर निकल आया। बेचारी भिखारिन दम तोड़ रही है। भई, देखा नहीं जाता लाइए दीजिए।"

चौधरी साहेब ने हँसते हुए अठन्नी दी, और चलते बने। राजाभैया फिर लपके कलवार की दूकान की ओर।

२०

आनन्द स्वामी की चर्चा उस छोटे-से गाँव में घर-घर फैल गई। शाम को बहुत लोग उनकी बातें सुनने को आने लगे। पुरुषों से अधिक चर्चा स्त्रियों में हुई। स्त्रियाँ धर्म भीरु होती है, साधु-सन्तों मे भक्तिभाव रखती हैं। परन्तु आजकल नए ढंग के साधु-संत आते है। यह बात स्त्रियाँ बेचारी क्या जानें। फिर भी वह राजअतिथि हैं। कुंवर साहेब के मित्र है। विद्वान है। अंग्रेजी खूब बोलते हैं। सोने की कमानी का चश्मा लगाते हैं। इससे गाँव के लोगों में आस्था बढ़ चली। सुबह-शाम जब वह घूमने जाते तो दस-पाँच आदमी उनके साथ होते। राजगढ़ गाँव से सटा हुआ राजा साहेब का बड़ा भारी बाग़ है। बाग के अंचल में ही एक छोटी-सी नहर है। स्वामी जी और उनकी छोटी-सी मण्डली सुबह-शाम प्राय: इसी नहर की पटरी पर हवाखोरी करते। वहाँ से

लौटकर बाग में ग्राम की सघन छाया में बैठकर विविध चर्चा होती। चर्चा जिस विषय पर भी होती, ग्रानन्द स्वामी दो टूक बात कहते। उनका हर दृष्टिकोण ही निराला होता। गाँव वालों को उनकी बाते नई ग्रौर प्रभावशाली मालूम होतीं। जब गाँव के लोग स्वामी जी से बातचीत करते होते तो सुरेश चुपचाप उनकी बातें सुनते रहते। गाँव की इस भक्त मण्डली में ठाकुर शिवदत्त सिंह कानूनगो ग्रौर चौधरी हुक्मसिंह मुख्य थे। दोनों ही धर्म-प्राण पुरुष थे। कांग्रेस मे भी दखल रखते थे। सुधारों के पक्षपाती थे। इन दोनों प्राणियों के ग्रतिरिक्त राजनाथसिंह भी स्वामी जी के भक्तों में थे। बातचीत के दौरान में वही सबसे ग्रधिक बहस मे दिलचस्पी लेते।

इन दिनों कांग्रेस का बोलबाला था। देशभक्ति की चर्चा देहातो में भी खूब थी। पहले यहाँ एक-दो क्रान्तिकारी जमीन्दोज रह चुके थे। चौधरी हुक्म सिंह का उनसे सम्बन्ध रहा था। इसलिए ग्रपेक्षाकृत चौधरी साहेब ज़रा ज्यादा उग्र देशभक्त थे। उस दिन सुबह भ्रमण से लौटते हुए देशभक्ति की ही चर्चा छिड़ गई। ग्रौर बाग की सघन छाया में बैठकर स्वामी जी ने देशभक्ति का ग्रपना नया दृष्टिकोण इन ग्रर्ध शिक्षित ग्रामीण जनों को बताना ग्रारम्भ किया। सुरेश उनके मन्तव्य से प्रथम ही जानकर थे। ग्रतः वे चुपचाप ही रहे। चौधरी हुक्मसिंह ही इस समय बातचीत के मध्य विन्दु बने। स्वामी जी ने कहा :

"इस 'देश' नामक देवता ने इस सभ्य युग में जन्म लेकर दुनिया के सब देवताग्रों को पीछे धकेल दिया। ग्राज सारे संसार की सभ्य जातियों का वही सबसे बड़ा देवता बना हुग्रा है। परन्तु ग्रसभ्य युग में ग्रसभ्य जातियो ने कभी भी किसी देवता को इतनी नर-बलि न दी थी, जितनी इस सभ्य युग में इस खूनी ग्रौर हत्यारे देवता ने मनुष्य की ली है ग्रौर लेता जा रहा है। इस भयानक देवता की खून की प्यास का ग्रन्त ही नहीं है। बलिदान की पुरानी तलवार के स्थान पर इस देवता को नर-बलि से संतुष्ट करने के लिए ग्राज ग्रणुबम ग्रौर हाइड्रोजन बम बन रहे है, जिससे लाखों स्त्री-पुरुषों से हरे-भरे नगर बात की बात में मुर्दो के टीले बन जायँ। हँसते-खेलते बच्चे, घर-गिरस्ती के काम में मगन गुनगुनाती स्त्रियाँ, ग्रौर जीवन के उद्योगों में व्यस्त पुरुष क्षणभर में जो जहाँ है जल-भुनकर ख़ाक हो जायँ।" ग्रानन्द स्वामी का कण्ठ उद्वेग से ग्रवरुद्ध हो गया। ग्रौर उनके ग्रंग-प्रत्यंग काँपने लगे। सब लोग स्तब्ध

बैठे उनके मुख की ओर देखते रहे। कुछ देर बाद उन्होंने कहा :

"रोज-रोज ताज़ा मनुष्य का रक्त इस देवता को चाहिए। जो सबसे अधिक नर-वध कर सकता है, वही सबसे अधिक इस देवता का वरदान प्राप्त कर सकता है। यह हत्यारा देवता शायद सारे नृवंश को खा जायगा। एक भी आदमी के बच्चे को जीता न छोड़ेगा।"

चौधरी हुक्मसिंह और ठाकुर शिवदत्तसिंह ने एक दूसरे के मुँह की ओर देखा। पर उन्होंने कुछ कहा नही। लेकिन राजनाथ ने कहा :

"देश-भक्ति तो सब युगों में सब देशों मे रही है। देश-भक्ति तो इतनी बुरी नही है।"

आनन्द स्वामी प्रथम तो उत्तेजना के मारे लाल हो उठे। परन्तु फिर उन्होंने संयत स्वर में कहा : "अंग्रेज़ इस 'देश' नाम के नग्न देवता को लेकर भारत मे आये थे। वास्तव में यह खूनी देवता योरोप में उत्पन्न हुआ।" कुछ रुककर उन्होंने कहा : "संसार की सभी जातियों मे प्राचीन काल से 'देवता' संस्कृति का केन्द्र रहा है। इतिहास बताता है कि विजयिनी जातियाँ पराजितों पर अपने देवता को थोपती आई हैं।"

"आर्यों ने जब भारत को विजय किया तब उनका नेता इन्द्र, जो सिंध और पंजाब का राजा बन गया था, वहाँ के लोगों का देवता बन गया। अशोक ने अपनी धर्म-विजय मे बुद्ध को, शकों ने महादेव को, और गुप्तों ने वासुदेव कृष्ण को अपना देवता बनाया और उन्हें मनुष्यों के आगे लाए। इसी प्रकार अंग्रेज इस 'देश' नाम के देवता को लेकर भारत आए।"

"इस बात को ज़रा और अच्छी तरह समझाने की कृपा कीजिये स्वामी जी।"

"पाश्चात्य संस्कृति की नींव ग्रीकों ने डाली थी। मिस्र और बेबिलोनिया के प्राचीन साम्राज्यों को नष्ट होने पर ग्रीकों का उदय हुआ। उन्होंने सर्वप्रथम सार्वभौम राजा की पूजा की परपरा से चली आती हुई प्राचीन परिपाटी खत्म कर दी और पहली बार ससार के मनुष्यों के सामने यह आदर्श रखा कि साधारण जनता राजा के बिना भी राज्य कर सकती है। इसका परिणाम यह हुआ कि ग्रीक संस्कृति में मध्यम वर्ग के सामान्य लोगों के अधिकार बहुत बढ़ गए। ग्रीकों के प्रजातन्त्र की व्याख्या प्लेटो ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'रिपब्लिक' में की है।"

"हाँ, मैंने वह पुस्तक पढ़ी है। उससे यह भी प्रकट होता है कि मध्यम वर्ग के लोगों के हाथ सत्ता आने से ग्रीक लोगों में कला-कौशल और तत्त्वज्ञान का काफी विकास हुआ था और वे अपने काल की सब जातियों से बढ़ गए थे।" राजनाथ ने उत्सुकता से कहा।

"ठीक है। परन्तु इसके बाद रोमन लोगों ने ग्रीकों पर विजय प्राप्त करके ग्रीकों को पकड़-पकड़कर अपना गुलाम तो बनाया परन्तु शीघ्र ही अपनी कला और संस्कृति के बल पर वे गुलाम ग्रीक ही रोमन लोगों के गुरु बन गए। इन गुलाम ग्रीकों ही से उन्होने कला-कौशल और तत्त्वज्ञान सीखे।"

"यह तो बड़े ही आश्चर्य की बात है।" ठाकुर शिवदत्तसिंह ने गम्भीर होकर कहा।

"इतिहास तो आश्चर्य की बातों का मूल उद्गम ही है। रोमन साम्राज्य बढ़ता गया और भूमध्य सागर पर उसने अपना अधिकार कर लिया। परन्तु उन्होंने ग्रीकों के प्रजातन्त्र को अपनाया और विजित देशों पर उन्होने निरंकुश शासन ही कायम रखा। इसका परिणाम यह हुआ कि रोम मे साम्राज्यशाही की स्थापना हुई। परन्तु उसमें प्रजातन्त्र प्रणाली का विधान भी प्रचलित रहा। आज सारे योरोपियन राष्ट्रों के विधानों पर उसी की छाप है।"

"परन्तु रोमन साम्राज्य के पतन पर तो पोप ही रोमन साम्राज्य का नेता बन बैठा था? और योरोप की सारी राज्यसत्ताओं पर उसी का शासन था?" राजनाथ ने अपने इतिहास-ज्ञान का परिचय देते हुए कहा :

"हाँ, एक युग ऐसा आया था जब सारे योरोप की राजसत्ताएँ पोप के हाथ की कठपुतली बन गई थी। यह योरोप की अन्धाधुन्धी का अन्ध युग था। परन्तु इसी समय योरोप पर मंगोलों ने आक्रमण किया, और उसके बाद तुर्कों ने समूचे पूर्वीय योरोप और ग्रीस को ग्रस लिया।" आनन्द स्वामी इतना कहकर किसी गम्भीर चिन्तन में मौन हो गए। कुछ रुककर उन्होंने कहा : "एक बार तो ऐसा प्रतीत हुआ कि सारा योरोप मुसलमान या मंगोलियन बन जायगा। परन्तु नागरिकता के विकास ने और उद्योग क्रान्ति ने योरोप को बचा लिया। इस समय तक योरोप में वीनस, जिनोवा, फ्लारेन्स आदि नगरों का उदय हो चुका था, जिनका पोषण व्यापार से होता था। और इस सारे

व्यापार का मध्य केन्द्र-मार्ग कुस्तुन्तुनिया होकर था। इस समय तक भी योरोप के लोग भारत और चीन के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते थे। बाद में जब कोलम्बस और वास्कोडिगामा के ऐतिहासिक अभियान हुए और इनके द्वारा योरोप के लिए पूर्व का द्वार खोल दिया गया तो भारत, चीन और अमेरिका की उसे उपलब्धि हुई। और इन देशों की समृद्धि पर सारे पश्चिमी देशों की लोलुप दृष्टि पड़ी और उनमें प्रतिस्पर्धा बढ़ने लगी।"

"हाँ-हाँ, पहले यहाँ पोर्चुगीज आए, फिर डच, उसके बाद अंग्रेज़। फ्रेंचों ने भी हाथ-पैर मारे, परन्तु प्लासी के निर्णायक युद्ध में भारत में अंग्रेजों की सत्ता मूलबद्ध हो गई।" राजनाथ ने अपने इतिहास-ज्ञान का प्रदर्शन किया।

"प्रसन्नता की बात है कि इतिहास की बातों में तुम्हें रुचि है। परन्तु अंग्रेजों को डच-पोर्चुगीज़ और फ्रेंचों के सिर पर पाँव रखकर भारत और पूर्वी संसार में जो सफलता प्राप्त हुई यह केवल भाग्य से नहीं। इसका कारण वह उद्योग क्रान्ति थी जिसका उस काल योरोप भर का नेतृत्व अकेला इंग्लैंड कर रहा था। योरोप के दूसरे राष्ट्र स्पेन और पोर्चुगीज़ उन दिनों पोप के फेर में पड़कर धर्मान्ध बने हुए थे। इसी से वे पूर्व और पश्चिम में अपना सारा महत्त्व खो बैठे।"

"परन्तु मेरा ख़याल है कि फ्रान्स की रक्त क्रान्ति ने जो उलझनें पैदा कर दी थीं, उसने इंग्लैण्ड को योरोप में सारे देशों से प्रगति में आगे निकाल दिया।" राजनाथ ने अपनी राय दी।

"एक हद तक यह सत्य है। परन्तु अपनी कुटिल नीति से आज इस राजा का और कल उस राजा का राज्य हड़प करके जो अंग्रेजों ने समूचे भारत पर अधिकार कर लिया, यही केवल उनकी विजय न थी। उनकी सबसे बड़ी सफलता तो यह थी कि अपनी व्यापारिक क्रान्ति के द्वारा उन्होंने पाश्चात्य संस्कृति की लहर से भारत के कोने-कोने को व्याप्त कर दिया। यही नहीं, यह लहर भारत को अतिक्रान्त करके काबुल तक जा पहुँची। और उसका गहरा प्रभाव हमारी धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक स्थिति पर पड़ा।"

इतनी देर तक चौधरी हुक्मसिंह चुपचाप आनन्द स्वामी की गम्भीर विवेचना सुन रहे थे। अब वह सावधान होकर बोले: "अपने बड़े-बूढ़ों से हम तो यही सुनते आए हैं कि अंग्रेज न्याय और व्यवस्था लेकर भारत में आए,

उनके अदल-इन्साफ के कारण शेर और बकरी एक घाट पानी पीते थे।"

"ऐसा ही लोगों का आम विश्वास हो गया था। बड़े-बड़े मनस्वी विद्वान् भी उनके गुणगान करने लगे थे। परन्तु अंग्रेजों के भारत में आने का जो धार्मिक, राजनीतिक और सामाजिक प्रभाव भारत पर पड़ा, उस पर भारत के मनीषियों का ध्यान गया। राजा राममोहनराय, महर्षि दयानन्द सरस्वती, और दूसरे लोगों ने देखा कि अंग्रेजों की सफलता न धर्म के कारण हुई, न वीरता के कारण; उनकी सफलता का कारण उनकी 'देशभक्ति' था। प्रत्येक अंग्रेज, चाहे वह कितना ही स्वार्थी, नीच और दुराचारी हो, अपने देश के लिए बड़ी से बड़ी हानि उठा सकता था। बड़े से बड़े कष्ट सह सकता था। बड़े से बड़ा त्याग कर सकता था। उन्होंने यह भी देखा, हिन्दू ऐसा नही कर सकता। हिन्दू अधिक से अधिक अपनी जाति या धर्म के लिए त्याग कर सकता है। देश की कल्पना उस समय किसी के मस्तिष्क में थी ही नहीं। इन इने-गिने मेधावी जनों के मन में यह विचार बद्धमूल हुआ कि यदि हमारे हिन्दुओं के मन में भी देशभक्ति की भावना जागृत हो तो हम भी अंग्रेजों की भाँति अपना राज्य स्थापित कर सकते है।"

"इसके बाद ही बंगाल के बंकिमचन्द्र ने 'वन्देमातरम्' का घोष किया। और उस माता की मूर्ति का वर्णन किया, सुजलां सुफलां मलयज शीतलां, शस्य-श्यामलाम्।"

"ओहो! अष्टभुजी दुर्गा के स्थान पर उन्होंने मातृभूमि की प्रतिष्ठा की?" राजनाथसिह ने तत्परता से कहा।

"हाँ, पर अष्टभुज मूर्ति के स्थान पर उन्होंने इस देवी की प्रतिमा को 'सप्तकोटि भुजधृत खर करवाले' का नाद किया। अन्त में कहा—के बोले मा तुमि अबले।"

"ठीक है। ठीक है। इस सप्तकोटि भुजधृत खर करवाले शब्द में साढ़े तीन करोड़ बंगालियों का सामूहिक आवाहन था।"

"बेशक, शीघ्र ही सम्पूर्ण बंगाल 'सप्तकोटि भुजधृत खर करवाले। के बोले मा तुमि अबले' के निनाद से गूँज उठा।"

"वन्देमातरम् उनका जातीय जयघोष बन गया। यह मन्त्र और इस मन्त्र की यह नई देवी 'मातृभूमि' भूमि माता बन गई। और वह बंगाल की परिधि

को भेदकर अंग्रेजी साम्राज्य की वृद्धि के साथ-साथ, अंग्रेजी राज्य के मूलस्तम्भ अंग्रेजी पढ़े-लिखे हिन्दुओं के द्वारा भारत में चारों ओर फैलने लगी।" कुछ रुककर उन्होंने कहा : "जब बंग-भंग हुआ तो उससे क्रुद्ध बंगीय तरुणों ने 'वन्देमातरम्' के जयघोष करते हुए इस नए देश-देवता को अपना रक्त दान दिया। इसके बाद की क्रांति बंगाल तक सीमित न रही। देश—देशभक्ति का जुनून लोगों के सिर पर चढ गया। देश के लिए मर मिटने के हौसले जन-जन में भर गए। और देश का देवता नई पीढी के तरुणों का सर्वोपरि देवता बन गया।"

"परन्तु इससे कितना जागरण हुआ, कितना जीवन मिला, यह भी सोचिए।" ठाकुर शिवदानसिंह ने कहा।

"जरूर सोचिए। पर और बातों पर भी विचार करिए। आज सारे संसार की जातियाँ देशभक्ति के नाम पर लहू और लोहे का खेल खेल रही हैं, लोग निर्मम होकर मनुष्यों की हत्या कर रहे है। मनुष्यों की हत्या-विनाश के एक से एक बढ़े-चढ़े सामान निकाले जा रहे है। हमें यह भी सोचना चाहिए कि जब मनुष्य ही न रहेंगे तो देश कहाँ रहेगा। ये देश की धुन मे अन्धे लोग यह नही सोचते कि मनुष्य जो देश की अपेक्षा बहुत बडा है, उसका हम कैसे रक्त बहाएँ ?" आनन्द स्वामी यह कहकर मौन हो बैठे। किसी को भी कुछ कहने का साहस नही हुआ। कुछ देर बाद धीमी और कम्पित आवाज में उन्होंने कहा :

"'देश' नाम के इस खूनी देवता ने आज मनुष्य को ही मनुष्य का सबसे बड़ा खतरा बना दिया है। सोचो तो प्रथम महायुद्ध में दस लाख अंग्रेज, और १४ लाख फ्रांसीसी तरुणों की हत्या हुई। तीस लाख तरुण अंग-भंग होने के कारण अपंग हो गए। और एक अरब रुपया स्वाहा हो गया। धन-जन की इस भयंकर हानि ने इन योरोपियन देशों की रीढ की हड्डी तोड़ डाली। परन्तु इससे भी योरोप के राष्ट्रवादियों की आँखें नहीं खुलीं और उन्होंने इस युद्ध के पच्चीस वर्ष बाद ही दूसरे विश्वयुद्ध का सूत्रपात कर डाला।"

"क्या आप राष्ट्रीयता के भी विरोधी हैं?" चौधरी हुक्मसिंह ने कहा।

"भोले भाई, यह राष्ट्रीयता तो मनुष्य के खून के गारे से खड़ी की गई इमारत है। यह तो एक सामूहिक भोगतृष्णा है। और देशभक्ति ने ही इसे

उत्पन्न किया है। 'देश' नाम के देवता के पुजारी ही राष्ट्रीयता की माला जपते हैं।"

"किन्तु प्राचीन भारतीय साहित्य में भी राष्ट्र शब्द है। वैदिक आर्यों ने राष्ट्र के लिए बडे-बड़े अभियान किए थे।" राजनाथ ने जरा दृढता से कहा।

"एक हद तक यह केवल शब्दसाम्य ही है। अर्थों में अन्तर है। यह वास्तव में सामूहिक भोगतृष्णा है।"

"मै आपका अभिप्राय समझा नहीं।"

"देखो, एक व्यक्ति स्वार्थ के लिए कोई गर्हित कार्य करे तो समाज उसे दण्डनीय ठहराता है। अपने लाभ के लिए कोई व्यक्ति चोरी करे, झूठ बोले, जाल रचे, हत्या करे तो वह दण्ड का भागी और अपराधी बनता है—परन्तु देश या राष्ट्र के लिए तो सात खून माफ़ है। देश और राष्ट्र के लिए हत्या, चोरी, जाल और कुकर्म न केवल क्षमा की दृष्टि से देखे जाते है—अपितु उनकी प्रशसा की जाती है। गत दो विश्वयुद्धों में देश के देवता को प्रसन्न करने के लिए बारह करोड मनुष्यों की बलि दी गई। और इतना धन-उद्योग-शक्ति खर्च की गई जिससे शताब्दियों तक सारी दुनिया के मनुष्य निर्वाह कर सकते थे। आज भी समुद्र फौलादी जंगी जहाजों और आकाश बम-वर्षकों से भरा हुआ है। और राष्ट्र तथा देश को भेंट देते-देते दुनिया के मनुष्य कंगाल और तबाह हो गए हैं। जर्मनी की इस दुर्दमनीय राष्ट्रीय भूख ने ही तो दो विश्वयुद्धों का पुरोहित बनकर संपूर्ण योरोपीय राष्ट्रों को मृत्यु और विनाश के मुंह में धकेल दिया है। और इंग्लैण्ड—जो कभी सारे विश्व का राजनैतिक और आर्थिक नेता था, आज पतनोन्मुख होकर सिसक रहा है।"

"क्या राष्ट्रीयता से पूँजीवाद का भी कोई सम्बन्ध है?" राजनाथ ने पूछा।

"है ही! राष्ट्रीय भोगतृष्णा ने ही तो पूंजीवाद को जन्म दिया है। इग्लैंड में जब राष्ट्रीय भोगतृष्णा बढ़ी तो विज्ञान ने व्यापार क्रान्ति को उद्योग क्रान्ति का रूप दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि छोटे-छोटे गृह-उद्योग नष्ट होकर बड़े-बडे विराट् उद्योग-केन्द्र स्थापित हो गए, जो व्यक्ति की शक्ति की सीमा से बाहर थे। लोगों ने सम्मिलित उद्योगों का सूत्रपात किया, जिसका श्रेय राष्ट्रीय भावना था। यह सम्मिलित उद्योग स्थापना ही पूँजीवाद का श्रीगणेश था। वे उद्योग राष्ट्रीय पूंजी से चलने लगे। और देखते ही देखते योरोप में

उद्योगपतियों की बड़ी जमात इकट्ठी हो गई—जिसका विस्तार हुआ अमेरिका की नई भूमि में। इसी बीच योरोप और अमेरिका के विद्वानों की सम्मिलित वैज्ञानिक खोज ने एक के बाद एक नए-नए आविष्कार किए, जिनके सहारे पूँजीपति अपने व्यवसायों को विराट् रूप देते चले गए। तेल, कोयला और बिजली की प्राप्ति ने इन महाप्रगतियो के शक्ति-स्रोत को प्रवाहित कर दिया।"

"परन्तु इन सब आविष्कारों से तो व्यावसायिक उन्नति होकर इन देशों की सुख-समृद्धि ही बढ़ी।" राजनाथ ने कहा।

"पर ज्यों-ज्यों उनको सुख-साधन और समृद्धि मिलती गई उनकी भोगतृष्णा बढ़ती गई। जनसंख्या भी उनकी बढ़ी—पर उनका वह सारा ही आर्थिक और सामाजिक विकास उनके लिए अभिशाप हो गया। उनके आर्थिक स्वार्थ परस्पर टकराने लगे, और उससे एक नया संघर्ष उठ खड़ा हुआ, जिसने उनमें प्रथम तो व्यावसायिक प्रतिस्पर्द्धा को जन्म दिया। बाद मे इन पूँजीवादी देशों के लोग श्रमिक और पूँजीपति इन दो दलों में विभक्त हो गए। यह संघर्ष बढ़ता ही गया और इसे दूर करने के लिए इन शक्तिशाली राष्ट्रों ने सुदूर पूर्व के पिछड़े हुए राष्ट्रों पर अधिकार कर उन्हें कच्चे माल का उत्पादक और पक्के माल का ग्राहक बनाया। और उस लाभ का कुछ अंश श्रमिकों को देकर उन्हें सन्तुष्ट करना चाहा। इस राष्ट्रीय भोगतृष्णा और पूँजी के गठबन्धन ने अन्तर्राष्ट्रीय सघर्ष को जन्म दिया। जिसके फलस्वरूप योरोप को दो भीषण महायुद्ध लड़ने पड़े, जिनमें वह तबाह हो गया।"

"परन्तु युद्ध तो सदैव ही होते रहे है।" चौधरी हुक्मसिह ने अपनी विचारशीलता प्रकट की।

आनन्द स्वामी जरा चुप रहे। फिर उन्होंने कहा : "हाँ, युद्ध सदा से पृथ्वी की जातियाँ करती रही है। पर इन दोनों युद्धों की और युद्धों से पृथक् विशेषता थी। सन् १९१४ में जो प्रथम योरोपीय महायुद्ध छिड़ा, वह मानव इतिहास में पिछले सब युद्धों से अनेक विशेषताएँ रखता था। पिछले युद्धों में सेनाएँ लड़ती थी। और जनता को केवल युद्ध का व्ययभार ही सहन करना पड़ता था—परन्तु इस युद्ध में प्रथम बार लड़ने वाले राष्ट्रों के सब वयस्क नागरिक स्त्री-पुरुषों को सामरिक सेवा के लिए संगठित होना पड़ा। इन्हें योद्धा देने ही पड़े। रसद, गोला-बारूद बनाने के कारखानों में श्रमिक जुटाने पड़े। और भी

सेना की सहायता के काम करने पड़े, क्योंकि यह व्यापक राष्ट्रों का युद्ध था। अतः योरोप के बाहर के राष्ट्रों पर भी इसका प्रभाव पड़ा। संक्षेप में यह युद्ध राजाओं की राज्य-लिप्सा का युद्ध न था; राष्ट्रों की राष्ट्रीय भोगतृष्णा का युद्ध था। इसलिए समूचे समाज को इसका भोग भोगना पड़ा। यह संसार का पहला युद्ध था जो अकल्पित क्षेत्र तक फैल गया। जरा सोचिए, युद्ध का पश्चिमी क्षेत्र स्विटज़रलैण्ड तक पाँच सौ मील से भी कुछ अधिक लम्बा था। और पूर्वी क्षेत्र बाल्टिक सागर से कृष्णा सागर तक एक हज़ार मील लम्बे क्षेत्र मे फैला हुआ था। इस युद्ध में दो गुट बने, एक में वे राष्ट्र थे जिनके पास यथेष्ट साम्राज्य और धन था। दूसरे में वे—जिन्हें इनसे कुछ छीनना था। युद्ध का अन्त साम्राज्यों के पक्ष में हुआ तो सही, पर उसकी प्रतिक्रिया कुछ ऐसी हुई कि इन विजयी राष्ट्रों की साम्राज्य-सत्ता डगमगा गई।"

"मैं समझता हूँ कि इस युद्ध की सबसे महान् प्रतिक्रिया रूस की लाल-क्रांति है।" राजनाथ ने कहा।

"निस्सदेह। बर्फ से अवरुद्ध रूस की सामुद्रिक सीमाएँ उसके अतर्राष्ट्रीय व्यापार में बाधा डाल रही थीं। इससे वह निर्धन और निरक्षर रह गया था। इस क्रान्ति ने रूस की अन्तःशक्ति की कायापलट कर दी। और आज वह विश्व की अजेय शक्ति है।"

"परन्तु दूसरा विश्वयुद्ध तो और भी विनाशक था।"

"युद्ध तो सदैव ही विनाशक होते हैं। प्रथम युद्ध के बाद विभाजित योरोप पारस्परिक कलह की आग से जलने लगा। इसीने दूसरे युद्ध को जन्म दिया, जिसमें उन्नत वैज्ञानिक साधनों ने हिंसा और मृत्यु का नगा नाच नाचा।

"तेल की शक्ति ने युद्ध में रग ला दिया, और रबर के पहियों पर चढ़कर हिटलर ने अद्भुत रण-पाण्डित्य प्रकट किया। नीचे टैंक, बख्तरबन्द मोटर और मोटर साइकिल पर सवार आधुनिकतम शस्त्रों से सज्जित सेना, और ऊपर बम बरसाने वाले और छतरीधारियों को उतारने वाले वायुयान। ससार प्रतिदिन प्रातःकाल आश्चर्यचकित होकर हिटलर के चमत्कारों को देख-देखकर विमूढ़ हो रहा था। दो सप्ताह में उसने पोलैण्ड के जगत्प्रसिद्ध घुड़सवारों को मार गिराया। उसके बाद वह डेनमार्क और नार्वे के रुख़ उड़ा। डेनमार्क बिना लड़े अधीन हो गया और नार्वे नाममात्र को लड़कर। हालैण्ड और बेल्जियम को

धराशायी होने में पन्द्रह दिन लगे। इसके बाद ही वह फ्रांस की गर्वीली भूमि पर आ धमका। पेरिस का पतन हुआ। और अब उसने ब्रिटेन पर उड़ान भरी। यह पहला ही अवसर था जब ब्रिटेन की जल-शक्ति उसकी रक्षा न कर सकी। पर अमेरिका ने उसकी जान बचा ली। अब हिटलर ने बाल्कन प्रदेशों की ओर रुख किया। रूमानिया और बलगेरिया उससे मिल गए। यूनान पर इटली ने आक्रमण किया और उसकी सहायता के लिये जर्मन सेनाएँ यूगोस्लोविया को चीरती हुई यूनान पर जा धमकी। इसके बाद ही उसने रूस पर धावा बोल दिया। संसार ने धडकते कलेजे से देखा कि एक दिन भोर ही में दो हजार मील लम्बे क्षेत्र मे दस लाख जर्मन सेना रूस पर बढी चली आ रही है। अब तो अमेरिका और जापान भी युद्ध की आग में कूद पड़े। उधर अमेरिका के उड़नकिले योरोप की रक्षा को निकल पड़े। इधर जापान ने दिग्विजय की ठान ली। इस समय हिटलर की विजय-वाहिनी चरम सीमा को पहुँच चुकी थी और वह कैस्पियन सागर तट के निकट स्टालिनग्राड तक जा पहुँची थी।

"यदि अमेरिका और ब्रिटेन की सम्मिलित शक्ति योरोप मे दूसरा मोर्चा न स्थापित करती तो हिटलर के सर्वग्रासी पंजे से बचना कठिन था। हिटलर को वापस योरोप मे लौटना पड़ा। और बर्लिन में आत्माघात करना पड़ा। अब जापान की बारी थी। अंत में वैज्ञानिक उन्नति और हिंसा की पराकाष्ठा ६ अगस्त सन् १९४५ को हुई जब कि दुनिया ने देखा कि जापान के दो नगर अणुबम से भस्म कर डाले गये। जापान को घुटने टेकने पड़े। युद्ध समाप्त हुआ पर इसने साम्राज्यों की रीढ तोड़ दी। विश्व-शक्तियों मे अमेरिका को प्रथम स्थान मिला और पुरानी दुनिया मे समाजवादी रूस की शक्ति सर्वोपरि मानी गई।"

इतना कहते-कहते आनन्द स्वामी एकाएक रुक गये। फिर वह जरा गंभीर स्वर में बोले : "युद्ध समाप्त हो गया। साम्राज्य विध्वंस हो गये। परन्तु राष्ट्रीयता का कंकाल अभी तक खड़ा है। खूनी देश-देवता, अभी तक नर-बलि माँग रहा है। राष्ट्रवादी लोग संसार के भूखे, नंगे, रोगी, असहाय और भयभीत मनुष्यों को तीसरे भीषण युद्ध के लिए उकसा रहे हैं। लोग मृत्यु नहीं चाहते, युद्ध नहीं चाहते। परन्तु ये राष्ट्रपन्थी देशभक्त पूँजीवादी अपने देश के तरुणों के लोहू के प्यासे हो रहे हैं। वे संसार से नृवंश का नाश करने पर तुले हुए हैं।"

बातों ही बातों में बहुत रात बीत गई थी। बाहर एकदम अंधकार था। आकाश में बदली छाई हुई थी। जब यह छोटी-सी मंडली विघटित हुई। सब लोग इस बातचीत से इतने प्रभावित थे कि वे कुछ कह न सके। सबने स्वामी जी को प्रणाम किया। केवल चौधरी हुक्मसिंह ने इतना कहा कि आपने हमारे विश्वासों को डगमगा दिया है और हमारे मनों मे उथल-पुथल मचा दी है। परन्तु अभी हम लोग इस विषय पर फिर भी बात करेंगे।

आनन्द स्वामी बहुत कुछ कह चुके थे। उन्होंने जवाब में केवल मुस्करा भर दिया।

२१

मँगतू का मामला फिलहाल ठण्डा पड़ गया। गाँव में वह फिर नहीं देखा गया। एक-दो बार राजा साहेब ने पूछा भी पर कुँवर साहेब ने उनकी तसल्ली कर दी।

राजा साहेब के नए दीवान प्रकाशचन्द्र की पटरी अभी तक भी राजा साहेब से ठीक नहीं बैठी थी। राजा साहेब के पास जाते हुए वह कतराता था। उनके सामने जाते ही उसकी सारी विद्या चरने चली जाती थी। और सही-सलामत वहाँ से भाग आकर वह अपनी कुशल मनाता था। परन्तु इस समय राजा साहेब बहुत परेशान थे। इन्कम टैक्स वालों ने उनके नाक में दम कर रखा था। कई साल के हिसाब-किताब की जाँच हो रही थी और इसका सारा भार पड़ रहा था नए सेक्रेटरी पर। कई लाख पैनल्टी लगा दी गई थी। राजा साहेब बौखला रहे थे—वे कांग्रेसी सरकार को गालियाँ बकते थे। हिसाब-किताब बहुत गड़बड था। असल बात यह थी कि राजा साहेब तो कभी हिसाब-किताब देखते न थे। मुन्शी नौरंगराय का चर्खा पुराने ढर्रे पर चलता रहा था। अब जो प्रकाशचन्द्र ने छान-बीन की तो हजारों का क्या लाखों का ग़बन था। प्रकाश-चन्द्र मेहनती भी था और प्रतिभावान भी। वह बड़े परिश्रम से इस संकट को टालने में जी-जान से लग रहा था। वह जानता था कि तहसील में रुपया है ही

नहीं—टैक्स दिया कहाँ से जायगा। उधर हिसाब में पुरानी धाँधली चली आती थी। उसने दीवान जी से कहा तो उन्होंने पहले उसे संकेत से और फिर खुलकर समझाया—'अपने काम से काम रखो। ज्यादा गहरे मत जाओ। टूटती हुई रियासतें हैं। अब इनका खात्मा हो रहा है। क्यों गड़े मुर्दे उखाड़ते हो।' परन्तु प्रकाशचन्द्र का तरुण रक्त पुराने रियासती रक्त से भिन्न था। वह सब छानबीन करके सब काम व्यवस्थित करना चाहता था—परन्तु राजा साहेब तो उसे देखते ही बौखला जाते थे। हकीकत यह थी कि राजा साहेब की दिमागी हालत अब इस स्थिति में रही ही न थी कि वह सोच-समझकर कुछ इन्तज़ाम करें। कभी उन्होंने यह काम लगन से किया ही न था। और अब तो शराब ने उन्हें किसी काम का न रखा था। वह एक प्रकार से अर्द्ध शिक्षित थे। केवल अपनी बीमारी की बात वह ध्यान और दिलचस्पी से सुन सकते थे।

अब कुँवर साहेब के आने से प्रकाश को कुछ सहारा मिला। उन्होंने प्रकाशचन्द्र के साथ घन्टों बैठकर हिसाब-किताब की जाँच-पड़ताल की। अन्ततः चिट्ठा बना। और एक दिन सारी उलझनों को और कागज़ात के भारी-भारी गट्ठरों को लेकर प्रकाशचन्द्र राजा साहेब के हुज़ूर मे पहुँचा :

देखते ही राजा साहेब क्रुद्ध मुद्रा से बोले—

"यह क्या मुसीबत उठा लाए ?"

"हुज़ूर, सारा हिसाब-किताब है। अच्छा हो हुज़ूर ज़रा देख-समझ लें।"

"बहुत खूब, तो फिर तुम और दीवान साहेब किस मर्ज की दवा हो ?"

"सरकार, कुछ बातें है जिन्हें मैं हुज़ूर के सामने पेश करना चाहता हूँ।"

"नई या पुरानी ?"

"पुरानी सरकार।"

"तो वे बातें आज तक हमारे सामने नहीं आई। अब क्यों आती हैं ?"

"कूछ भूलें हैं, कुछ गलतियाँ हैं।"

"तो भई, दीवान साहेब से मिलकर दुरुस्त कर लो।"

"लेकिन सरकार...।"

"देखो, मैंने तुम्हें इसलिए नौकर नहीं रखा कि मुझे परेशान करो।"

"हुज़ूर, सब बातों पर आपको एक बार विचार करना है। कुछ दिक्कतें हैं।"

"क्या वे मेरी बीमारी से भी ज़्यादा है ?"

"बहुत जरूरी है सरकार।"

"ख़ैर, तो तुम मेरे हाल पर तरस नहीं कर सकते ? तुम चाहते हो मैं कचहरी में बैठकर खुद सब मामले-झगड़े निबटाऊँ ?"

"नहीं, मेरी मन्शा... ।"

"मुझे हलाक़ करने का है। भई, खूब नौकरी बजाते हो।"

प्रकाशचन्द्र समझ नहीं पा रहा था कि क्या करे। उसका मन हुआ कि सब छोड़छाड़ कर भाग खड़ा हो। परन्तु उसने फिर साहस किया। उसने कहा : "सरकार...।"

"क्या अभी और भी कुछ बाकी है ?"

राजा साहेब ने लाल-लाल आँखें करके प्रकाशचन्द्र की ओर देखा।

प्रकाशचन्द्र अब क्या करे—समझ नहीं पा रहा था, परन्तु इसी समय कुँवर साहेब स्वामी जी के साथ राजा साहेब के कमरे में आए। उनके साथ पण्डित कृपाराम भी थे।

राजा साहेब ने खड़े होकर स्वामी जी को प्रणाम किया। पण्डित कृपाराम ने संस्कृत श्लोक पढ़कर उनके मस्तक पर अक्षत-रोली का तिलक लगाया। राजा साहेब ने हाथ जोड़कर उसे स्वीकार किया।

सब लोग बैठे, तो प्रकाशचन्द्र अपना हिसाब-किताब लेकर वहाँ से भाग गया।

कुँवर साहेब ने कहा : "स्वामी जी जाना चाहते हैं। विदा माँगने आए है।"

"कहाँ ?"

"अभी तो बनारस ही जाएँगे। बाद मे हरद्वार-ऋषिकेश जाने का इरादा है।"

"लेकिन अभी और ठहरिये। मैं तो आपसे बात ही नहीं कर सका। क्या कहूँ, बीमारी ने मेरी जान ले डाली है। किसी काम का नहीं रखा। आप इतने दिन से यहाँ हैं, आपके सत्संग का लाभ न ले सका।"

स्वामी जी ने हँसकर कहा : "लेकिन महाराज, आपके आतिथ्य का मैंने खूब लाभ उठाया। यहाँ आकर मुझे बहुत प्रसन्नता हुई। बड़े आनन्द का

एकान्त स्थल है, फिर सुरेश का साथ। एक आदर्श तरुण है सुरेश। लेकिन आप हमेशा बीमार क्यों रहते है ?"

"मै क्या चाहकर बीमार रहता हूँ ? दो दर्जन मूँजी बीमारियाँ मेरे पीछे पड़ी है।"

"तो आप भी कमर कसकर उनके पीछे पड़ जाइए।"

"क्या करूँ मै ?"

"बस इस बीमारी नाम के दुश्मन को मुँह न लगाइए। बीमारी आप ही भाग जायगी।" स्वामी जी ने हँसकर कहा।

"आप तो आयुर्वेद के आचार्य है। कोई लटका बताइए।"

"वही तो बता रहा हूँ महाराज।"

"छोड़िए फिर, कुछ धर्मचर्चा कीजिये।"

"प्रातःकाल का समय है महाराज, इस समय झूठ न बुलवाइए।"

"झूठ की क्या बात हुई ?"

"बस, यह धर्म ही दुनिया का सबसे बड़ा झूठ है।"

राजा साहेब का मिजाज इस साधु की अटपटी बातें सुनकर खुश हो गया। वह खिलखिलाकर हँस पड़े। परन्तु पण्डित कृपाराम की त्योरियाँ चढ़ गईं। उन्होने कहा : "धर्म झूठ कैसे है स्वामिन् ?"

राजा साहेब ने प्रसन्नमुद्रा से कहा : "जोड़ी अच्छी है। पण्ड़ित जी, जरा स्वामी जी की अच्छी खबर लेना।"

स्वामी जी ने हँसकर पण्डित जी की तरफ देखा, और कहा : "इसलिए कि वह कोरे मिथ्यावाद पर आधारित है। बिना किसी प्रमाण के विश्वास करना, एक रहस्य को दूसरे रहस्य से समझना, यह विश्वास करना कि संसार में जो कुछ होता है अकस्मात् ही होता है—संसार के कार्यो, कार्य-कारण के वास्तविक सम्बन्धों पर विचार करने की कोई आवश्यकता नही है; जादू-टोना, दैवी शक्तियाँ, मन्त्र, चमत्कार, स्वप्न, भविष्यवाणियों और प्रकृति के परे की शक्तियों पर अन्धविश्वास करना, चेतन से जड़ की उत्पत्ति हुई है और उसी का उस पर अधिकार है, यह विश्वास उत्पन्न करना 'धर्म' का सबसे स्थूल और मुख्य स्वरूप है।"

राजा साहेब और पण्डित कृपाराम घपले में पड़ गए। उन्हें धर्म की ऐसी

अटपटी और विवादास्पद व्याख्या सुनने की आशा न थी। परन्तु पण्डित जी को अभी तक अपने पण्डिताउपने का घमण्ड था। उन्होने उसी तरह त्योरियों में बल डालकर राजा साहेब की ओर देखकर कहा : "धर्मावतार, यह तो धर्म की बड़ी अनोखी व्याख्या है। भला इसका कोई आधार भी है ?"

स्वामी जी अपने रग में थे। उन्होंने कहा : "धर्म का आधार क्या हो सकता है ? उसका माया महल तो अन्धविश्वास पर खड़ा है। उसकी दीवारें अन्धी श्रद्धा से बनी है, उसके छत है ही नही। यह धर्म अज्ञान का पुत्र है, और दुनिया के मनुष्यो मे दुःख-दर्द फैलाना इसका पेशा है।"

राजा साहेब को मज़ा आ रहा था। उन्होंने मूड में आकर कहा : "अब कहिए पण्डित जी, क्या जबाव देते हैं आप ?"

"मै क्या जबाव दूँ ? कुछ प्रमाण भी तो हो।"

"प्रमाण ? संघर्ष, खून-खराबी और घृणा इस धर्म की नीति है। हजारों वर्षो से इसने दुनिया के मनुष्यों को नाकों चने चबाए है। धर्म के कारण युधिष्ठिर ने जुआ खेला, राज-पाट हारा, भाइयों और स्त्री को जुए के दाव पर लगाकर गुलाम बनाया। फिर भी किसी माई के लाल ने उसकी ओर उंगली नहीं उठाई। धर्म के कारण द्रौपदी ने पाँच पति किए। धर्म के कारण राम को वनोवास करना पड़ा। धर्म के कारण महाभारत संग्राम मे पाण्डवों ने अपने गुरुजनों का वध किया। धर्म के कारण ही हरिश्चन्द्र ने राजपाट छोड़ भंगी की दासता की, स्त्री को बाजार में बेचा। धर्म के ही कारण बुद्ध-शंकर-दयानन्द ने कठिन जीवन बिताया। धर्म ही के कारण आज करोड़ों विधवाएँ हमारे घरों मे चुपचाप आँसू पीकर जी रही है। करोड़ों अछूत कीड़े-मकोड़ों की तरह जी रहे है। धर्म ही के कारण अपढ़ और ढोंगी ब्राह्मण पूज्य बने हुए है। धर्म ही के कारण आज हिन्दू-मुसलमान एक दूसरे के जानी दुश्मन बने हुए हैं। धर्म ही के कारण रोमन कैथोलिकों के भीषण अत्याचार की भेट लाखों ईसाई हुए। धर्म के कारण नीरो ने लाखों ईसाइयों को मसाल की भाँति जलवाया और मनुष्य के खून से तलवार रंगी। क्या आप इस बात पर विचार करना नहीं चाहते कि हज़ारों वर्षों से पृथ्वी भर में ऐसे उत्पात मचाने वाला धर्म आखिर क्या है ? यह क्यों नहीं मनुष्य से मनुष्य को मिलने देता ? क्यों नहीं

मनुष्य को आजाद रहने देता ? इसने शैतान की तरह हमारे दिमाग को गुलाम बनाया हुआ है ।"

पण्डित जी राजा साहेब के मुँह की ओर ताकने लगे । राजा साहेब धीरे-धीरे मुस्कुरा रहे थे । उन्होंने दो बीडे पान मुँह में ठूँसते हुए चश्मे मे आँखें घुमाकर पण्डित जी से कहा : "कहिए, आप क्या कहते है ?"

"मै क्या कहूँ ? मैं तो यही समझता हूँ, धर्म ही मनुष्य की रक्षा करता है, शास्त्र मे लिखा है—धर्मोरक्षति रक्षितः ।"

परन्तु आनन्द स्वामी पण्डित जी की भाँति कूपमंडूक न थे । वह विश्व दर्शन कर रहे थे । और प्रत्येक विषय को व्यापक दृष्टि से देखते थे । उन्होंने कहा : "इस झूठे धर्म का भाव भी बहुत चढा-उतरा । रोम के पोप मरनेवालो की पाप-स्वीकृति कराकर स्वर्ग के नाम हुंडियाँ लिखते थे और लाखों रुपये हड़प लेते थे । गया के पडे स्त्री तक भी दान करा लेने थे । काशी और प्रयाग मे लोग आत्महत्या करने मे पुण्य समझते थे । परन्तु आजकल धर्म की दर कूड़े-कर्कट मे बदतर हो गई है । मन्दिर के देवता के सामने एक पैसा फेंक देने से धर्म होता है ? फटे कपड़े किसी भिखारी को दे डालने से धर्म होता है ? नदी में एक गोता लगा लेने से धर्म होता है ? बड-पीपल के दो-चार चक्कर लगाने से, तुलसी की एकाध पत्ती चबाने से, गाय का मूत्र पीने से, माथे पर एक सौ ग्यारह नम्बर का साइनबोर्ड लगाने से, रास्ते चलते किसी सिन्दूर लगे पत्थर को सिर नवाने से धर्म होता है ? क्या कभी लोग इस बात पर विचार नही करेंगे कि दुनिया के मनुष्यों को अन्धा नाच नचाने वाला यह धर्म आखिर है क्या बला ! जातियाँ इस धर्म के धक्के खा-खाकर नेश्तनाबूद हो गईं । बौद्धों ने आधी दुनिया को अपने चरणों मे झुकाया और पीछे रक्त की नदियाँ बहाईं । अन्त में नष्ट हुए । ईसाइयों ने, मुसलमानों ने मनुष्य को सुख की नीद न सोने दिया । आज भी यह धर्म मनुष्य की छाती पर बोझ बना हुआ है । "

"लेकिन धर्म से तबाही आती है यह तो आपकी बात समझ में नही आती ।" पण्डित जी ने जरा दबी ज़बान से कहा ।

स्वामी जी सतेज स्वर में बोले : "कैसे आपकी समझ में आएगी, दुनिया का इतिहास तो आपने पढ़ा नहीं । धर्म किस तरह जातियों को तबाह करता है

इसके ज्वलन्त उदाहरण रोम और स्पेन है। दो हजार वर्षों तक परमेश्वर का यह एजेन्ट इटली में रहा। वहाँ के पोप और पादरी सारे योरोप को बन्दर की भाँति इशारो पर नचाते रहे। सारा देश—मठों, गिरजों, पादरियों, साधुओं और साध्वियों से भर गया। योरोप के श्रद्धालुओं ने इन पादरियों के मठों को धन से भर दिया। सभी सड़कें रोम की ओर जाती थी, जो भेंट ले जाने वाले यात्रियों से भरी रहती थी। अन्त मे इसी धर्म ने इटली का बेड़ा ग़र्क किया। उसका पतन होता ही गया और अन्त मे वह मर गया।

"स्पेन की आधी दुनिया में हुकूमत थी। सारे संसार का सोना-चाँदी उसके अधिकार मे था, उन दिनों संसार की सभी जातियों की गर्दने धर्म के फौलादी पंजों में फँसी थी, और लोगों की आँखों पर धर्म का पर्दा पड़ा था। योरोप की दूसरी जातियों ने सोचना-समझना शुरू कर दिया। पर स्पेन धर्म से चिपटा रहा। योरोप मे विज्ञान का सूरज चमका पर स्पेन में नहीं। अन्त में उसका धर्म उसे खा गया। ज्ञान के प्रकाश से उसने आँखें बन्द कर ली। स्पेन धर्म का शिकार हो गया।"

"किन्तु मैं तो हिन्दू धर्म की बात कह रहा हूँ स्वामी जी।" पण्डित जी ने जरा क्रुद्ध स्वर में कहा :

"हिन्दुओं का भी बेड़ा गर्क इसी धर्म ने किया। बडे-बड़े अश्वमेध और राजसूय होते थे। पुरोहित मनमाना नाच राजाओं को नचाते थे। सर्वसाधारण उनकी दासता करते थे। लोग अन्धे थे, बहरे थे, श्रद्धा और धर्म के पीछे भेड़ की भाँति चलते थे।"

"आप क्या श्रद्धा को भी महत्त्व नही देते ?"

"श्रद्धा तो अन्धी बुढ़िया है। अन्धविश्वास उसका अन्धा बेटा है। इन दोनों का काम लोगों को बेवकूफ बनाना रहा है। अन्धविश्वास का दास कभी सत्य को नहीं खोज सकता। और धर्म के तो हाथ-पैर ही अन्धविश्वास हैं। इसी से तो कहते है कि धर्म के काम में अक्ल को दखल नहीं।"

"लेकिन सच्चा धर्म आप किसे समझते हैं स्वामी जी ?" राजा साहेब ने कहा।

"सच्चा धर्म वह है जहाँ मनुष्य मनुष्य के प्रति उत्तरदायी हो, प्राणी-मात्र के लिए उत्तरदायी हो। धर्म वह है जहाँ मनुष्य अधिक से अधिक

लोकोपकार कर सके। जहाँ हृदय और मस्तिष्क का पूर्ण विकास हो। दया धर्म है, सहनशीलता धर्म है, प्रेम धर्म है, उदारता धर्म है, सहायता धर्म है, सेवा धर्म है, त्याग धर्म है, उत्साह धर्म है। संक्षेप में धर्म वह है जो प्रकाश और जीवन दे।"

राजा साहेब ने उगालदान में पीक डाली, और दो बीड़ा पान मुँह मे ठूँसते हुए कहा : "आज सुबह-सुबह खूब धर्म-चर्चा हुई। आपका क्या खयाल है पण्डित जी ?"

"जी हाँ धर्मावतार, यह विलायती धर्म की व्याख्या हुई।"

"तो अभी और कुछ कसर रही हो तो स्वामी जी और कुछ कहें।"

"बस-बस कृपानिधान, इतना ही यथेष्ट है। जाऊँ जरा शिवमन्दिर तक जाना है।"

"मैं भी राजा साहेब अब अनुमति चाहता हूँ, आज ही चला जाऊँगा।"

"अभी कुछ दिन और मुकाम कर लें।"

"अब फिर कभी आ जाऊँगा। सुना है, सुरेश भी दिल्ली जा रहे है।"

"क्या कहूँ, बीमारी के कारण मैं आपके सत्संग का पूरा लाभ नही ले सका।"

"आपको बीमारी फिर याद आ गई ?" स्वामी जी ने हँसकर कहा। और उठ खड़े हुए।

राजा साहेब ने नमस्कार कर स्वामी जी को विदा किया। और मसनद पर आँख बन्द करके लेट गए। वह सोच रहे थे—उन सब बातों को, जो अभी स्वामी जी ने कही थीं और आज तक कभी जिन्हें सुनने का उन्हें सुअवसर नहीं मिला था।

२२

तीन दिन से दिल्ली जाने की तैयारी हो रही है, पर प्रमिला रानी की तैयारियाँ पूरी नहीं होने को आती। कमरे में सामान फैला पड़ा है। एक रखती हैं दूसरा उठाती है। दो सेविकाएँ भी दौड़धूप कर रही है। प्रमिला रानी के माथे पर पसीना आ रहा है। बीच-बीच में वह हाथ रोककर सुस्ता लेती है। इतने ही में रानी चन्द्रमहल ने आकर कहा: "देखती हूँ उत्साह को ज्वार उठ रहा है। वहुत सामान ले जाया जा रहा है, क्या फिर लौटकर नहीं आओगी ? दिल्ली ही में बस जाने का इरादा है ?"

प्रमिला रानी शर्मा गई। उन्होंने कहा : 'नही, लेकिन..."

"लेकिन समझ मे नहीं आता कि क्या ले जाओ क्या छोड़ जाओ।"

"बडी मुश्किल है दीदी, मैं तो कभी घर से बाहर गई नही, उनका हठ है।"

"और तुम्हारा मन नही है रानी ?"

प्रमिला ने हँसकर कहा : "मैंने तो बहुत मना किया था। मानते नही है।"

"इसलिए जाना जरूरी है। घोड़ा थान पर बँधा रहेगा तो अकड़ जाएगा। खैर देखूँ क्या-क्या बाँधा है। हाँ, यह किताबों का गट्ठर कैसा है ?"

"सब उनके पढ़ने की हैं।"

"इनकी जरूरत नही है, एक ही किताब काफी है।"

"कौन-सी ?"

"तुम" चन्द्रमहल रानी हँस पड़ी। हँसी मे कही कुछ शायद चुभ गया। शायद वैधव्य। पर प्रमिला ने उस पर ध्यान नही दिया। उन्होने हँसकर कहा : "बड़ी वो हो दादी !"

"साडियाँ देखूँ, कौन-कौन-सी रखी हैं। यह गोटा किनारी की क्या चीज है ?"

"दुपट्टा है।"

"इसे वहाँ पहनोगी तो तमाशा बन जाओगी। बी० ए० की डिग्री का गाउन पहनना वहाँ।"

चन्द्रमहल ने कुछ साड़ियाँ छाँट दी, कुछ ब्लाउज रखे, कुछ निकाल दिए।

सुरेश की आधा दर्जन कमीजें, दो सूट, एक शेरवानी रख बाकी सब सामान अलग किया।

"इतने से चल जाएगा दीदी ?"

"चलाना पड़ेगा। दिल्ली मे एक घण्टे मे लान्ड्री मे सूट धुलता है। जो लोग विलायत से आते है, इतना सामान तो वह भी नही लाते।"

"तब काम कैसे चलता है उनका।"

"यह सब जाकर देख लेना।"

चन्द्रमहल ने सब सामान एक बड़े बक्स और एक सूटकेस मे भरकर ताला बन्द कर दिया। फिर कहा : "अब मेरे साथ आ।"

प्रमिला ने चन्द्रमहल का अभिप्राय नही समझा। चन्द्रमहल उन्हें खींचकर अपने वासस्थान पर ले गई। वहाँ उन्होंने देखा—पापड़, अचार, केश तैल, लिपस्टिक और थोडे-थोड़े सब मसाले एक बक्स मे भरे हुए रखे है। कुछ चम्मच-छुरी भी है। कंघा और ताश के नए सेट भी है।

"यह क्या दीदी, क्या तुम भी दिल्ली चल रही हो ?"

"नहीं चलूंगी तो तुम्हारी कघी-चोटी कौन करेगा रानी जी ?" चन्द्रमहल ने हँसते हुए प्रमिला की ठुड्डी पकड़कर कहा।

"खैर, अभी तो यह सामान भी अपने साथ बाँध। डर मत। तू जा रही है पहले पहल खुली दुनिया की सैर करने; मेरे जाने से सारा मजा किरकिरा हो जाएगा।"

"नहीं ! चलो दीदी, बहुत अच्छा रहेगा। सुना है, प्रदर्शनी देखने योग्य है। देश-देश की सामग्री आई है। सारे संसार भर में यह प्रदर्शनी अद्वितीय है।"

"तो तू उसे देख आ। आकर सब बातें मुझे बता देना। मेरे लिए तो उसका देखना न देखना बराबर है बहिन ! जिस ज्ञान से कोई काम न निकले वह किस मतलब का ?"

"तब तो दुनिया मे आकर मनुष्य को जड़ बनकर पड़े रहना चाहिए ?"

"पडे क्यों रहना चाहिए, कर्मबन्धन बड़ा विचित्र है। वह मनुष्य को बाँध-कर भी रखता है और काम में भी लगाए रखता है। मनुष्य को ज्ञान की बात सोचने की जरूरत ही नही रहती।"

"नहीं दीदी, तुम चलो। तुम्हारे बिना अकेले मेरा मन नही लगेगा।"

"अकेली कहाँ है तू, सुरेश जो साथ है। फिर वहाँ घर की चहारदीवारी नही है। खुला संसार है। अकेलापन मालूम ही न होगा; ले रख तू यह सब।"

"तो इन सबकी क्या ज़रूरत थी ? दिल्ली मे ये सब चीजे नहीं मिलती हैं ?"

"मिलती क्यों नही है। खरीद कर देने वाला नही मिलता।" चन्द्रमहल हँस दी। प्रमिला रानी लजा गई। यह भला वह कैसे कह सकती थीं कि —खरीदने को तो वो साथ ही है।

जमीदारियाँ खत्म हो चुकी। पुराना ज़माना बदल चुका। परन्तु जब सुरेश-प्रमिला दिल्ली जाने लगे तो गाँव के सब लोग आए, बहुतों ने उपहार दिए, बहुतों ने आशीर्वचन दिया। स्त्रियो ने मगलाचरण किया। अक्षत-रोली का तिलक दिया। इन सब विधि-विधानो मे कितना लोकाचार था और कितना प्रेमार्पण—यह सुरेश न देख सके। परन्तु यह सब सदाचार उन्हें बहुत भला लगा। और जब उनकी मोटर चली तो उनकी आँखे गीली थी।

२३

अशोक होटल में उस वक्त बडी बहार थी। शाम हो रही थी। एक-एक करके ठाठदार स्त्री-पुरुष पहुँच रहे थे। खाली मेजें भर रही थी। एक से बढ़-कर एक सुन्दर और आकर्षक चेहरे दिखाई पड़ रहे थे। सारे वातावरण में इवनिंग-इन-पेरिस की मदगन्ध भरी थी। भाँति-भाँति की मोहक मुस्कान अपनी बहार दिखा रही थी। कोई सुन्दर जोड़ा एक दूसरे की बाँह मे बाँह डाले आ रहा था। कितनी ही मुर्झाई हुई निगाहें उन्हें देखकर खिल उठती थीं। काउंटर पर बैठा हुआ मैनेजर झकाझक सफेद वर्दियाँ पहने हुए बैरों को कडी नज़रों से देख रहा था, जो फुर्ती से इधर से उधर चमचमाती प्लेटें पहुँचा रहे थे। दो-दो, चार-चार के गुट टेबुल के चारों ओर बैठे अपनी-अपनी बातों में मग्न थे। उनमें अनेक थके हुए चेहरे थे। बुझी हुई आँखें थी। वहाँ बातें हो रही थी—प्रेम की, पीड़ा की, आशा-निराशा की। कहीं कहकहे उड़ रहे थे, कहीं चुपचाप प्लेटों पर छुरी-चम्मच के वार हो रहे थे। कहीं सिगार के धुएँ

के वातावरण मे शेयर— स्टील, कोयला और अभ्रक की खानों की रूखी चर्चा चल रही थी। जिसे चाय के सिप में गीली बनाने की चेष्टा की जा रही थी। कही रेसकोर्स में जीती हुई बडी रकम की मुबारकबादियाँ दी जा रही थीं। जो पिछली ही रात शराब और जुए में खत्म हो चुकी थी। कहक़हे, छेड़-छाड़, चम्मच और प्लेटों की खडक, मीठा और प्यारा शोर, मोहक भिनभिनाहट, बैरों की झुकी हुई गर्दनें, और सौन्दर्य मे प्रदीप्त होंठ, धन के मद से गर्वित पुरानी आँखें।

एक अधेड़ उम्र के मारवाडी सेठ, कौए-सी काली खोपडी पर वसन्ती पाग रखे, लम्बा बन्द-गले का कोट पहने—किसी फिलमस्टार के साथ बैठे चाय पी रहे थे। सिर उठाकर उन्होने बैरा को पुकारा—"बॉय!"

"यस सर!"

"रसगुल्ला मेम सा'ब के लिए।"

"आल राइट सर!"

सेठ जी हँस पड़े। हँसकर उन्होंने साथ वाली युवती को देखा—उसका चेहरा लाज से सेब की भाँति लाल हो रहा था, वह भीता-चकिता हरिणी की भाँति आसपास बैठे चेहरों को घबराई नज़र से देख रही थी।

"परेशान हो रही हो तुम तो, यहाँ तो बहार ही बहार है।"

बैरा ने रसगुल्लों की प्लेट रख दी। सेठ जी ने युवती के आगे सरकाते हुए कहा: "खाओ, खाओ, शर्माओ मत; अजी, यहाँ शर्माना कैसा!" सेठ जी फिर हँस दिए। उनके सड़े हुए दाँत विद्रूप करने लगे।

प्रमिला के पैरों के नीचे से धरती खिसकी जा रही थी। उनके कदम आगे नहीं उठते थे। उन्हें सब कुछ नया और अजीब दीख रहा था। घर के बाहर समाज का यह जीवन है, उसकी उन्होंने कल्पना भी न की थी। वह कहना चाहती थीं—चलो लौट चलें। इस निर्लज्ज और निरावरण जीवन में मुझसे बैठा न जाएगा।

परन्तु इसी समय सुरेश ने कहा: "अरे! वह राजा हरवख्शसिंह बैठे हैं। अपने रिश्तेदार ही हैं। शायद फूफा या मौसा होते है। आओ, आओ, बड़े खुशदिल आदमी हैं। बड़ी रियासत है।"

सुरेश आगे बढ गए। प्रमिला को पीछे-पीछे जाना पड़ा। राजा हरबख्श-

सिंह एकान्त में बैठे चुपचाप सुगन्धित सिगरेट का कश खीच रहे थे। वे धुएँ के छल्ले बनाते और उसी धुएँ के भीने परदे में वहाँ की रंगीनियो की भाँकी का आनन्द ले रहे थे। अवस्था इनकी कोई चालीस साल की होगी, परन्तु चेहरे पर बर्बादी और आवारागर्दी के चिह्न साफ दीख रहे थे। वह भरे हुए शरीर के जरा भद्दे-से आदमी थे। परन्तु इस समय निहायत नफीस काला सूट पहने हुए थे। टेबुल पर उनके आगे ह्विस्की और गिलास रखे थे। सुरेश को देखते ही हरबख्शसिंह दोनों हाथ फैलाकर खड़े होकर हो-हो करके हँसने लगे। उन्होंने हँसते-हँसते ही कहा : "आओ, आओ ! सुरेश, तुम्हें देखने को तो भाई, आँखें तरस गईं। कहो मजे मे तो हो। दिल्ली में कब से हो ?"

"सिर्फ तीन-चार ही दिन हुए है। मुझे मालूम न था कि आप यहाँ है।"

इसी समय हरबख्शसिंह की नजर उनके पीछे सिकुड़ी हुई खड़ी प्रमिला पर पड़ी। सुरेश ने कहा : "मेरी पत्नी है। प्रमिला। यह हमारे सम्बन्धी राजा हरबख्शसिंह है, इन्हें प्रणाम करो।" प्रमिला ने प्रणाम किया। राजा साहेब ने खड़े होकर हँसते-हँसते प्रणाम का प्रत्युत्तर देते हुए कहा : "खूब-खूब भई सुरेश, बड़े भाग्यशाली हो तुम। खैर, आप तो बैठिए रानी साहिबा, खडी कैसे रह गईं।" उन्होने एक बैरे को पुकारा : "बैरा !"

"यस सर !"

"हटाओ—डेम-इट, हटाओ।"

"आल राइट सर," बैरा ने राजा साहेब का मतलब समझकर गिलास और ह्विस्की की बोतल हटाकर टेबुल को साफ कर दिया, और सिर झुकाकर खड़ा हो गया। राजा साहेब ने शालीनता से झुककर प्रमिला से पूछा : "क्या मँगाऊँ चा—काफी—आमलेट।" उन्होंने मैनो प्रमिला के आगे सरका दिया।

"कुछ भी" बडी कठिनता से प्रमिला के मुँह से केवल यही शब्द निकले।

राजा साहब ने मैनो पर संकेत करके आर्डर दिया। थोड़ी ही देर में बैरा बहुत-सी खाने-पीने की सामग्री लेकर आ उपस्थित हुआ। उनमें से बहुत-सी चीजों को प्रमिला जानती भी न थी। इसके अतिरिक्त उन्हें परपुरुष के सामने खाने-पीने में लाज भी आ रही थी। पर वह यह भी जानती थी कि जड़ता प्रकट करना भी एकदम असभ्यता है। अतः उन्होंने बीच-बीच में चाय की चुस्की लेना आरम्भ किया।

अशोक में अब जीवन की रगीनियाँ बढ़ रही थी। ग्राहकों से सभी टेबुलें भरी हुई थी। बहुत-से स्त्री-पुरुषों की बातचीत का शोर एक अजीब वातावरण उत्पन्न कर रहा था। ऐसा प्रतीत होता था मानो जीवन अब तक सो रहा था। और अब आँखों मे नींद का खुमार और आलस्य की मस्ती लिए झूमता चला आ रहा है। प्रमिला ने पहले पहल ही यह देखा कि स्त्रियाँ खुलकर यहाँ पुरुषों के साथ शराब पी रही है और चुहल कर रही है। इतने ही मे आरकेस्ट्रा की धुन बजने लगी और बहुत-से स्त्री-पुरुष उस धुन की लय मे मस्त हो नृत्य करने लगे। उनके शरीर एक दूसरे से सटे हुए थे और आँखों मे सोई हुई वासना अँगड़ाई ले रही थी। इन्द्रधनुष की-सी रगीनी उछली पड रही थी। सुन्दर छरहरे शरीर रंगीन सेंट की गन्ध मे सराबोर, सरसराते मूल्यवान वस्त्रों से सज्जित, हलकी-फुल्की गन्ध से बसे हुए कुछ बिखरे-से केश—बिजली के सर-सराते पंखे के झोकों से लहराते हुए, जड़ाऊ जेवर, क्रीम-लिपस्टिक-पाउडर। दूसरी ओर मूल्यवान सूट, जिनकी सारी सजधज पतलून की क्रीज और शोख टाई पर आघात-सा करती हुई। पटाखे की तरह रह-रहकर फूट पड़ने वाले ठहाके, अथवा बरसाती धूप के समान चलती-फिरती मुस्कान, परन्तु इन सबमे छिपी हुई पराजित जीवन की अतृप्त वासना।

प्रमिला रानी एक बारगी ही घबरा उठी। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि हॉल मे फैले हुए सिगरेट के धुएँ मे उनका दम घुट रहा है। ठहाके, कहकहे, चम्मच और प्लेटों के शोर उनके कानों में चुभने लगे! उन्होंने इस अभिप्राय से सुरेश की ओर देखा—जैसे वह आँखों ही मे कह रही थीं कि चलो यहाँ से।

इसी समय एक अधेड़-सी औरत ने बड़े नखरे के साथ आकर राजा हरबख्शसिह से बडी बेतकल्लुफी से कहा : "खुदा की मार तुम पर राजा, तोबा! तोबा! तीन दिन मे आज तुम्हारी सूरत देख रही हूँ। कहाँ रहे तीन दिन, पूरी कैफियत दो।"

धम से बड़े ही भद्दे तरीके से हँसती हुई वह औरत राजा साहेब के पास वाली कुर्सी पर बैठ गई। उसका शरीर पिलपिला हो गया था, चेहरे पर जरूरत से अधिक पाउडर पुता था—पर झुर्रियाँ बराबर झाँक रही थी। दाँत की बत्तीसी बहुत नसीफ बनी थी। वह गहरे उन्नाबी रंग की साड़ी और सफ़ेद जाली का ब्लाउज पहने थी। उसमें से उसका गदगद शरीर झाँक रहा था।

अपनी आयु पर आई हुई पतझड़ को उसने बनावटी मौसम बहार बनाया हुआ था। उसकी बेतकल्लुफी न जाने क्या रंग लाती, परन्तु राजा साहेब ने प्रमिला रानी की ओर संकेत करके कहा : "इनसे मिलिए—प्रमिला रानी और ये मेरे दोस्त और रिश्तेदार कुँवर सुरेशसिंह। और कुँवर साहेब, ये हैं हमारी मेहरबान मिसेज खन्ना।"

सुरेश ने उठकर हाथ मिलाया। प्रमिला रानी ने उठकर नमस्कार किया। मिसेज खन्ना ने हँसते-हँसते अपने पर्स से शीशा निकालकर चेहरा देखा, पफ से पाउडर लगाया, बाल ठीक किए, फिर हँसकर कहा : "आपसे मिलकर बहुत खुशी हुई। प्रमिला रानी तो शायद ऐसे मजमों की अभ्यस्त नहीं है, कैसी सिकुड़ी-सी बैठी है। कुँवर साहेब, आपने शायद इन्हें अब तक परदे के पिंजरे में बन्द रखा है।"

"आपका अनुमान ठीक है, मिसेज खन्ना, इन्हें बाहरी संसार का अभ्यास कम है।" कुँवर सुरेशसिंह ने कहा।

"तो उस कमी को अब पूरा कर दीजिए। बड़ा प्यारा नाम है आपका प्रमिला रानी, तुम तो प्रेम करने के काबिल हो।"

मिसेज खन्ना यद्यपि स्त्री थी, परन्तु उनकी बात सुनकर प्रमिला जड़ हो गई। वह बोली नहीं। मिसेज खन्ना ने कहा :

"प्रेम आत्मा का भोजन है। उसके बिना जीवन निरर्थक है। आपका क्या खयाल है, कुँवर साहेब ?"

"आप ठीक फर्माती हैं श्रीमती खन्ना।" सुरेश ने हँसते हुए कहा।

मिसेज खन्ना ने एक खास प्रकार का कटाक्ष करते हुए कहा :

"प्रेमहीन जीवन उस रात के समान है, जिसमें चाँद हो ही नहीं।"

सुरेश ने देखा कि मिसेज खन्ना के नेत्रों में एक चमक उत्पन्न हो गई है।

इसी समय एक नवयुवक ने हाल में प्रवेश किया। वह एक अत्यन्त सुन्दर, गौरवर्ण, लम्बे कद का तरुण था। वह कीमती अमेरिकन सूट पहिने था, उसके साथ एक योरोपियन युवती थी। कुछ देर तक वह आदमी हाल के प्रवेश-द्वार पर खड़ा रहा, उसने एक सिगरेट जलाई और हाथ की बेत को घुमाते हुए आगे को बढ़ा।

"लीजिए नवाब बब्बरपुर आ रहे हैं।" राजा साहेब तपाक से उठे और

दो कदम आगे बढ़कर नवाब से हाथ मिलाकर कहा : "इनसे मिलिए—कुँवर सुरेशसिंह और उनकी पत्नी प्रमिला रानी। और ये मिसेज खन्ना।" नवाब साहेब ज़रा झुके और कुछ अनमने-से कुर्सी पर गिर गए। फिर कहा : "आह ! मै भूल ही गया—इनसे मिलिए मिस रोज मेरी प्राइवेट सेक्रेटरी।"

राजा साहेब ने उससे हाथ मिलाया। प्रमिला ने दूर से प्रति नमस्कार किया। बैठने पर राजा साहेब ने पूछा :

"कहिए नवाब साहेब, क्या हाल-चाल है।"

"भई परेशान हूँ।"

"क्यो, क्यों ? खैरियत तो है ?"

"खाक खैरियत है। हकीकत यह है कि मेरे ग्यारह लाख पानी मे गए, और मामला खटाई में पड़ा सो अलग।"

"वही फिल्म वाला मामला न ?"

"जी हाँ, पूरे ग्यारह लाख सफा हो गए और मजा यह कि अभी फिल्म की आरम्भिक तैयारियाँ भी नही हुई।"

"तो क्या हुआ नवाब साहेब, कमाल किया आपने ? आप परेशान है, इस गुलाबी शाम में ? कहाँ गया वह बदमाश बैरा। बैरा !" राजा साहेब ने जोर से आवाज लगाई।

बैरा सिर झुकाकर आ खडा हुआ। और अभ्यासानुसार बोला : "यस सर !"

"कहाँ के हो जी ?" नावब साहेब ने सवाल किया।

"हुज़ूर, मुरादाबाद का हूँ।"

"और तुम्हारी बीवी कहाँ की है ?"

"हुज़ूर रामपुर की।"

"कितने दिन से यहाँ नौकरी करते हो ?"

"हुज़ूर, पैंतीस बरस से।"

"कोई लड़का-बाला है ?"

"है हुज़ूर, लेकिन नामाकूल है ?"

"यह अच्छा है।" राजा साहेब ने बात काटकर कहा। फिर नवाब साहेब की ओर रुख करके कहा : "नवाब साहेब, आप डिनर लेंगे हमारे साथ ?"

"क्या मुजाइका है" नवाब साहेब ने हँसकर कहा। राजा साहेब ने कहा : "बैरा हम डिनर लेंगे। और अभी तो लेमोनेड और उम्दा सिगरेट ले आओ।"

"यस सर !" कहकर बैरा चला गया।

राजा साहेब ने नवाब साहेब से कहा :

"हाँ, तो आप बहुत परेशान है ?"

"जी बहुत-बहुत परेशान हूँ।"

"सिर्फ ग्यारह लाख डूब गए इसी से ?" राजा साहेब ने झुककर कान मे कहा, नवाब साहेब ने उसी तरह आहिस्ता से कहा :

"नही यार बैन्क बैलेन्स ने दाँत दिखा दिए। और उधर वह नई एक्स्ट्रा हीरे का नेकलेस पसन्द कर बैठी। दूसरे नौकर आर्टिस्ट भी तग करने लगे तो आउटडोर शूटिग के बहाने भाग आया यहाँ।"

"अच्छा किया। मगर परेशान होने की जरूरत नही है, शायद मिसेज खन्ना भी फिल्म मे रुचि रखती है।"

"कितने रुपये की कमी है नवाब साहेब ?" मिसेज खन्ना ने नवाब को घूरते हुए कहा।

"अभी तो दस-बारह लाख चाहिए।"

"तो हो जाएगा, आप परेशान न हों।"

नवाब साहेब ने नेत्रों मे आश्चर्य भरकर मिसेज खन्ना को देखा। मिसेज़ खन्ना होटों मे मुस्करा रही थी और आँखों मे जली जा रही थी।

इसी समय एक सुन्दरी ने हाल मे प्रवेश किया। अपनी फिरोज़ी साड़ी का छोर उसने ज़रा ठीक किया, इससे उसकी फिरोजी जार्जेट का चुस्त ब्लाउज ज़रा कंधों पर से उघड़ गया। उसकी कुछ भी परवा न कर वह और आगे बढ़ी। ब्लाउज के उघड़ जाने से उसके सौदर्य का उभार निखर आया। कुछ ने उसकी ओर कनखियों से देखा और मुस्करा दिए। कुछ ने कानाफूसी की। वेशभूषा से वह कोई बड़े घर की रमणी प्रतीत होती थी। उसका व्यक्तित्व आकर्षक था और उसके अंग पर रत्नजटित आभूषण चमक रहे थे। उसके चलने और देखने का ढंग भी गर्वीला था।

क्षणभर रुककर उसने हाल में बैठे स्त्री-पुरुषों पर एक आलोचनात्मक दृष्टि डाली। उसकी नजर दूर बैठे हुए राजा हरबख्शसिंह पर जाकर अटक

गई। उसकी आँखों मे एक चमक आई। सामने स्टेज पर कोई एंग्लो इण्डियन लड़की अपने करतब दिखा रही थी। तथा होटल का आरकेस्ट्रा कोई प्रसिद्ध धुन बजा रहा था। चारो तरफ छुरी-चम्मच की खनखनाहट की आवाज़ भर रही थी। राजा गुरुबख्शसिह को देखते ही उसकी आँखों मे एक हिसक वासना की चमक छा गई। वह आगे बढी। जब वह मैनेजर के काउटर पर पहुँची तो राजा साहेब की नजर उधर घूम गई। एक वक्र मुस्कान उनके ओठों पर फैल गई। अभी वह मैनेजर के काउन्टर के पास खडी ही थी कि राजा साहेब की नजर से उसकी नजर मिल गई। वह आगे बढी। जब वह पास पहुँची तो राजा साहेब ने खड़े होकर उससे हँसते हुए हाथ मिलाया और कहा :

"खूब, खूब, आप अभी यही है। मैं तो समझ रहा था आप मसूरी की ठडी हवाएँ खा रही है।"

"सब प्रोग्राम ठप हो गया। सेठ जी को कोई अर्जेन्ट काम निकल आया, वे कलकत्ते गए है।"

"और आप अकेली घूम रही है ? गजब है ! खैर, आप कृपा कर बैठिए, और हमारे साथ डिनर लीजिए। इनसे मिलिए—मेरे रिश्तेदार राजगढ़ के राजकुमार सुरेशसिह और उनकी पत्नी प्रमिला रानी। और वह मिसेज खन्ना, ये नवाव साहेव बब्बरपुर और उनकी सेक्रेट्री मिस रोज", फिर मित्रों की ओर मुड़कर कहा—"ये है श्रीमती रेणुका देवी मोघाराम फतहचन्द फर्म के स्वामी सेठ...की धर्मपत्नी।"

"मिलकर खुशी हुई।" उसने मुस्कराकर जरा-सा सिर झुका सबका अभिवादन किया तथा फिर मुस्कराकर ही कहा : "बड़ी खुशी हुई आपसे मिलकर" और कुर्सी खीचकर कुँवर सुरेशसिह के बगल में बैठ गई।

मिसेज खन्ना ने घृणा से उसे देखा—और पर्स से आइना निकालकर अपने बाल ठीक किए।

रेणुका ने हँसकर कुँवर सुरेशसिह के कान के पास मुँह लेजाकर कहा : "आप क्या दिल्ली की सैर करने आए हैं ?"

"जी हाँ, प्रदर्शनी की धूमधाम हमें खीच लाई है। फिर प्रमिला देवी ने दिल्ली देखी नहीं थी। इसी से इन्हें ले आया।"

कुँवर साहेब ने मुस्कराते हुए कहा।

रेणुका प्रमिला की ओर घूमी—उसने हँसते हुए कहा :

"दिल्ली पसन्द आई आपको ?"

"जी, कह नही सकती। अभी तक तो मै डर ही रही हूँ।"

"अच्छा ? डर क्यों रही है ?"

"ऐसी भीड, ऐसी ऊँची अट्टालिकाएँ, ऐसे होटल, भद्र पुरुष और महिलाएँ, ये चहल-पहल, ये सब देखकर !"

"ये सब शायद आप पहले पहल ही देख रही है।" रेणुका ने मुस्कराकर कहा।

"जी हाँ, पहले पहल !"

"ओह ! तो आप जन्मजात परदानशीन महिला है। पहली ही बार आपने सूरज की खुली धूप देखी है और यह भी कि बाहरी दुनिया में लोग कैसे जीते हैं !"

"आप ठीक कह रही है।"

"तो बहिन, मै आपका स्वागत करती हूँ। मेरी सेवाएँ स्वीकार कीजिए। मै आपको दिल्ली की अच्छी तरह सैर करा दूँगी।"

"बहुत-बहुत धन्यवाद बहिन जी।" प्रमिला देवी ने मुस्कराकर कहा। स्टेज पर से वह एंग्लो इण्डियन लडकी अपने करतब दिखा कर चली गई थी। और एक दुबली-पतली भारतीय छोकरी भद्दा-सा भारतीय नृत्य प्रस्तुत कर रही थी।

अवसर पाकर मिसेज खन्ना ने नवाब साहेब के कान से मुँह लगाकर कहा : "खूब घुल-मिल रही हैं रेणुकादेवी कुँवर साहेब से, खुदा खैर करे।"

नवाब साहेब ने हँसकर मिसेज खन्ना का हाथ दबा दिया। मिसेज खन्ना ने अपनी नकली बत्तीसी की बहार दिखाते हुए कहा : "जहन्नुम में जाए, कैसी उम्दा शाम ग़ारत हो रही है !"

"तो हुक्म दीजिए, आपत्ति न हो तो शैम्पियन की एक हल्की-सी घूंट...।"

"माफ़ कीजिए इस वक्त नही।"

"यह क्या ? क्या आप पीतीं ही नहीं ?"

"पी लेती हूँ। मगर सोहबत भी तो माकूल हो।" उसने ज़रा जलती

नज़र से प्रमिलादेवी और रेणुका की ओर देखा, जो इस समय घुल-मिलकर हँस-हँसकर बातें कर रही थीं। राजा साहेब अवसर पाकर मिस रोज की मिजाज़-पुरसी कर रहे थे। उन्होंने जेब से सोने का सिगरेट केस निकालकर सिगरेट मिस रोज को पेश की। और फिर जरा उठते हुए जोर से कहा . "महिलाओ और सज्जनो, क्या डिनर मँगाया जाए ?'

मिसेज खन्ना ने शान से कहा : "क्या मुजाइका है ?"

राजा साहेब ने आवाज लगाई :

"बैरा !"

"यस सर", बैरा ने आते ही सिर झुकाकर कहा .

"छै डिनर।"

"यस सर", बैरा सिर झुकाकर चल दिया।

अब नवाब साहेब मिसेज खन्ना को पटा रहे थे। वह कह रहे थे : "आपको फ़िल्म इण्डस्ट्री मे शायद कुछ दिलचस्पी है ?"

"जी नही, मेरी दिलचस्पी तो आपमे है।"

"शुक्रिया", नवाब साहेब ने हँसकर झेपते हुए कहा।

मिसेज खन्ना ने अपना पर्स खोलकर अपना कार्ड उन्हे देते हुए कहा :

"कल शाम को आप मेरे साथ चाय पर आइए, लेकिन खुदा के लिए उस छोकरी को दुम से न बाँध लाइए।"

नवाब साहेब ने हँसकर स्वीकृति दी और कार्ड जेब के हवाले किया।

राजा हरबख्शसिह मिस रोज से कह रहे थे : "सोचता हूँ मैं भी एक अच्छी-सी फिल्म तैयार करूँ। आपमे तो फिल्म स्टार के सब गुण है। आप तो सितारा बन सकती है।"

"जी कोशिश कर रही हूँ।"

"खैर, तो फिर कभी बातें होंगी। कल शाम शायद आप खाली हों, यह मेरे कमरे का और फोन का नम्बर है।" राजा साहेब ने कार्ड दिया। रोज ने छिपी नजर नवाब साहेब पर डाली और कार्ड पर्स में रख लिया।

बैरा ने डिनर सर्व किया। छुरी-चम्मच चलने लगे।

राजा साहेब सिगरेट का धुआँ उड़ा रहे थे। कभी छिपी नजरों से रेणुका देवी से सांकेतिक भाषा में बातें करते। कभी कोई चुटकला छेड़कर सुरेश को

हँसाने और प्रमिला देवी को आकर्षित करने की चेष्टा करते। कभी इग्लैंड, फ्रान्स, स्विट्जरलैण्ड के रंगीन किस्से सुनाते। कभी को मिस रोज पर कश फक देते। एकाएक उन्होंने प्रमिला देवी की ओर देखकर कहा : "अहा, स्विटजरलैण्ड भी पृथ्वी का स्वर्ग है। आपको तो प्रमिला देवी, एक बार जरूर ही वहाँ की सैर करनी चाहिए। आल्पस की हिमाच्छादित पर्वत-श्रेणियों को जब सूर्य की सुनहरी रश्मियाँ चूमती हैं तो ऐसा प्रतीत होता है कि मनुष्य एक अनोखे सौन्दर्य लोक मे आ पहुँचा है।"

प्रमिला देवी ने अपनी बडी-बडी पलके उठाकर राजा साहेब की ओर देखा—उनकी आँखो के लाल-लाल डोरे वासना की चिनगारियाँ छोड़ रहे थे। निस्सदेह इस समय राजा हरबख्शसिंह एक आकर्षक तरुण प्रतीत हो रहे थे। पर उनकी आँखो को देखकर प्रमिला देवी ने अपनी आँखें नीची कर ली। और रेणुका देवी ने मुस्कराकर कहा : "आपने यथेष्ट भ्रमण किया है संसार का, राजा साहेब ! अफसोस मै अपने पिछले योरोप भ्रमण के समय स्विट्ज़रलैड न जा सकी। अब मुझे तव तक इसका मलाल रहेगा जब तक कि मैं अब उसे जी भरकर न देख लूंगी।"

"आप ज़रूर ही जाइए रेणुका देवी।"

"यदि सेठजी ने अनुमति दे दी तो अगले वर्ष शायद घूम आऊँ।"

राजा साहेब रह-रहकर रेणुका की आँखों मे कुछ ढूँढ रहे थे। और रेणुका सरल मुस्कान बखेरकर उसका प्रत्युत्तर दे रही थी। साथ ही छिपी नज़र से वह कुँवर सुरेश को भी देखती जाती थी।

एकाएक उसने सुरेश की ओर देखकर कहा : "आल्पस की उस शीतल छाया मे आपका और प्रमिला रानी का संसर्ग कितना सुखकर होगा ! मै तो इसकी कल्पना मात्र से ही विभोर हो उठती हूँ।"

"मैं भी सोचता हूँ एक बार प्रमिला को योरोप घुमा लाऊँ।"

"अवश्य चलिये, बहुत अच्छा प्रोग्राम रहेगा।"

राजा साहेब ने आखिरी कश लिया और लापरवाही से सिगरेट एश ट्रे में रख दी और काफी सिप करते हुए वे अब अफ्रीका के बीहड़ जंगलो के एक रोमांचकारी शिकार का किस्सा सुनाने लगे। किस्से में कितना सत्य था और कितनी कल्पना, यह नहीं कहा जा सकता था; परन्तु किस्सा इतना रोचक और

रोमांचकारी था कि प्रमिला देवी उसे बड़े ध्यान से सुनने लगी। यह बात राजा साहेब ने भाँप ली। और भावपूर्ण ढंग से कहा : "प्रमिलादेवी, मै क्या कहूँ, वह मेरे जीवन-मृत्यु की एक सधि रात्रि थी। मृत्यु का पदचाप मै कान से सुन रहा था। आशा की ज्योति फीकी होती जा रही थी, और मेरे अंगों को अवसाद ने जकड़ लिया था।"

प्रमिला को रोमाच हो आया। उन्होंने पूछा : "आखिर कैसे आपकी प्राण-रक्षा उस समय हुई ?"

"ओह् बडे चमत्कारिक ढंग से प्रमिला रानी, आप सुनेगी तो विश्वास ही न करेंगी।"

प्रमिला देवी का सारा ध्यान राजा साहेब की बात पर केन्द्रित हो गया।

राजा साहेब ने जैसे उस रोमांचकारी घटना को एकाएक स्मरण करके कहा : "उफ" और कुँवर सुरेश के कन्धे पर हाथ रख दिया। सुरेश ध्यान से उनकी ओर देखने लगा। राजा साहेब ने कहा : "मेरी बन्दूक मे सिर्फ एक ही गोली थी और शेर मुझसे केवल कुछ हाथ के अन्तर पर। मै निशाना लेने की स्थिति में न था। बस न जाने किस अज्ञात शक्ति ने मेरी उंगलियों में गति दी और गोली उस हिंस्र पशु की आँख मे घुसकर उसकी खोपड़ी को चूर-चूर करती हुई पार निकल गई।"

डिनर खत्म हो चुका था। पर सब लोग राजा साहेब की गप्पे ध्यान से सुन रहे थे।

रात काफी बीत चुकी थी। सब लोग काफी की आखिरी चुस्की ले रहे थे। बैरा-खानसामा थके-से जहाँ-तहाँ खडे थे। बहुत-से आदमी उठ गए थे। धीरे-धीरे हाल बिलकुल ही खाली हो चला। तब राजा साहेब ने उठकर बिल का पेमेन्ट किया।

सब लोग बाहर आए। मिसेज़ खन्ना नवाब साहेब से धीरे-धीरे बातें करती जा रही थी। और राजा साहेब मिस रोज से सटे चल रहे थे। रेणुका देवी ने जरा लडखडाने का ढोंग किया। कुँवर साहेब ने उसे हाथ का सहारा दिया। प्रमिला देवी ने भी मदद दी। रेणुका देवी उनके कन्धे का सहारा लिए गाडी तक पहुँची। गाड़ी के पास पहुँचकर उसने क्षमा माँगी। कहा : "कभी-कभी ऐसा मुझे हो ही जाता है। आप कल शाम जरूर मेरे यहाँ चाय पिएँगे।

और राजा साहेब आप भी; नहीं, इन्कार नही कर सकते आप ।" राजा साहेब ने हँसकर कहा : "मुझे कोई ऐतराज नहीं है । मैं अवश्य आऊँगा । बशर्ते कि प्रमिला रानी भी स्वीकार कर ले ।"

प्रमिला ने छिपी नज़रो से एक बार सुरेश की ओर देखा और फिर मुस्करा-कर स्वीकृति दे दी । रेणुका देवी ने कहा : "आप भी मिसेज खन्ना यदि कृपा करतीं तो बहुत अच्छा होता—"

"मैं जरूर आती लेकिन मजबूर हूँ । प्रथम ही वह समय एंगेज्ड है ।"

"और आप नवाब साहेब ?"

"ओफ, शर्मिन्दा हूँ । उस वक्त तो न आ सकूँगा । लेकिन फिर किसी वक्त जरूर आऊँगा ।"

"खैर तो यही सही ।" रेणुका देवी गाड़ी मे आ बैठी और स्वयं चलाने लगी । इसके बाद मिस रोज एक टैक्सी मे जा बैठी । राजा साहेब ने कहा : "चलो सुरेश, मैं तुम्हें पहुँचा दूँ ?"

"नही, नहीं, धन्यवाद । हम लोग ज़रा टहलना चाहते है । आपकी कृपा के लिए धन्यवाद ।" राजा साहेब भी अपनी गाड़ी मे बैठकर चलते बने । पटरी पर रह गए कुँवर सुरेश और प्रमिला रानी ।

२४

पानी खूब बरसा है । अब वर्षा थम गई है । आसपास की चीजें धुलकर साफ हो गई है । मकानों की दीवारें, बड़ी-बडी भव्य अट्टालिकाएं, कोलतार की काली नागिन-सी बल खाती सड़के, मोटरें, सब धुलकर निखर गई है । हवा में एक सुनकी आ गई है । मौसम खुशगवार हो गया है । रात बहुत बीत गई है । लोगों का सड़कों पर आवागमन कम हो गया है । पर हज़ारों बिजली की बत्तियों के प्रतिबिम्ब से सड़कें चमचमा रही है । ऐसा लग रहा है जैसे आज नई दिल्ली की सुहागरात है । एक दूकान के छज्जे के नीचे फुटपाथ पर एक बूढ़ा शरणार्थी अपनी छोटी-सी दूकान फिर से सजा रहा है । वर्षा में वह

बिल्कुल भीग चुका है। परन्तु अब तो घण्टे-आधे घण्टे की ही दुकानदारी शेष है। आज वर्षा के कारण उसकी बिक्री कम हुई है, सदा ही कम होती है। 'हर माल साढ़े पाँच आना', चीखते-चीखते उसका गला बैठ गया है। सस्ती काम-काज की चीजे वह बेच रहा है, पर लोग आते है—चले जाते है। उसकी ओर नज़र उठाकर देखते नही है। उसे पुलिस के डर से हर आधे घण्टे मे अपनी दूकान समेटनी पड़ती है। और आज तो वर्षा ने उसका सब खेल बिगाड दिया है। बिक्री कुछ भी नहीं हुई है। रात बहुत बीत गई है, ग्राहक कोई नही है, पर वह रह-रहकर चिल्ला उठता है—"हर माल साढे पाँच आना।" और फिर भयभीत नजर से इधर-उधर सन्तरी को देख लेता है। आज तो उसकी इतनी भी बिक्री नही हुई है कि खाने भर का सामान खरीद ले। पन्द्रह दिन से वह ढाई गज सस्ता लट्ठा या मारकीन खरीदने के जोड़-तोड़ लगा रहा है, पर बन नही पा रहा है। उसके पास केवल एक ही सलवार है—जिसे वह और उसकी औरत बारी-बारी से पहनते है। उसके दो बच्चे और उसकी औरत सडक की पटरी पर बनाई हुई झोंपड़ी मे उसकी प्रतीक्षा कर रहे है। वह यहाँ से जाएगा, आटा और लकड़ियाँ लाएगा, तब चूल्हा जलेगा—पापी पेट का गढ़ा भरेगा। पर आज तो बहुत देर हो गई है। अब आटे-लकड़ी की दूकान बन्द हो चुकी है। आज पैसे भी नही जुटे। उसने जेब मे हाथ डाला और हथेली पर रखकर आज की कमाई के पैसों को गिना। वह भुनभुनाया : 'आज तो आटे के पैसे भी अभी नही जुटे।" उसने आकाश मे नजर उठाई। बादल छा रहे थे, शायद फिर पानी बरसेगा। उसका दिल घबराने लगा। उसकी औरत और दोनों बच्चे उसकी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। वे भूखे होंगे। उसने फिर पैसे गिने, और जेब में डाल लिए। वह चिल्लाया—"हर माल साढ़े पाँच आना।"

उसकी आँखें बीते हुए चित्र देख रही थीं। जब वह अपना सब कुछ छोड-छाड़कर—लुट-पिटकर एक काफले के साथ घर से चला था। वहाँ उसके खेत थे, एक जवान लडका था, एक तेरह बरस की लड़की थी। उसकी आँखों के देखते उसके जवान बेटे की गर्दन से सिर काटा गया, फिर लाश के टुकड़े-टुकड़े किए गए। लड़की पर बलात्कार, आँसू, चीत्कार, हरण, ओफ ! उसका सिर घूम गया। वह चिल्लाया—"हर माल साढ़े पाँच आना।" उसके खेतों में ज़िन्दगी लहर मारती थी। भैंस तेरह सेर दूध देती थी। लड़का खेत के मेंड पर

बैठकर गाता था। और पत्नी दूसरों को अन्न बाँटती थी। चला आ रहा था वह काफले के साथ भूखा-प्यासा। छोटी-सी बच्ची उगली पकड़े साथ-साथ। औरत के सिर पर एक गठरी। पैरों मे छाले पड़ गए, उंगलियाँ सूज गई। कपड़े चिथड़े हो गए। पर वह अकेला ही तो न था। पूरा काफला था—वह चला आ रहा था, भारत की ओर, आशा-आशका और निराशा के झूले में झिलकोरे खाता हुआ—यह सोचते हुए, कही पीछे से कबाइली उनपर हमला न करे। एक बार पंजाब से बाहर पहुँचते ही सब खतरे दूर हो जायेगे। भारत के उसके भाई सिर-आँखों पर उसका सत्कार करेंगे, गले लगायेगे। उसके दिल के जख्म भर जायेगे।...लेकिन ये सब वाहियात बाते उसे क्यों याद आ रही है। वह चिल्लाया—"हर माल साढ़े पाँच आना।"

ओफ, कैसा खतरनाक था वह समय, उस गन्दे नाले मे तीन दिन और रात वह छिपा रहा था। उसके सब साथी काट डाले गये थे। उनकी लाशों का उसके चारों ओर अम्बार लगा था। जिन्दगी मौत मे बदल गई थी। ओफ, उसकी वह तेरह साल की फूल-सी लडकी लोहू-लुहान।...वह चिल्लाया—"हर माल साढे पाँच आना।" दूर तक उसने आँख उठाकर आने-जाने वालों पर नजर डाली। आज तो वह जरूर ही ढाई गज लट्ठा—लट्ठा न सही मारकीन ही सही—लाने का वायदा अपनी औरत से कर आया था। उसके साथ रहते उसे चालीस साल बीत चुके थे— अब वह साठ साल को पार कर रहा था। और उसने उसके सब अरमान पूरे किए थे—पर आज ..छी-छी—"हर माल साढ़े पाँच आना।"

सुरेश और प्रमिला टैक्सी की प्रतीक्षा मे खड़े है। एक के बाद दूसरी मोटरे आ रही है, जा रही है, गर्जती हुई। लाल, काली, पीली। प्रमिला इस बूढे शरणार्थी की ओर देख रही है। उन्होंने देखा—बूढ़े ने जेब से पैसे निकाले, गिने, बड़बडाया। आज उसके पास पेट भरने लायक पैसे नहीं है। प्रमिला का मन तलमला उठा। उन्होने बूढ़े की दूकान पर नजर डाली। खरीदने योग्य कोई वस्तु न थी। उन्होंने पाँच रुपये का एक नोट निकालकर बूढ़े की हथेली पर रख दिया। बूढा चिल्लाया—"हर माल साढ़े पाँच आना। ले लो बहिन जी, छाँट लो जो पसन्द आए, हर माल...।"

"नहीं यह रख लो।"

"क्या ?" बूढ़े की आँखों में एक बूंद खून उतर आया। उसका चेहरा स्याह हो गया। कैम्प की रोटियाँ उसकी आँखों के सामने आ गई। जिन पर थू करके वह दिल्ली चला आया था, और अब इस तरह शरणार्थी से पुरुषार्थी बन रहा था। उसने उस नोट पर हिकारत की नजर डाली। फिर प्रमिला रानी की ओर देखा।

"क्या ले रही हो ?"

"कुछ नहीं।"

"तो यह नोट ?"

"रख लो, तुम्हें जरूरत है।"

"क्या भीख ?" उसने नोट फेंक दिया। गुस्से से भरी नजर से उसने अशोक की संगीन इमारत को देखा, जहाँ से संगीत और आरकेस्ट्रा की मिली-जुली आवाज़ अब तक आ रही थी। प्रमिला देवी का किसी बाहरी आदमी से बात करने का यह पहला ही अवसर था। एक भूखा आदमी उनके अनुदान की इस तरह अवज्ञा कर सकता है, यह उन्होंने कल्पना भी नहीं की थी। वह बूढ़े की ओर देखती रह गई। फिर बूढ़े ने नोट उठाकर उन्हें देते हुए कहा : "शुक्रिया बीबी जी, मगर मैं भीख नहीं माँगता, इसे ले जाओ।"

"तुम क्या कहीं पास ही रहते हो ?"

"ज्यादा दूर नहीं, सड़क के उस पार।"

"तुम्हारे कितने बच्चे हैं ?"

बूढ़े का समय बर्बाद हो रहा था। उसने झुंझलाकर कहा : "तुम अपना काम करो बीबी जी, मुझे दुकानदारी करने दो।" वह चिल्लाया : "हर माल साढ़े पाँच आना।"

एक बहुत ही मैले-कुचैले छोटी उम्र के लड़के ने सुरेश के पैरों में बैठकर कहा : "आपके जूते पर पालिश कर दूँ सा'ब, एकदम चमका दूँगा।"

सुरेश ने पैर आगे को बढ़ा दिए। लड़का तन्मयता से जूता साफ़ करने लगा। प्रमिला ने आहिस्ता से पूछा : "तुम्हारा नाम क्या है भैया ?"

"मैं प्रमोद हूँ। मेरा नाम प्रमोदकुमार है मेम सा'ब।"

लड़के का उच्चारण, उसके भाव, उसका नाम सब उसके रंग के समान ही उज्ज्वल हैं। केवल कपड़े गन्दे है। आँखें बड़ी-बड़ी हैं, चेहरा भोला है।

प्रमिला ने पूछा—"तुम्हारी माँ है ?"

"है ।"

"कहाँ है ?"

"वह क्या खम्भे के साथ बैठी है ।" लड़के ने सड़क के उस ओर मोड़ पर बैठी एक स्त्री की ओर उंगली से संकेत कर दिया ।

प्रमिला ने देखा—एक अल्प वयस्का स्त्री सड़क के किनारे बैठी विचित्र ढग से आते-जाते आदमियो को घूर-घूर कर देख रही है । स्त्री सुन्दर है, इस समय वह बहुत कृश हो रही है । प्रमिला ने पूछा · "क्या वह लोगों मे भीख माँग रही है ?"

"जी नही, वह पागल हो गई है । वह रोज इसी तरह मेरे साथ आकर यही बैठ जाती है । वह मेरे बाप को खोजती रहती है ।"

"तुम्हारा बाप कहाँ है ?"

"वह लाहौर मे मार डाला गया बहन जी ।"

"लाहौर मे तुम लोग क्या काम करते थे ?"

"मेरे पिता स्कूल मे मास्टर थे, मैं स्कूल मे पढता था ।"

"तुम्हारे घर मे और कौन है ?"

"मेरे दो भाई लाहौर मे मारे गए । एक छोटा भाई और है, वह बीमार पडा है । पर मा उसकी देख-भाल नही करती । उसे कोठरी मे बन्द कर मेरे साथ चली आती है । सुनती ही नही ।"

"तुम्हारा खर्च कैसे चलता है भैया ?"

"बूट पालिश से कुछ पैसे मिल जाते है । इसी मे काम चल जाता है ।"

लडके के हाथ का ब्रुश तेजी से चल रहा था । और वह प्रमिला से बात भी करता जाता था । कुछ देर तक प्रमिला एकटक उस औरत की ओर देखती रही । लड़के ने बूट पालिश करके सुरेश को सलाम किया । प्रमिला ने एक रुपया उसके हाथ पर धर दिया । शायद उनकी आँखों मे आँसू छलक रहे थे । बालक ने अकचकाकर सुरेश की ओर देखकर कहा—"सा'ब, पैसे टूटे नही है ?"

"रख लो रुपया, पैसे लौटाने की जरूरत नहीं", प्रमिला ने कहा ।

लड़के की आँखें चमकने लगीं । वह सड़क के उस पार दौड़ गया, अपनी

माँ को वह रुपया दिखाकर कुछ कहने लगा।

एक टैक्सी आ लगी। सुरेश ने कहा : "चलो प्रमिला, चले।"

"जरा ठहरो।" वह फिर बूढ़े की दूकान पर झुकी। तीन-चार चीजें उन्होंने उठा लीं। और डरते-डरते फिर वही पाँच रुपए का नोट बढ़ाया। बूढ़े ने एक बार प्रमिला के चेहरे की ओर देखा, नोट लेकर उसने बाकी रेज़गारी लौटा दी। रेज़गारी लौटाती बार उसने कहा : "मै जानता हूँ तुम्हें इन चीजों की ज़रूरत नहीं थी !"

"ज़रूरत थी।"

"तुमने सिर्फ मेरी हालत पर रहम करके मेरी मदद की। अफसोस है कि मेरी हालत काबिले रहम हो गई है।"

"आज कितना माल बेचा तुमने ?"

"बस, अब तुमने जो पैसे दिए है, उनसे आज पेट भर जायगा बशर्ते कि आटे वाले की दूकान खुली हो।"

"तुम्हारे घर मे और कौन है बाबा ?"

"मेरी बुढ़िया है, और एक पोती है।"

"और कोई नही है ?"

बूढ़ा जवाब न दे सका। जैसे किसी ने उसके कण्ठ मे फाँसी का फन्दा डाल दिया हो। वह जल्दी-जल्दी अपनी दूकान समेटने लगा। सुरेश ने कहा—"चलो प्रमिला, अब चलें।"

परन्तु प्रमिला किसी अन्तर्जगत् में अभिभूत हो रही थी। घर से बाहर आकर उन्होंने जगत् का जो रूप देखा था, वह उनके लिए अभूतपूर्व था। उन्होने कहा : "तनिक ठहरो।"

बूढा अपनी दूकान समेटकर चल खड़ा हुआ। और प्रमिला भी उसके पीछे-पीछे चल दीं। सुरेश भी चुपचाप प्रमिला के साथ चले। बूढे ने रुखाई से कहा : "बहिन जी, आप अपनी राह जाइए, हम ग़रीबों के पीछे लगने से क्या लाभ है ?"

"बाबा, मैं तुम्हारी पोती को देखना चाहती हूँ।"

बूढ़े की आँखों में एक बूँद आँसू आया और होठों पर मुस्कान फैल गई। उन्हें काफी चलना पड़ा। प्रमिला को चलने की आदत नही थी। पर वह

"माधव ऐसी कच्ची गोलियाँ नहीं खेलता, पर अब देर कितनी है ?"

"तुम्हारी घड़ी शायद तेज चलती है।"

"दिल की धड़कन भी।"

"अभी तो आधा घण्टा है।"

"तो इस आधे घण्टे का सदुपयोग होना चाहिए।"

"इससे अच्छी और क्या बात हो सकती है।"

"तब साफ-साफ कहो।"

"जो पूछो।"

"कौन है—वह श्यामली-सलौनी, श्यामा-वामा, मधुरालापिनी, स्वीट सिंगर, नाइटेंगिल, जल भरे मेघों के समान शीतल फव्वारों को छोड़ने वाली। बताओ तो।"

"अरे, तो तुम सब समझ गए ?"

"क्या मुझे भोंदू समझा है ?"

"तो अब कुछ न कहेंगे, भई, अपना माल खुद देख-भाल लेना।"

"लेकिन खरा सोना हो।"

"और यदि नीलम मणि हुई असली ?"

"तो परख लूँगा, मैं भी वह जौहरी हूँ कि जिसका नाम।"

"मगर एक बात है माधव !"

"क्या ?"

"माधव उसके रोम-रोम में बसा है, माधव के नाम की वह दीवानी है।"

"यह सब तुम्हारी ही करामात है, उल्टा-सीधा समझा दिया होगा।"

"नहीं, तुम्हें उसने देखा है। वह तो तभी से लोट-पोट है, बस दिल की घुण्डी कल खुली है।"

"अब तो वक्त हो गया।"

"अभी तो बीस मिनट बाकी हैं भाई।"

"तो तब तक उसका नाम बताओ।"

"मैं क्यों बताने लगी ?"

की हथेली पर रखकर आगे बढ गई । उन्होंने बूढ़े से पूछा : "बाबा, अब और कितनी दूर है तुम्हारा घर ?"

"वही तो है सामने ।"

शहरपनाह की शाही टूटी-फूटी एक दरीची मे चटाइयों और बाँसों से काम-चलाऊ आड़ करके एक चारपाई की जगह बना ली गई है, जिससे धूप और बारिश से कुछ बचाव हो सकता है । उसी के द्वार पर एक फटा हुआ टाट लटक रहा है ।

बूढ़े ने अपना बोझ बाहर ही पटक दिया । उसने उसी टाट के भीतर हाथ बढ़ाकर कहा : "जल्दी कर बड़ी देर हो गई ।" भीतर से एक फटा तहमद फेंक दिया गया, जिसे बूढ़े ने कमर में लपेट कर और सलवार उतारकर भीतर बढ़ाते हुए कहा : "कोई तुममे मिलने आये है । राजा-रईस लोग है । आकर देखो ।" बुढ़िया झटपट सलवार पहनकर नई वधू की भाँति लजाती हुई बाहर आई । उसकी अंगुली पकड़े हुए उसकी आठ बरस की पोती है । दूसरे हाथ में एक बाल्टी है ।

प्रमिला ने देख लिया—बूढ़े-बुढिया दोनों के बीच केवल एक सलवार है । उसे पहनकर जब बूढा बाजार जाता है, तो बुढ़िया को अपनी लाज इस पर्दे में छुपी रहकर बचानी पड़ती है । बाहर से आकर बूढा उस चिथडे से काम चलाता है और बुढिया सलवार पहनकर बाहर आती है ।

बुढ़िया ने प्रमिला को देखकर भी नही देखा । वह बाल्टी लिए नल की ओर बढ़ चली । प्रमिला ने रोककर कहा : "माँजी, मैं तुमसे मिलने आई हूँ, तुम्हारी पोती को देखने ।" बुढ़िया ठिठक कर देखने लगी । भला वह भी इस समय इस योग्य है कि किसी से मिल सके—मुलाकात कर सके । बातें कर सके । प्रमिला ने आगे बढकर बालिका की ठोड़ी पकड़ ली, उसका मुँह मुर्झाया हुआ है । निस्संदेह वह सुबह की भूखी है । बालिका की आँखें कच्चे दूध के समान निर्दोष है । प्रमिला ने कहा : "बड़ी सुन्दर बिटिया है ।" वह बूढी से कुछ और बात भी करना चाहती है—पर फिर कुछ सोचकर बालिका की हथेली पर कुछ रखकर बुढ़िया को प्रणाम कर चल दीं ।

बुढ़िया ने कहा : "यह क्या है बहिन ?"

"कुछ नहीं माँजी, बिटिया की बात में मत बोलो ।"

"लेकिन..."बुढिया ने बूढे की तरफ देखा। बूढ़ा जैसे चारों ओर अंधेरा ही ंधेरा देख रहा है। वह मुँह फेरकर खडा हो गया। विरोध और आत्म-म्मान की भावना उसमें नही रह गई। प्रमिला तेजी से आगे बढ़ गईं, सुरेश ानके पीछे-पीछे। बूढे और बुढिया देर तक खड़े उन्हे देखते रहे।

२५

दिन भर आज प्रमिला देवी का व्यस्त प्रोग्राम रहा था। और अब आधी ात बीत रही थी, परन्तु प्रमिला देवी को नींद नही आ रही थी। आज जो ुछ उन्होंने देखा था— उसकी एक गहरी प्रतिक्रिया उनके हृदय का मन्थन कर ही थी। एक पर्देनशीन बडे घर की बहू के लिए बाहरी दुनिया का यह स्पर्श र्वथा नवीन, अद्भुत और अपरिचित था। उनके मन मे गहरी उथल-पुथल ो रही थी। आज जिन मूर्तियो को उन्होने देखा था—वे उनके मानस-पटल पर ठात् उभर रही थी। प्रदर्शनी का वह विराट प्रदर्शन: अमेरिका, रूस, ीन, भारत और अन्य विदेशी राष्ट्रो की शिल्पकला और सभ्यता का वह वेराट् प्रदर्शन। प्रदर्शनी का वह भव्य माया महल, देश-विदेश के लोगों का मेला-जुला जीवन-प्रवाह उनके लिए सर्वथा अतर्क्य और अकल्पनीय था। फिर ाजा गुरुबख्शसिह की उद्दीप्त विलासमूर्ति, रेणुका का स्वच्छन्द विचरण, नवाब ाहेब की आवारागर्दी, मिसेज़ खन्ना का इस प्रौढ़ावस्था का शौक, होटल में उपस्थित बडे लोगों का हुजूम—शराब, ऐयाशी, फजूलखर्ची, विलास-वासना का ाह नग्न प्रदर्शन—वे सब ऐसी चीजें थी जिनकी उन्होंने कभी अपने जीवन ं कल्पना भी नही की थी। वह सोच रही थी—उनके जीवन के भीतरी और ाहरी पहलुओं को। वह सोच रही थी—जो लोग खाने-पीने, मौज-बहार करने में ऐसे बेबस, असहाय हैं, ऐसे कृत्रिम हैं, ऐसे परवशापेक्षी है—वास्तव ं उनके जीवन की शान्ति कहाँ हो सकती है? इन सब माया मूर्तियों ही के ाथ उनके सम्मुख उभर आती थी उस बूढ़े पुरुषार्थी की करुण-भग्न-खण्डित-ाजड़ी हुई मूर्ति, जिसके पास पति-पत्नी के बीच केवल एक ही सलवार थी।

जीवन के अस्त होते-होते जिसका सब कुछ छिन चुका था, फिर भी जो लड़ रहा था। जीवन से—प्राणों से—भूख से ! और तब उभर आई उस वृद्धा की वह विवश लज्जा—आधी रात को बाल्टी लेकर पानी भरने को जाती हुई उसकी डगमग चाल, जिसमें टूटी हुई जिन्दगी चीख रही थी। उस बालक के बूट पालिश पर तेज़ी से चलते हुए दुबले-पतले मैल भरे हाथ—जीवन के प्रभात में ही जीवन का बोझ ढोते हुए। उसकी आँखें—और सड़क के उस छोर पर बैठी उसकी युवती माँ—जिसका सौभाग्य उसी की आँखों के आगे लुटा था—पर वह उसे इन आते-जाते असंख्य जन-समूह मे ढूँढ रही थी—उन्माद का प्रसाद जो मिला था उसे।

सुरेश भी नही सो पा रहे थे। यही सब बातें उनके हृदय मे भी उथल-पुथल मचा रही थी। वह तरुण थे, सुशिक्षित थे, पुरुष थे, और प्रमिला रानी की भाँति अवरोध मे नही रहते थे; फिर भी भावुक, सच्चरित्र और दुनिया के इस व्यस्त जीवन से अनभिज्ञ थे। ज्ञानार्जन मे ही उनका अब तक का जीवन गया था। समाज के सच्चे रूप के तो अभी उन्होंने दर्शन ही नही किए थे। अभी तो वह जीवन की देहरी पर ही खडे थे। आज के दिन उन्होंने भी जो कुछ देखा था—उसका उनपर भारी प्रभाव पडा था। परन्तु उनकी विचार-धारा का प्रवाह प्रमिला देवी से बिलकुल दूसरी ही दिशा में था। प्रदर्शनी को देखकर उनके मन में उथल-पुथल मच गई थी। विश्व की उद्योग क्रान्ति और अर्थ क्रान्ति के उन्होंने वहाँ सक्रिय दर्शन किए थे। सोवियत रूस और अमेरिका के भवनों को आमने-सामने खड़ा देखकर उनके मन में जातियों के संघर्ष और एकता की गुत्थी के ताने-पाने उलट-पुलट हो रहे थे। उन्होने चीन की रक्त क्रान्ति, शताब्दियों तक के उसके शोषण के विवरण पढे थे। योरोप की जातियों ने चीन के महाराष्ट्र को बदनाम करने में—पीली जातियों की चरित्र-हीनता और नैतिक पतन के चित्र खीचने में—कोई कोर-कसर नहीं रखी थी। आज जो योरोप की उदग्र जातियों के प्रदर्शनों के बीच लाल चीन का यह विराट् प्रदर्शन हो रहा था, सो जैसे चीख-चीखकर उनके कानों में कह रहा था—यह एशिया का एक करारा तमाचा है जो योरोप के गाल पर पड़ा है। उनके नेत्रों में आ खड़े हो रहे थे वे विनम्र चीनी तरुण और युवतियाँ जो यहाँ अपने देश की गौरव मूर्ति के लाखों दर्शकों को दर्शन करा रहे थे। उन्हें यह

चमत्कारिक प्रतीत हुआ था जब उन्होंने एक चीनी तरुण से अंग्रेज़ी में बात की और उसने उन्हें हिन्दी में उत्तर दिया। सारे विश्व का नया विकसित रूप किस प्रकार भारत के प्रति उन्मुख हो रहा है, यह प्रदर्शनी इसका एक उदाहरण थी। वह प्रभावित थे, और उनके मन में आज ही यह प्रबल अभिलाषा जाग्रत हुई थी कि वह एक बार अवश्य ही विश्व-भ्रमण करेंगे।

उभर आए उनके मानस-पटल पर हरबख्शसिंह के वे सब रंगीन झूठे-सच्चे किस्से, जो नशे की तरंग मे उन्होंने सुनाए थे और योरोप भ्रमण का उनसे आग्रह किया था। अब इस क्षण उनका अन्तःकरण ही उनसे यह आग्रह कर रहा था। परन्तु एक सबसे जबर्दस्त वस्तु जो रह-रहकर उनके हृदय में आघात कर रही थी—थी होटल के भीतर और बाहर के वे सब दृश्य और अनुभूतियाँ जो वह अभी देख-सुन चुके थे। प्रमिला देवी जिन मूर्तियों का ध्यान कर रही थीं, और जिन बातों का विचार कर रही थी—उन्ही सब बातों का विचार वह भी कर रहे थे, परन्तु इन बातों की जो प्रतिक्रिया उनके मन में हो रही थी वह प्रमिला रानी से जुदा थी। वह सोच रहे थे—विलास—अपव्यय—और अभाव—और श्रम का बेमेल मेल यह कैसा है? होटल की दीवारों के भीतर और बाहर में कितना अन्तर है। भारत कितना भूखा है, असहाय है। वहाँ न कोई बूढ़ों की खबर लेने वाला है, न बच्चों की, न अनाथ स्त्रियों की। बूढ़े आँखों में भूख, युवती हृदय में उन्माद, और वृद्धा जीवन मे लाज का भार लिए जी रही है। और कुछ लोग हैं जो बेहयाई में अभी भी डूबे हुए हैं। विलास की गन्दगी में अभी भी लिपटे हुए है।

यह कैसा जनता का राज्य है? यह कैसा जनतन्त्र है? एक तरफ़ विश्व की जातियाँ नवोत्थित भारत की ओर उन्मुख हो रही है—दूसरी ओर भारत की एक आँख आँसू से तर और दूसरी नशे से लाल हो रही है। यह सब क्या है?

उन्होंने करवट बदली। और कहा : "प्रमिला रानी, क्या तुम सो रही हो?"

"नहीं।"

"नींद नहीं आ रही।"

"न।"

"क्यों?"

"तुम भी तो नहीं सो रहे ?"

"मुझे भी नींद नही आ रही ।"

"कैसे आ सकती है । कितनी बातें देखीं आज हमने ?"

"किन्तु आज तो यह पहला ही दिन था ।"

"पर रोज जो यह सब देखते है उन पर भी कुछ इनका असर होता है ?"

"शायद नही होता..."

"क्यों ?"

"सह जाता है मन सब परिस्थितियों को । तुम तो अब तक अवरोध में, दुनिया से पृथक् रही । लाखों स्त्रियाँ जो रह रही है सो वह तुम्हें बुरा थोड़े ही लगता है ? ऐसे ही सब सह जाते हैं । परन्तु मैं एक बात सोच रहा हूँ ।"

"क्या ?"

"एक बार हमें योरोप—रूस और अमेरिका—का भ्रमण करना चाहिए ।"

"मैं तो चीन को एक बार देखना चाहती हूँ, पर एक बात देखी तुमने ?"

"क्या ?"

"जापान का दारिद्र्य, जिसका जैसे सारी प्रदर्शनी मे उपहास हो रहा था ? युद्ध के दौरान में तो एक बार जापान का आतंक विश्व पर छा गया था ?"

"हिरोशिमा और नागासाकी के विध्वस ने उसके जीवन को ही बखेर दिया ।"

"क्या अब वह इस कदर विपन्न है ? प्रदर्शनी में जापान का भवन तो अपने उद्योग-दारिद्र्य का जैसे विज्ञापन कर रहा है ।"

"उसकी क्या हालत है, यह मैं नही जानता । परन्तु एक बात मैं समझता हूँ—आज भी योरोप के साथ उसने अपने भाग्य को बाँध रखा है । एशिया से जैसे वह विमुख है ।"

"एक बार जापान को भी देखना होगा ।"

"जरूर देखेंगे । लेकिन अब तो सोना चाहिए ।"

"जरूर चाहिए । नींद तुम्हारी आँखों में आए तो ज़रा मेरे पास भेज देना ।"

सुरेश ने हँसकर कहा : "अच्छा", उन्होंने हाथ बढ़ाकर प्रमिला रानी का हाथ अपनी मुट्ठी में भर लिया, देर तक यह नवदम्पति जागते रहे, सोचते

रहे और अन्ततः नींद ने उन पर दया की। और उनकी बाहरी दुनिया के नए ज्ञान का पहला दिन समाप्त हुआ।

२६

रेणुका ने आज जरा ठाठ का शृंगार किया था। न्यूकट नाइलोन की साड़ी में छनकर उसका सुगठित सुडौल शरीर संगमरमर की प्रतिमा-सा जँच रहा था। एक बार उसने जलपान-गृह में जाकर एक सरसरी नज़र सब तैयारियों पर डाली और सन्तोष की साँस लेकर अपने बैरा राधू की ओर प्रशंसासूचक दृष्टि से देखकर कहा : "राधू, मेहमान साढे चार बजे आयेंगे। पर चाय हम पाँच बजे लेंगे।"

"जी ऐसा ही होगा। आप निश्चिन्त रहें।"

"खैर, अभी तो पौने चार ही हुआ है। इस बीच मैं एक जरूरी काम कर लूं। तू जरा ड्राइंगरूम पर एक नज़र डाल आ।"

"बहुत अच्छा सरकार।"

राधू चला गया। और रेणुका अपने ड्रेसिंगरूम में घुस गई। बहुत देर तक वह कदे आदम आईने के सामने खड़ी होकर अपना रूप निहारती रही। फिर एक वक्र मुस्कान उसके होठों पर फैल गई। उसकी आँखों में विजय का नशा था। उसने आलमारी खोली। एक पैग शैम्पियन गिलास में डालकर हलक से उतारी। और फिर तरह-तरह के सेंटों से अपने वस्त्रों को सराबोर करने लगी।

इसके बाद वह ड्राइंगरूम में आई। एक बार उसने चारों तरफ दृष्टि डाली। फूलदानों में ताजा फूलों के गुलदस्ते सजे थे। और टेबुल पर रंगीन टेबुल क्लाथ पड़े थे। उसका चित्त प्रसन्न हो गया। वह पियानो पर बैठकर अपनी पसन्द का एक गीत बजाने लगी।

इसी समय राधू ने आकर एक कार्ड उसके हाथों में थमा दिया। कार्ड पर सरसरी नज़र डालकर उसने माथे में बल डालकर कहा—"बुलाओ।"

प्राणनाथ ने भीतर आकर हंसते हुए दोनों हाथ जोड़कर जयहिन्द कहा ।

प्राणनाथ जन्मजात नेता है । पहले आप कांग्रेस के गर्मागर्म लीडर थे । अब सोशलिस्ट पार्टी के सेक्रेटरी है । आयु लगभग तीस बरस, क्लीन शेव, रेशमी खद्दर का कुर्ता, बढ़िया खद्दर का पायजामा, चहरे पर हर समय मृदु-मन्द मुस्कान ।

रेणुका ने नमस्कार का प्रत्युत्तर देते हुए कहा : "ओह आप है, आज किधर रास्ता भूल गए ?"

"कई दिन से आने की सोच रहा था—मगर फुर्सत ही नही मिलती थी । आज इधर ज़रा रायबहादुर साहेब से मिलने आया था—सोचा—आपके भी दर्शन करता चलूँ ।"

"बड़ी कृपा की ।"

प्राणनाथ ने, एकाएक जैसे कोई बात याद आ गई हो, कहा : "हाँ खूब याद आया । यह आपकी सदस्यता का फार्म है । पार्टी की प्रतिष्ठित सदस्या बनाते हुए मै आपको मुबारिकबाद देता हूँ ।"

"आपकी कृपा है ।"

"मुझे आशा है, आपके पार्टी मे आ जाने से हमें बल मिलेगा । तथा महिला संघ में सोशलिस्ट प्रभाव बढ़ेगा ।"

"मैं जी-जान से कोशिश करूँगी ।"

प्राणनाथ जी इस समय गहरी नज़रो से रेणुका की ओर देख रहे थे । रेणुका से भी यह नजर छिपी न रही । उसने एक अँगड़ाई ली और सोफे पर उठग गई । प्राणनाथ ने कहा : "हाँ, सोशलिस्ट पार्टी में आपके सम्मिलित होने की खबर आज के अखबारों में छप गई है, आपने देखा होगा ।"

"जी हाँ, देख चुकी हूँ" रेणुका ने मुस्कुराते हुए कहा—फिर हँसकर कहा : "बच्चा बाद में पैदा होता है, बधाइयाँ पहले ही शुरू हो जाती हैं ।"

"तो यह तो प्रगतिशील जमाना है । प्रत्येक अच्छा काम अगला क़दम रखता है । लेकिन सेठ जी तो शायद आपके इस काम को पसन्द न करें ।"

"सेठ जी तो सठिया गए हैं । उनकी पसन्द-नापसन्द की मुझे परवाह नहीं है । अभी तो वे कलकत्ते से लौटे नही हैं । कल आएँगे तो एक झड़प तो अवश्य ही होगी । परन्तु हमारा घर तो विचार-वैचित्र्य का अखाड़ा है । सेठ जी

लेबरल राजभक्त अंग्रेज़ों के रहे है। अब भी सरकारपरस्त हैं—खद्दर पहनते है। कांग्रेस का दम भरते है। मै सोशलिस्ट हो ही गई हूँ। हमारी साहेबज़ादी कम्युनिस्ट नज़र रखती है।"

"खूब-खूब ! वाकई एक मिसाल है। खैर तो अब इजाजत हो।"

"वाह, यह कैसे ? चाय पीकर जाइए।"

"इस तकल्लुफ की क्या जरूरत है ?"

"यह सोचना तो मेरा काम है। लेकिन आपको जल्दी तो नहीं है ? मेरे कुछ माननीय अतिथि आने वाले है।"

"नही कोई जल्दी नहीं है। लेकिन क्या कोई मन्त्री महोदय हैं ?"

"जी नही, एक राजकुमार है, और उनकी रानी साहिबा है।"

"शायद दिल्ली मे नए ही आए है ?"

"एकदम नये रंगरूट है।"

रेणुका ने हँसकर एक कटाक्ष किया। प्राणनाथ ने भी हँसकर कहा : "आपने तो मेरी दिलचस्पी बढ़ा दी।" वह जमकर एक आराम कुर्सी पर बैठ गए।

रेणुका ने सोफा से पीठ सटाकर एक अँगड़ाई ली। वह कुछ सोचने की मुद्रा में बैठ गई।

"आप किस सोच में पड़ गई ?"

" मैं सोच रही हूँ कि आप यदि कवि होते तो राजनीति से ज्यादा सफलता आपको मिलती।"

"सच ? लेकिन मैंने तो आज तक कभी कविता की ही नही।"

"लेकिन आपकी सूरत से तो सबको धोखा हो जाता है कि आप कवि हैं। बस, ज़रा बाल बढ़ा डालिए और कुरता ज़रा और नीचा पहनिए।"

प्राणनाथ हँस दिए। उन्होने कहा : "आप सच कहती है। बहुत लोग मुझे कवि समझते हैं। उस दिन हज़ार नाहीं करने पर भी लोगों ने मुझे कवि-सम्मेलन का सभापति बना ही दिया।"

"तो क्या बुरा किया। कविता लिखने ही से कोई कवि नहीं हो जाता। कवि के लिए हृदय की गहराई की आवश्यकता है। हृदय की गहराई ही वेदना बनकर कवि की आँखों में झलकने लगती है। और देखने वाला समझता है—

ये आँखें अब बरसी—अब बरसीं। आपकी आँखों से तो यह झलक साफ दिखाई देती है।"

"गजब करती है आप रेणुका देवी। आप तो कवियों की गुरु प्रतीत होती हैं। कविता की ऐसी मार्मिक व्याख्या तो शायद कवि भी नहीं कर सकते। अपने विषय में तो यह बात मैं पहली ही बार सुन रहा हूँ। और यह बात आप कह रही हैं तो समझिए सोलह आना सच है।"

इतना कहकर प्राणनाथ एकदम चुप हो गए।

रेणुका ने कहा : "क्यों ? अब आप क्या सोच रहे है ?"

प्राणनाथ ने स्वप्निल-सी अवस्था मे एक कवि के स्वर में कहा : "मै सोच रहा हूँ कि आपकी इन बड़ी-बड़ी काली-काली आँखों में हृदय के गूढ भावों को पढ़ लेने की कैसी असीम सामर्थ्य है !"

रेणुका ने ज़रा शर्म से आँखें नचाकर कहा : "आप बनाना भी खूब जानते हैं। प्राणनाथ जी, खुशामद करना कोई आपसे सीख ले।"

"बनाना ? यह आप क्या कह रही हैं रेणुका देवी ! मैं खुशामद कर सकता तो क्या आज सोशलिस्ट पार्टी का जनरल सेक्रेटरी होता ?"

इतने ही में मोटर का हार्न सुनाई दिया। और राधू ने आकर अतिथियों के आने की सूचना दी। रेणुका देवी ने बाहर आकर हँसते-हँसते प्रमिला रानी का और सुरेश का स्वागत किया। भीतर आकर उसने कहा : "इनसे मिलिए—प्राणनाथ मेहरोत्रा, तपे हुए कांग्रेस-कर्मी, और अब सोशलिस्ट पार्टी के जनरल सेक्रेटरी। ऐसे उत्साही कार्यकर्ता विरले ही होते है। लोकसेवा के सामने आप जिन्दगी को तुच्छ समझते है। सम्पन्न घरों के लोग दो-चार साल जेलों में—सो भी ए क्लास में रहकर अपने को महा त्यागी होने का अधिकारी समझते हैं। और इसी जेल के सर्टिफिकेट पर जनता से मन्त्री तक के पद माँगने में कुंठित नहीं होते। लेकिन ये इन बातों से घृणा करते है। हकीकत तो यह है, कि मैंने ऐसी सच्ची लगन का सामाजिक कार्यकर्ता नही देखा।"

अपनी प्रशंसा सुनकर प्राणनाथ कलाबत्तू हो गए। "अरे मैं किस लायक हूँ—कौम का एक अदना खिदमतगार हूँ।" कहकर तपाक से दोनों हाथ जोड़ दिए।

सुरेश ने उनका अभिवादन करते हुए हाथ मिलाया। प्रमिला रानी ने भी

नमस्कार किया। इसी क्षण राजा गुरुबख्शसिंह ने तूफान की तरह ड्राइंगरूम में आकर कहा : "अख्खाह, यहाँ तो पूरा मजमा जमा है। प्रमिला रानी, आप मुझसे पहले ही आ गई, और कुँवर सुरेशसिंह आप भी। भई, मैं तो सदा का लेट-लतीफ रहा हूँ। अच्छा, प्राणनाथ साहेब भी हैं। नमस्कार प्राणनाथ बाबू।"

प्राणनाथ ने प्रत्युत्तर में हाथ जोड़ दिए, मिजाज़ पूछा।

रेणुका देवी ने कहा : "तो चाय तैयार है, चला जाय। गर्मागर्म चाय की चुस्की और गर्मागर्म बातें। ठीक है न ?"

"एकदम ठीक है—रेणुका देवी, मैं आपका समर्थन करता हूँ।"

सब लोग चाय के कमरे में आने को उठ खड़े हुए। इसी समय एक सतरह-अठारह वर्ष की बाला सामने से आती नजर आई—उसके साथ एक दुबला-पतला युवक था, जिसकी आयु २० या २१ वर्ष की होगी। "अच्छा, साहेबज़ादी तशरीफ़ ला रही है !" रेणुका देवी ने ज़रा क्रोध भरी नजर से उधर देखा। वह ठिठक गई।

लड़की सुन्दरी थी। अवस्था का कोमलपन चहरे पर था। इसके अतिरिक्त एक तेज और ताजगी भी उसके मुख पर थी। वेशभूषा साधारण। सफेद सादी साड़ी। लापरवाही से बने हुए बाल। परन्तु बड़ी-बड़ी आँखों में एक उज्ज्वल प्रकाश। यौवन उसे छू रहा था और इसका यत्किंचित आभास उसे था। ध्यान से देखने पर बाल सुलभ चपलता भी चहरे पर स्पष्ट दीख पड़ती थी। परन्तु अध्ययन की गम्भीरता उसके मुँह पर थी। सब मिलाकर एक आकर्षक लड़की उसे कहा जा सकता था। नाम था पद्मा। यह रेणुका देवी के पति की पूर्वपत्नी की कन्या थी। और अब रेणुका देवी—आयु से उससे कुछ ही अधिक होने पर भी उसकी माँ और अभिभाविका बनी हुई थी। परन्तु ज्ञात होता था कि पद्मा को माता की ज्यादा परवाह न थी।

साथ का युवक भी दुबला-पतला था। वह एक साधारण कुरता और पायजामा पहने था। यों वह एक साधारण किशोर था, परन्तु उसकी आँखों में एक ख़ास प्रकार की दृढ़ता थी, जो बरबस उसकी ओर किसी को भी आकर्षित कर लेती थी।

पद्मा ने रेणुका देवी के निकट आकर कहा : "यह कामरेड कैलाश हैं माँ, मैं तो कई बार इनका ज़िक्र तुमसे कर चुकी हूँ।"

कैलाश ने रेणुका देवी को प्रणाम किया। फिर पद्मा की ओर मुड़कर उसने कहा : "अच्छा अब जाता हूँ।"

न पद्मा ने न उस युवक ने अतिथियों की उपस्थिति का कुछ विचार किया। रेणुका देवी इससे और नाराज़ हो उठी। उसने ज़रा कड़ी आवाज़ में कहा—"यह कुँवर सुरेशसिंह और यह उनकी पत्नी प्रमिला रानी हैं। वह राजा गुरुबख्शसिंह हैं, इन्हें प्रणाम करो।"

पद्मा ने साधारणतया प्रणाम किया और फिर अपने साथी तरुण की ओर मुँह फेरकर कहा : "ज़रा बैठिएगा नहीं ? चाय पीकर जाते तो ठीक था।"

"नहीं, बैठ नहीं सकता। सात बजे मीटिंग में पहुँचना है।"

"मैं तो न आ सकूँगी। बुरी तरह थक गई हूँ। हड्डियाँ दर्द कर रही हैं। दो-तीन घंटे पार्टी का अखबार बेचा। इसी से हड्डियाँ दुखने लगीं।"

"क्यों न दुखेंगी हड्डियाँ तुम्हारी। उच्च वर्ग की लड़की हो। ग़रीब घर की होती तो बचपन से चौका-चूल्हा करतीं। मेहनत की आदत पड़ जाती।"

पद्मा ने जरा तेज होकर कहा : "यह आप मुझे दूसरी बार अभिजात कुल की कहकर मेरा अपमान कर रहे हैं कामरेड !"

"अपमान नहीं। सच बात कही मैंने।"

"तो मैं यदि उच्च वर्ग में पैदा हुई तो मैं क्या करूँ ? इसके लिए तो मैं जिम्मेदार नहीं हूँ ?"

"लेकिन जरा-सी मेहनत करने पर ही जो तुम ऐसी शिकायतें शुरू कर देती हो—इसकी जिम्मेदार तो अवश्य हो। तुम हमारे कम्युनिस्ट दल की सदस्या हो। पर कम्युनिस्ट होने के ये तरीक़े नहीं है। तुम्हें मेहनतकश बनना होगा।"

"ख़ैर, ग़लती हुई।"

"कोई बात नही। अच्छा मै चला।" उसने घूंसा तानकर कम्युनिस्ट तरीके से पद्मा और सब लोगों का अभिवादन किया और चल दिया। सबने उसकी बातें सुनी। राजा साहेब ने कहा : "शानदार नौजवान है।" उसके जाते ही पद्मा भी चुपके से जाने लगी परन्तु रेणुका देवी ने उसे रोककर कहा : "पद्मा, जरा ठहरो। मैं कहती हूँ यह क्या बदतमीज़ी है। मुझे इस लड़के के साथ तुम्हारा रहना क़तई पसन्द नहीं है।"

"क्यों ममी, वह कम्युनिस्ट हैं, और आप सोशलिस्ट हो गई हैं, इसलिए ?"

"मैं चाहती हूँ कि तुम उसके साथ रहना छोड़ दो। मैं राधू से कह दूंगी कि वह उसे फाटक के भीतर न घुसने दे।"

"लेकिन राधू मेरी मरजी के ख़िलाफ ऐसा नही कर सकता।"

"तो क्या तुम मेरी मरजी के खिलाफ काम करने की जुर्रत करती हो? तुम्हें उससे मिलना-जुलना बन्द करना होगा।"

"ऐसा हरगिज़ नही हो सकता ममी।"

"तुम गुस्ताख़ हो गई हो।"

"तुम मजबूर करती हो ममी।"

"क्या कहा? तुम्हारी ऐसी हिम्मत? बेशर्म लड़की—खैर मैं देखूँगी।"

रेणुका देवी क्रोध में भरी कुछ देर लडकी को देखती रही। पद्मा उपेक्षा से कन्धे हिलाती हुई चली गई।

राजा गुरुबख्शसिह ने सिगार का धुँआ फेंकते हुए कहा:

"ब्रिलियेन्ट।"

"क्या?" रेणुका ने क्रुद्ध स्वर में कहा:

"अब मुझ पर मत बिगड़िए श्रीमती रेणुका देवी। लड़की आप ही के समान तेजस्विनी है।"

"ख़ाक तेजस्विनी है। क्या आप नही जानते कि इस उम्र की भूलों पर उम्र भर पछताना पड़ता है? बिलफर्ज मान लिया जाय कि वह एक सुशील और होनहार तरुण है। पर है तो महज एक टाइपिस्ट का लड़का। कम्युनिस्ट होने के कारण नौकरी से निकाल दिया गया है। वह एक सड़े-से मकान में पुरानी दिल्ली की एक गन्दी गली में रहता है। भला मेरी लड़की से उसकी क्या बराबरी। नहीं, मै यह बर्दाश्त नही कर सकूँगी। आप क्या कहते है कुँवर सुरेशसिह?"

"जी, मैंने तो इस मसले पर अभी ग़ौर नहीं किया। शायद आप ठीक कहती हैं, या शायद पद्मा ही ठीक रास्ते पर हो।"

"आप बड़े नटखट है कुँवर सुरेश सिह, दोनों घोड़ों पर सवार होना चाहते हैं।"

"काश कि मैं भी ऐसा कर सकता! मगर इस वक्त तो मेरे पेट में चूहे कूद रहे हैं।"

"तो चलिए, चाय ठंडी हो रही है। चलिए प्रमिला देवी, आप भी तो देखिए—भले घर की लड़कियों को भला इस क़दर आवारगी शोभा देती है ?"

"लेकिन पद्मा है बड़ी प्यारी लड़की। क्या उसे चाय पर नहीं बुलाइएगा ?"

"वह क्या मेरे कहने से आएगी ?"

"आप हुक्म दीजिए तो मैं बुला लाती हूँ। आप बैठिए।" इतना कहकर प्रमिला देवी उत्साह से लपकती हुई उसी ओर चली जिधर पद्मा गई थी। और थोड़ी ही देर में हँसती हुई उसे साथ लेकर उसके गले में बाँहें डालकर चली आई।

राजा साहेब ने कहा : "कमाल है कमाल, इसे जादू भी कहा जा सकता है। रानी साहिबा, किस तरह आप साहेबजादी साहिबा को मना लाईं, गोया आप उनकी पुरानी सहेली हों।"

"पुरानी न सही। लेकिन आज से हम लोग सहेली की भाँति ही रहेंगे।" प्रमिला ने मुस्कराकर कहा।

"आपकी नज़र की दाद देता हूँ रानी साहिबा, आपने हीरा परख लिया।"

"अब आप ज्यादा तारीफ़ करके लड़की को मिट्टी मत कीजिए, चाय पीजिए।"

"मैं चाय बनाती हूँ ममी।" कहकर पद्मा ने चाय की प्यालियाँ तैयार करके सब अतिथियों के आगे रखना आरम्भ कर दिया।

"साहेबज़ादी किस दर्जे में तालीम पा रही है ?" राजा साहेब ने पूछा।

"एम. ए. फाइनल में हूँ।"

"लो हम कहे देते हैं। फर्स्ट डिवीजन में ए-वन पास होओगी। पास होने पर मुझे खत जरूर लिखना। लिखोगी न ?"

"शुक्रिया, जरूर लिखूंगी, लेकिन आपको मिठाई भेजनी होगी।"

"जरूर, जरूर।" राजा साहेब ठहाका मारकर हँस दिए। चाय के दौर चलते रहे। सुरेश बहुत कम बोल रहे थे। और प्रमिला रानी धीरे-धीरे पद्मा से बात कर रही थीं। रेणुका देवी इस समय खुश होने का अभिनय कर रही थी।

चाय खत्म होने पर जब सब लोग उठे तो प्रमिला रानी पद्मा को एक कोने पर ले गईं। उन्होंने कहा : "एक बात मेरी मानोगी पद्मा रानी ?"

"ज़रूर, पर मेरा नाम पद्मा है। मैं रानी नही।"

"ख़ैर, तो कल शाम को हमारे साथ चाय पीने आना होगा। उस तरुण को भी लाना, मेरी तरफ से अनुरोध कर सकोगी? क्या नाम है उस तरुण का?"

"कह दूंगी। उनका नाम कैलाशचन्द्र है। मगर चाय नहीं—खाना।"

"बस, चाय के बाद डिनर। दोनों।"

"खैर, मैं आपको फोन पर कह दूंगी। ममी को आप नही बुला रही?"

"तुम्हारे साथ नहीं। फिर कभी। कल तो मैं तुमसे डटकर बात करूँगी।"

"अच्छा आऊँगी?"

"क्या ममी से आज्ञा लेनी होगी? मै कह दूँ?"

"नहीं। मैं कह दूँगी। नमस्ते।"

पद्मा चली गई। सुरेश और प्रमिला जब टैक्सी में बैठे तो सुरेश ने कहा: "चलो एक बढ़िया अंग्रेजी पिक्चर है, देख लें?"

"चलो।"

२७

पुरुषोत्तम सेठ की आयु बासठ हो चुकी थी। मूँछ और सिर के बाल सब सफेद हो गए थे। परन्तु शरीर अभी कसा हुआ था। आँखों को भी अभी चश्मे की आवश्यकता नहीं पड़ी थी। दाँत अलबत्ता पूरी बत्तीसी नकली थी। लम्बा सफेद कोट, बढ़िया चुनी हुई महीन धोती, पैर में पम्पशू, और सिर पर काली गोल टोपी, हाथ में चाँदी के मूठ की मलक्का बेंत। बस यही सेठ जी की वेश-भूषा थी। नई दिल्ली में उनकी आलीशान कोठी थी। परन्तु उनका कारोबार बम्बई, कलकत्ता, पटना, कराची और दूसरे भारतीय शहरों में भी फैला था। पाकिस्तान बनने पर कराची की कोठी उनकी नष्ट हो गई। परन्तु इससे उनकी कोई विशेष हानि नही हुई। उन्हें लाखों रुपयों की आय थी। तीन-चार मिलें थीं। तीन-चार लिमिटेड कम्पनियों के वे मैनेजिंग

डाइरेक्टर थे। थोड़ी-सी काम-चलाऊ अंग्रेजी भी जानते थे। भद्र पुरुष थे। इस उम्र में उन्होंने रेणुका देवी से तीसरी शादी की थी। पद्मा उनकी द्वितीय पत्नी की पुत्री थी। रेणुका देवी ग्रेजुएट थी। उसके पिता एक उच्च पदस्थ सरकारी अफसर थे। परन्तु किसी गड़बड़ी के कारण वे मुअत्तल हो गए थे। निरुपाय लाखों का घर देख उन्होंने अधेड़ वय के सेठ पुरुषोत्तम से रेणुका का विवाह कर दिया था। परन्तु रेणुका देवी स्वतन्त्र प्रकृति की स्त्री थी। महत्वाकांक्षा की भी उसमें कमी न थी। अपने अधेड़ पति के प्रति उसकी वैसी आस्था भी न थी। अपनी मित्र-मंडली के साथ वह स्वतन्त्रतापूर्वक मिलती-जुलती थी। ऐसी बात न थी कि सेठ जी को उसकी यह बात सर्वथा ही पसन्द हो। परन्तु युगधर्म के वह भी कायल थे। स्त्री-शिक्षा और स्त्री-स्वातन्त्र्य के वह समर्थक थे। दिल से न सही—पर मुँह से ऐसा ही कहते थे। अपने कारोबार और आयु के भार से ग्रस्त और व्यस्त रहकर वह रेणुका देवी के सब आमोद-प्रमोदों में सम्मिलित भी न हो सकते थे। अतः एक प्रकार से रेणुका देवी स्वतन्त्र रूप से आमोद-प्रमोद करती थी, जिसकी वह बचपन से अपने पितृगृह में ही अभ्यस्त थी।

पद्मा बिना माता की कन्या थी। सेठ जी की वह इकलौती बेटी थी। अतः वह बचपन ही से लाड़-प्यार में पलने के कारण हठी और मानी हो गई थी। उच्च शिक्षा के साथ उसे नए संसार का भी अनुभव हुआ। और उसने अपने कालेज के साथी कैलाश के प्रभाव में आकर कम्युनिस्ट विचारधारा को अपना लिया था। कैलाश जन्मजात एक ग़रीब श्रमिक टाइपिस्ट का बेटा था। परन्तु पद्मा पर उसका प्रभाव बहुत था। और यह प्रभाव उसके अज्ञात ही में प्रणय रूप धारण करता जाता था।

रेणुका देवी यद्यपि स्वयं स्वतन्त्र विचारों की और एक दर्जे तक स्वैरिणी स्त्री थी; और पद्मा को वह अपने शासन में रखना चाहती थी। परन्तु पद्मा विमाता पर विशेष श्रद्धा नहीं रखती थी।

उसी रात सेठ जी वायुयान द्वारा कलकत्ते से वापस लौट आए थे। और सुबह चाय पीने के समय पद्मा ने उनके सामने अपना मुक़दमा दर्ज कर दिया था।

सेठ पुरुषोत्तम जब कपड़े पहनकर अपनी बैठक में आए तब पद्मा ने उनके

निकट आकर कहा : "चाय ले आऊँ बाबूजी ?"

"ले आओ बेटी।"

पद्मा ने चाय की ट्रे लाकर पिता के पास टेबुल पर रख दी। चाय का प्याला बनाकर उनके सामने सरका दिया। सेठ पुरुषोत्तम अखबार पर नज़र जमाए ही चाय की चुस्की लेने लगे।

पद्मा ने कहा : "बाबूजी, आपको फैसला करना होगा।"

"किस बात का बेटी ?"

"ममी मेरी हर बात में दखल देती हैं। मैं यह बर्दाश्त नही कर सकती !"

सेठ जी ने हँसते हुए पुत्री के कन्धे पर हाथ धरकर कहा : "क्या ममी से फिर झगड़ा हो गया ?"

पद्मा की रेणुका देवी से बहुधा झड़प हो जाया करती थी। उसका फैसला सेठ पुरुषोत्तम हँसकर ही करते थे। इसी से उन्होंने हँसकर प्रश्न किया।

"कैलाश की बात है।" पद्मा ने जरा क्रोध से कहा।

"कौन कैलाश ?"

"कामरेड कैलाश, जो बी० ए० मे मेरे साथ पढता था।"

"हाँ-हाँ, वह तो बहुत अच्छा लड़का है। उसकी क्या बात है ?"

"ममी कहती हैं, मै उससे न बोलूँ। न उससे मिलूँ।"

"क्यों ?"

"वह कम्युनिस्टों को पसन्द नही करती। वह सोशलिस्ट है।"

सेठ पुरुषोत्तम हो-हो करके हँस दिए। उन्होने पुत्री का कन्धा थपथपाते हुए एक दार्शनिक की भाँति कहा : "यह नई जिन्दगी और पुरानी जिन्दगी के संघर्ष की बात है बेटी ! नई जिन्दगी दर्द के साथ जन्म लेती है। जब तक अंग्रेज भारत में रहे है, मैं अंग्रेजपरस्त रहा। उनके सुर में सुर मिलाकर बोला, उन्होंने मुझे रायबहादुर बना दिया। इसके बाद जब कांग्रेसी सरकार हुई, मैं भी खद्दरपोश बन गया, पर यह भेद तो ऊपर ही का था; सरकार-परस्त तब भी मैं था और अब भी सरकारपरस्त हूँ। तुम्हारी ममी मुझसे नई है। वह सोशलिस्ट बन गई। और तू उससे भी नई सो, कम्युनिस्ट बन गई। नई जिन्दगी की नई रोशनी से पुराने लोग डरते ही हैं, तू चिन्ता न कर।" सेठ जी ने पुत्री का सिर थपथपाया।

पद्मा ने देखा, रेणुका देवी आ रही है। वह तुरन्त वहाँ से चली गई। रेणुका ने व्यंग्यपूर्ण भाषा में कहा : "क्या-क्या मुकदमात दर्ज हुए मेरे खिलाफ ?"

"अरे कुछ नही ! लड़की है, अभी वह समझती ही क्या है ?"

"कल मैंने डाँटा था इसे, वह लड़का बहुत आता है, क्या नाम है उसका ?"

"कैलाश, मैं जानता हूँ। छोकरा भलामानुस है।"

"खाक भलामानुस है। वह पक्का कम्युनिस्ट है। पद्मा भी अब कम्युनिस्ट हो गई है। अखबार बेचती है, पिकेटिंग करती है।"

"नया खून है, नया काम उसे भाता है। जब बुराई उसे दीखेगी छोड देगी। दिमाग़ उसका तेज है, भोंदू नही है।"

"लेकिन तब तक वह बर्बाद हो जायगी ?"

"मैं समझा दूँगा। कहो तुम्हारी सोशलिस्ट पार्टी का क्या हाल है ? इस बार एलेक्शन में वह मेरी भी कुछ मदद करेगी ?"

"तुम पार्टी की मदद करोगे तो करेगी।"

"मैं क्या मदद करूँ ?"

"उसके उम्मीदवार का साथ दो।"

"तो तुम खड़ी हो जाओ, तब देखूँगा, क्या कर सकता हूँ।"

"फिर तो मेरा तुमसे ही मुकाबला रहेगा।"

"मज़ा रहेगा रेणु, मैने एक तरकीब सोची है—इन कांग्रेसियों को उल्लू बनाने की। इनकी मदद से जितने वोट मिलेगे वसूल कर लिए जाएँगे, फिर तुम्हारे हक में मैं बैठ जाऊँगा, वोट अपने तुम्हे दे दूँगा।"

"बदनामी कितनी होगी ?"

"चाँदी के जूते से वह दूर कर दी जायगी। कांग्रेस के तो अब बदनामी ही के दिन हैं। पुरानी शान-शौकत तो अब उसकी खत्म हो गई। मैं तो मस्लहतन उसका साथ दे रहा हूँ, ऐसा न करूँ तो मेरा सब कारोबार ही ठप हो जाय।"

"खैर, वह चेक दो। आज मुझे रुपए की जरूरत है।"

"कहाँ है चेकबुक, लाओ।"

रेणुका ने चेकबुक दराज से निकालकर सेठ जी के हाथ में रख दी। सेठ जी ने पेन हाथ में लेकर पूछा :

"कितना ?"

"दो हजार।"

सेठ जी ने चेक पर हस्ताक्षर करके रेणुका के हवाले किया। रेणुका ने चेक लेते हुए कहा :

"आज शाम को तो कही नही जा रहे ?"

"एक इन्टरव्यू है। क्या कोई ज़रूरी काम है ?"

"जाने दो, जब फुर्सत ही नहीं है तो मजबूरी है।"

रेणुका जाने लगी तो सेठ जी ने उसका हाथ पकड़कर अपनी ओर खींच लिया।

रेणुका ने तिनककर कहा . "यह क्या करते हो, छोडो अभी मुझे जरा एक जगह जाना है। बडी मोटर मैं ले जा रही हूँ।"

रेणुका देवी तेजी मे वहाँ से चल दी।

२८

पुरुषोत्तम सेठ को एक स्टेनो-टाइपिस्ट लड़की की आवश्यकता थी। उसके लिए बहुत-सी अर्जियाँ आई थी। उनमें से कुछ को छोड़कर बाकी को बुलाया गया था। आज उनका इन्टरव्यू था। आठ-दस लड़कियाँ इन्टरव्यू के लिए आई थीं। एक उनमें सरला थी। जब वह भीतर आई तो सेठ जी ने उसे सिर से पैर तक ध्यान से देखा, तब प्रश्न किया : "कहाँ तक शिक्षा पाई है तुमने ?"

"मैट्रिक तक।"

"क्या मतलब ? मैट्रिक पास नही किया ?"

"जी नहीं। परीक्षा न दे सकी, और हमें अपना घरबार छोड़कर भागना पड़ा।"

"अब तुम्हारा कोई अभिभावक भी है ?"

"आपका अभिप्राय मैं समझी नहीं।"

"मेरा मतलब यह कि तुम्हें यदि हम यहाँ नौकर रखें तो किसी को कोई आपत्ति तो न होगी ?"

"आपत्ति ! महोदय, मैं शरणार्थी लड़की हूँ। कौन बदनसीब शरणार्थी अभिभावक भला लड़की के काम पर आपत्ति करेगा ?"

सेठ जी ने कुर्सी की पीठ पर सहारा लेकर पैर फैला दिए। फिर सरला की ओर उन्होंने ध्यान से देखा और एक नजर उसकी अर्जी पर डालते हुए कहा : "हमें स्टेनो-टाइपिस्ट की ज़रूरत है। तुम क्या शार्टहैन्ड जानती हो ?"

"जानती तो नही, पर सीख लूँगी ?"

सेठ जी चुपचाप सोचने लगे।

सरला ने कहा : "मैं बहुत जल्दी सीख लूँगी। सोचिए तो, हमारा सब कुछ चला गया। आप हमें खास रियायत नहीं देगे तो हमारा क्या होगा ? यह भी तो आप विचारिए। आप मुझे सिर्फ एक मौका दीजिए।"

"खैर, मेरे पास यद्यपि पाँच अर्जियाँ बी०ए० पास लड़कियों की है। पर मैं तुम्हें ही वह मौका दूँगा। परन्तु याद रखो—तुम्हे सिर्फ तीन महीने का अस्थायी स्थान मिला है यह। इसी बीच तुम्हें अपने काम से हमे सन्तुष्ट करना होगा।"

सरला की आँखों मे आँसू छलछला आए। उसने कहा : "मैं अपनी जान लड़ा दूँगी।"

सेठ जी ने घण्टी वजाई। और चपरासी के आने पर कहा : "इन्हें रमेश बाबू के पास ले जाओ।"

रमेश बाबू सेठ जी की मिल के प्रधान मैनेजर थे। विलायत पास थे। सुन्दर तरुण थे। सरला उनके सामने जाकर खड़ी हो गई। चपरासी उसे वहाँ छोड़ और सेठ जी की स्लिप उनके सामने टेबुल पर रखकर चला गया। रमेश किसी जरूरी फाइल की जाँच कर रहे थे। वह देर तक उस फाइल को देखते रहे। बड़ी देर बाद उन्होंने उस पुर्जे पर नज़र डाली। और फिर सरला की तरफ देखकर पूछा—"तुम !"

एकाएक वह चौंक और उठे : "अरे, तुम हो सरला ?"

सरला की आँखों से झरझर आँसू झरने लगे। उसने कहा : "जी, मैं ही हूँ। लेकिन बड़ी बात कि आपने पहचान लिया।"

"और तुमने मुझे नहीं पहचाना था ?"

"जी पहचान लिया था। लेकिन अब तो मैं अपकी सेवा में नौकरी करने आई हूँ।"

रमेश की नज़र फिर उस पुर्जे पर गई। उन्होंने सरला को एक बार आँख उठाकर देखना चाहा, पर उनकी आँख काग़ज़ पर जैसे चिपक गई। सरला ने कहा : "सेठ जी ने कृपा करके मुझे सिर्फ तीन महीने के लिए अस्थायी तौर पर रखने को कहा है।"

रमेश ने नीची आँख करके कहा : "बाबू जी अच्छे है न ?"

"बाबू जी नही रहे।"

"और रश्मि ?"

"वह तो लाहौर ही से लापता है, जब हम भागे तो वह अस्पताल मे ड्यूटी पर गए थे। बाद में बहुत तलाश की गई पर कुछ भी पता न चला। कोई कहता है कत्ल हो गए, कोई कहता है मुसलमान हो गए।"

"अरे ? और तुम अब अकेली हो ?"

"जी नहीं, माँ है, लेकिन बहुत बीमार है।"

"कहाँ रह रही हो ?"

"किंग्सवे शरणार्थी कैम्प में।"

कुछ देर तक रमेश चुपचाप सोचते रहे। सरला कहती गई : "जबतक बाबू जी के हाथ-पैर चलते रहे, हमारा काम चलता रहा। परन्तु जवान बेटे का दाग़, इतनी दौडधूप और चिन्ताओं ने उन्हें खा डाला। बुढ़ापे का शरीर, कबतक चलता। मरने से दो महीने पहले एक दूकान में बहीखाता लिखने का काम मिल गया था। पर उससे गृहस्थी का काम तो नहीं चलता था, फिर भी कुछ सहारा तो था ही। परन्तु बूढ़े आदमी, हाथ काँपता था, हिसाब का जोड़ लगाने में गलती हो जाती थी, डांट-फटकार सुननी पड़ती थी। और तनख्वाह मिलती थी पचास रुपया, इसमें भी बीमारी की वजह से नागा हो जाता था। तनख्वाह कट जाती थी। इधर मैं दिन-दिन बढ़ती जा रही थी—उनकी आँखों के सामने।" इतना कहते-कहते सरला की आँखें डबडबा आई पर ओठों पर मुस्कान छा गई।

रमेश को जैसे कुर्सी पर बैठना दूभर हो गया। उन्हें याद आई वे सब

बातें, जिन्हें बीते अभी पूरे पाँच बरस भी नही हुए थे। इसी सरला के साथ उनका ब्याह पक्का हो गया था। यदि पंजाब का विभाजन न हुआ होता और उन्हें घर-बार, ज़मीन-जायदाद छोड़कर न भागना पड़ा होता तो तीन ही महीने बाद उनका ब्याह हो जाता।

सरला कहती रही : "मैं तो बढ़ती जा रही थी, पर पिता जी की तनख्वाह नही बढ़ी। प्ता जी कभी-कभी घूरकर मेरी ओर देखते थे। उन्हें रात-रात भर नींद नहीं आती थी। अन्त मे उन्होने खाट पकड़ ली। और चल बसे। उनके मरने पर माँ बहुत रोई। पर मै नही रोई।"

रमेश ने आँख उठाकर सरला के मुँह की ओर देखा। उनकी आँखें पूछ रही थीं—क्यों ? तुम भला क्यों नहीं रोई।

सरला ने वह मूक प्रश्न समझ लिया। उसने कहा : "मैं पिता जी के मरने पर नहीं रोई। बल्कि मुझे राहत मिली। क्योंकि उनके सब दुःख-दर्द, सब चिन्ताएँ मिट चुकी थी। अब तो मै थी और माँ थी। हमारे पास तो हमारे शरीर को छोड़कर कुछ बचा न था। और अब मुझे पेट के लिए नौकरी के लिए घर से बाहर निकलना पडा। खुश हूँ कि तुम्हारा आसरा मिल गया। अब तुम मुझे सम्भाले रहना रमेश भैया ! किसी दिन भाभी को देखने आऊँ तो तुम्हें बुरा तो न लगेगा ?" 'भैया' कहते उसकी ज़बान लड़खड़ाई और टपटप कर के आँखों से आँसू टपकने लगे। उसने उन्हें पोंछकर कहा : "कहाँ बैठकर मुझे काम करना पड़ेगा ?"

रमेश का शरीर जैसे पत्थर का हो गया। बडी कठिनाई से वह अपनी कुर्सी से उठा और सरला को उसका स्थान और काम समझा दिया।

सरला अपनी नौकरी का पहला क्षण सार्थक करने मशीन पर झुक गई।

२९

पद्मा जब अकेली ही इम्पीरियल होटल में पहुँची तो प्रमिला रानी ने कहा : "यह क्या, कैलाश बाबू कहाँ हैं ?"

"वह बहुत काम में फँसे है, आज सात दिन से हमारे मिल के मजदूरों की हड़ताल है। मिल के चारों ओर मजदूरों का घेरा पड़ा था। फाटकों पर ताले पड़े थे। मजदूरों ने प्रण किया है कि हम अपने अधिकार ले के ही रहेंगे। अधिक दिनों तक हम गुलामी का नाच नही नाच सकते। अभी सुना कि मैनेजर ने पुलिस की सहायता ली है, और पुलिस ने गोली चला दी है। दो आदमी मर गए हैं, कुछ सख्त घायल हुए है। वह उधर ही दौड़े गए है।"

"बड़े अफसोस की बात है। लेकिन पद्मा जी, तुम तो इस तरह अपने बाबू जी से ही मोरचा ले रही हो।"

"तो मैं क्या करूँ ! अपने-अपने सिद्धान्त है। पिताजी विचारों के उदार हैं। जब उन्हें मजदूरों ने हड़ताल का नोटिस दिया तो उन्होंने हड़तालियों के प्रतिनिधि से मुलाकात की। वह कुछ सुविधाएँ देना चाहते थे—परन्तु हमारा मैनेजर एक रिटायर्ड आई० सी० एस० है। उसके मिज़ाज में डिप्टीकलक्टरी की बू है। उसने पिताजी की भी बात नहीं मानी। इस्तीफा देने को आमादा हो गया। लाचार पिताजी ने अपना हाथ खींच लिया। मजदूरों ने भी हड़ताल का एलान कर दिया।"

"लेकिन पद्मा देवी, कन्ट्रोल और राशनिंग की कठिनाई होते हुए भी राजधानी की मध्यम वर्गीय जनता खुशहाल नज़र आती है। चुनावों की सरगर्मियाँ बढ़ रही हैं। सब जगह कांग्रेस को सफलता की आशा है। इसके अतिरिक्त सब प्रान्तों में लोकप्रिय शासन, जनता का शासन स्थापित हो चुका है।"

"राजधानी में तो अभी आप नए ही आए है। आपने अभी नगर और नए राज्य का नागरिक जीवन देखा कहाँ है। बड़े-बड़े अंग्रेज़ अफसरों के बंगलों में खद्दरधारी कांग्रेसी रहते हैं, पर ग़रीबों की पहुँच न सफेद चमड़ी वाले अंग्रेजों तक थी, न सफेद खद्दर पहनने वाले इन कांग्रेसियों तक। इन कांग्रेसी

मिनिस्टरों के दरवाजों पर भी लाल चोगा और सफेद अम्मामा वाले चपरासियों की वैसी ही फौज मौजूद रहती है जैसी विलायती साहबों के ज़माने में रहती थी। साहेब की इन्तजारी मे तब जितना बैठना पड़ता था—उससे अधिक अब बैठना पड़ता है। तब साहेब अपना गुस्ल करता था। अब साहेब मालिश भी करता है—गुस्ल भी करता है। हाँ, एक बात है, तब का साहेब गुस्ल करके क्रीजी पतलून और ट्वील की कमीज़ पहनता था, आज का साहेब अस्सी नम्बर की बेदाग खद्दर का धानी और कलफदार कुरता पहनता है।"

रमेश हँस दिए। प्रमिला रानी भी हँस दीं। उन्होने घडी की ओर देखकर कहा : "चा मँगाऊँ ?"

"और ज़रा ठहर जाइए, शायद कैलाश बाबू आ जाएँ। उन्होंने वादा किया था न।"

"अच्छी बात है। हम लोग तो आज फुर्सत में ही है।"

इसी समय व्यस्तभाव से कैलाश ने आकर कहा : "क्षमा कीजिए, मेरे कारण आपको प्रतीक्षा करनी पड़ी। पर मैं अधिक नही ठहर सकता, पद्मा देवी ने वादा करा लिया था—इसीसे चला आया हूँ।"

"वहाँ सब ख़ैरियत तो है ?"

"जैसा होता रहता है वैसा ही है। लाशे पुलिस ले गई है, और घायल अस्पताल पहुँचा दिए गए हैं। मिलिटरी आ गई है। भीड तितर-बितर हो गई है। मेरा ख़याल है अब आज रात तो कोई दुर्घटना नही होगी। कल मीटिंग होगी।"

" तो चा मँगाऊँ ?"

"खुशी से !" कैलाश एक कुर्सी पर सुरेशसिंह के पास ही बैठ गया। वह सीधा भीड़-भाड़ से आ रहा था, इससे उसके कपड़े और जूते गन्दे हो रहे थे। पर इसकी उसे अधिक परवाह न थी।

प्रमिला रानी ने कहा : "कैलाश बाबू, आपके कम्युनिस्ट जीवन में कहीं पर गिरस्ती की भी गुंजाइश है, या केवल हड़ताल, मिटिंग और गोली ही तक आपकी दुनिया सीमित है ?"

"शायद नही है। इस सम्बन्ध में भी हमारा दृष्टिकोण निराला ही है। आपको शायद अटपटा-सा लगे प्रमिला देवी।"

"फिर भी सुनना चाहती हूँ ।"

"तो सुनिए, यह स्त्री नाम का प्राणी तो सबसे ज्यादा पीड़ित वर्ग का मज़ूर है ।"

"मज़ूर ?"

"जी हाँ, लेकिन इनकी न तो कोई यूनियन है और न कोई संगठन, अठारह घंटे से ज्यादा मजदूरी का दिन । हफ्ता तो क्या साल भर में भी एक दिन की छुट्टी नहीं । बस काम किए जाओ और मुस्कुराए जाओ, मालिक यही चाहते हैं । और ये सब हज़ार-दो हजार नही, लाखों-करोड़ों है । जवानी में क़दम रखते ही जो इन पर जफाकशी का बोझा लादा गया है, उससे उनका छुटकारा तो बस मौत ही दिला सकती है ।"

"क्या यहाँ तक ?"

"इससे भी ज्यादा, इस वर्ग की न तो कोई माँग है न हड़ताल की धमकी और जिनके सुख और आराम के लिए दिनभर मेहनत की जाती है, सपनों में आँखें मूँदकर और रात में जागकर भी उन्हीं के सुख और आराम के लिए इनके मुँह से दुआ निकलती है ।"

"यह आप किनकी बात कह रहे हैं ?"

"खामोश मजदूरों की ।"

"वे कौन हैं ?" कुँवर सुरेशसिंह ने आश्चर्य से पूछा ।

"आपकी गृहणियाँ, धर्मपत्नियाँ । जब आप सुबह बिस्तर से उठेंगे, उन्हें काम में लगी पाएँगे । जब घर लौटेंगे और थकावट का बहाना करके पाँव फैलाकर लेट जाएँगे तो वे अपने दिन भर की थकावट से चूर शरीर की परवा न कर मुस्कुराहट में आपका स्वागत करती हैं । और जब आप गर्मागर्म खाना खाकर ठण्डी हवा में खर्राटे भर रहे होंगे, तो उधर रसोईघर से चूड़ियों की खनखनाहट बड़ी देर तक आती रहती है ।"

"बड़ी ही दर्दनाक तस्वीर खींच रहे हैं आप ।"

"इतने पर भी आपके मुँह से, वे जो कुछ करती हैं, उसके लिए कभी प्रशंसा का एक शब्द भी नहीं निकलता । आप जानते हैं, इसका क्या कारण है ?"

"क्या कारण है ?"

"कि आप समझते हैं, वे इसी काम के लिए बनाई गई हैं । और वे उससे

अधिक कुछ भी नहीं कर रहीं जो कुछ उन्हें करना चाहिए।"

"किन्तु यह ख्याल ग़लत है, हमे अपनी ग़लती स्वीकार कर लेनी चाहिए।"

"पर ऐसे कितने हैं जिन्हें यह गलती महसूस होती है ?"

"परन्तु उन्होंने हमें इस मसले पर सोचने का अवसर ही नही दिया है।"

"कैसे दे सकती है। शताब्दियों के संस्कारों ने उनकी प्रतिरोधक शक्ति को मिटा दिया है। विज्ञान ने अवश्य थोड़ी-बहुत उन्हें राहत पहुँचाई है। और उनके काम को हल्का किया है, किन्तु समय की प्रगति ने आपकी जिम्मेदारियों को भी तो बढा दिया है।"

"परन्तु हम अब यदि उनके जीवन को नई लाइनों पर चलाना भी चाहें तो असफल ही होंगे। और वे भी शायद हमारे इस रवैये को अपनी सुख की जिन्दगी की रुकावट समझेंगी।"

"परन्तु यह सब होते हुए भी आप—जब वे आपके लिए अपना व्यक्तित्व मिटा रही हैं, उनकी मुस्कुराहट का जवाब अपनी मुस्कुराहट से दे सकते है। और इसमें आपकी कमाई का एक धेला भी तो खर्च नहीं होगा।"

"आपकी बात ऐसी है जिस पर गौर करना होगा।"

"सिर्फ गौर ? और जब आप घर लौटें तो अपनी थकावट के साथ उनकी थकावट का कुछ भी खयाल न करेंगे ? जबकि आपकी मुस्कान में ही वे अपनी सारी मजदूरी के भुगतान की बेबाकी करने पर आमादा हों।"

"ऐसा न करना तो बेइन्साफ़ी है।"

"बेइन्साफी है या बेहयाई, यह तो आप ही सोच लें। और मुनासिब जँचे तो घर के काम में उनके हाथ बटायें। कम से कम हफ्ते में एक बार तो उन्हें चौके-चूल्हे से छुट्टी मिलनी चाहिए।"

"जरूर मिलनी चाहिए। गृहस्थी को सुखी बनाने की जिम्मेदारी तो स्त्री-पुरुष दोनों ही पर है।"

"तो बस इतनी ही-सी बात है कि अधिकार के स्थान पर आप कर्तव्य का खयाल रखें ? या वे आपके विरुद्ध सत्याग्रह करें ?"

"तो आप समझते हैं कि यह भी राजनीति का कोई एक अंग है ?"

"वैधानिक सत्याग्रह केवल राजनीतिक क्षेत्र की ही बात नहीं है। कवियों ने उसे जीवन की सबसे गम्भीर समस्याओं में वैधानिक माना है। मसलन नारी

पर पुरुष का पतित्व और एकाधिकार। अथवा समाज के अनुशासन के विरुद्ध, कवियों ने संसार की सब भाषाओं में साधारण नहीं—आमरण सत्याग्रह को स्थान दिया है। हीर-रांझा की गाथा, प्रेममार्गी कवियों के काव्य, रोमियो-जूलियट इसके उदाहरण है।"

"यह आप विवाहित प्रेम पर आक्षेप कर रहे है।"

"जी हाँ, हिन्दी का रीति कवि विवाहित प्रेम से ऊबकर ही परकीया की स्थापना को बाध्य हुआ। विवाह बन्धन से अस्वीकृत प्रेम को गोपी और कृष्ण के प्रेम के रूप में गाया।"

"परन्तु वहाँ तो हम केवल विरह-वेदना ही अधिक पाते हैं।"

"तो इससे क्या ? शारीरिक सहयोग का जब अवसर न मिला तो उसने मानसिक प्रेम को मूर्त किया। मानसिक प्रेम में ही उसने शारीरिक कर्म की सब कल्पनाओं की पूर्ति कर ली। उर्दू कवियों ने तो इसमें कमाल ही कर दिखाया।"

"तब तो आप कृष्ण द्वारा गोपियों का दधि रस लूटने—माखन चुराने को भी सत्याग्रह का नाम देगे ?"

"जरूर, और नदी में नहाती हुई स्त्रियों के बीच गेंद फेककर उस गेंद को ढूँढ़ने का आग्रह भी कुछ ऐसा ही है।"

"उसमें भी कुछ रहस्य हैं।"

"जी हाँ, इसमें विवाह के अनुशासन से मुक्त होने का रहस्य है।"

३०

अभी यह बातें हो ही रही थीं; चाय अभी पूरी तौर पर खत्म नहीं हुई थी कि स्थानीय मजदूर यूनियन के मन्त्री वासुदेव ने ताबड़तोड़ आकर कहा : "कामरेड कैलाश, क्या बुत बने बैठे हो। जोगलकर गिरफ्तार कर लिए गए। और भीड़ बेकाबू होकर मिल में आग लगाने जा रही है।" कैलाश एकदम उठ खड़ा हुआ। उसने कहा : "क्षमा कीजिए, मेरा जाना आवश्यक है। कामरेड

जोगलकर प्रान्तीय यूनियन के कार्यवाहक सभापति हैं।"

वासुदेव ने उतावलापन से कहा : "जल्दी करो कामरेड, वहाँ अन्सार और मातू पिस रहे हैं। भीड़ उनके काबू नहीं आ रही। पुलिस और सेना पूरे साजो-समान से लैस खड़ी है। पता नहीं कब गोली चल जाय।"

"जोगलकर की गिरफ्तारी बुरी हुई। वही मजदूरों को जोड़ने वाली कड़ी है। उसके बिना मजदूरों का अनुशासित रहना मुश्किल है। क्या वे मिल में आग लगाने पर आमादा हैं?"

"बिलकुल। हमें एक पल भी देर न करना चाहिए।"

कैलाश, और पद्मा जब चल दिए तो प्रमिला देवी ने कहा : "हम भी चल रहे हैं पद्मा देवी तुम्हारे साथ।" और प्रमिला रानी एक प्रकार से सुरेश का हाथ खीचती हुई बाहर चली आईं।

एक टाँगे में चारों आदमी बैठ गए। वासुदेव साइकिल पर हवा हो गया।

ताँगे वाला मुसलमान था, पचहत्तर बरस का बूढ़ा। बाल रूई के गाले की भाँति सफेद, दाढ़ी मेंहदी से रंगी हुई, खुशमिज़ाज आदमी। उसने कहा : "यह हड़ताल कब खत्म होगी बाबू जी, बेचारे मजदूर कितने दिन धरना देंगे? आखिर उनके भी बच्चे हैं। सरकार को देखिए, खुदा झूठ न बुलवाए, कहने को जनता की सरकार है—मगर जनता पर गोली चलवाती है।"

सुरेश ने कहा : "क्यों मियाँ, इन मज़दूरों से तुम्हें भी हमदर्दी है?"

"हमदर्दी क्यों न होगी जनाब, आखिर हमारे भाई ही तो हैं। जब हमारे ऊपर बीतेगी तब ये ही तो मज़दूर हमारे आड़े आयेंगे। हम भी तो मेहनतकश मज़दूर हैं। बड़े लोग तो बातें करते हैं, काम तो हम छोटे लोग ही करते हैं।"

ताँगे वाले ने एक चाबुक घोड़े को लगाया। शायद कैलाश अपने मन का संतुलन क़ायम रखने की कोशिश कर रहा था। वह चुप था। ताँगे वाले ने कहा :

"यही देखिए—लीग वालों की बात। चुनाव के ज़माने में लीग वालों ने क्या-क्या नहीं किया। हरएक के घर गये, थैलियों रुपए लुटाये, बड़े-बड़े वादे किये। हमने भाई समझकर उन्हें वोट दिया। समझा—कौमी जमात है।

हमारा भला होगा। लेकिन हुआ क्या ? लीजिये साहेब—वे सब तो पाकिस्तान को भाग गए। और मैं तो आज भी वैसा ही ग़रीब हूँ। तब भी पेट भर खाना और तन ढकने को कपड़ा नहीं मिलता था, अब भी नहीं। कहिये, हमें क्या फ़ायदा रहा ? फ़ायदे में तो अमीर ही रहे।"

सुरेश को मियाँ की बातों में रस आ रहा था। प्रमिला रानी भी ध्यान से उसकी बातें सुन रही थीं। प्रमिला ने कहा : "बडे मियाँ, कभी तुमने भी मज़दूर फण्ड मे चन्दा दिया है ?"

"क्यों नही दूँगा बीबी जी, दो बार दो-दो रुपया दे चुका हूँ। खा-पीकर जो बचता है—दे देता हूँ। खैरात नहीं करता, पर चन्दा ज़रूर दे देता हूँ।"

जगह आ गई। भीड़-भाड़ से इधर ही तांगा रोककर सब उतर पड़े। सुरेशसिंह ने दो रुपए ताँगे वाले के हाथ में रख दिए।

रुपए हाथ में लेकर कुछ संदेहभरी नजर से सुरेश की ओर देखते हुए उसने कहा।

"बाबू जी, आपका भी कुछ इस हड़ताल से ताल्लुक है ?"

सुरेश ने कैलाश की ओर इशारा करके कहा : "हाँ हाँ, ये बाबू मज़दूरों के लीडर हैं। यूनियन के सेक्रेट्री।"

"तो बाबू जी, बराहेकरम से रुपए आज के चन्दे में मेरी ओर से रख लीजिए—बेचारे मजदूरों के भूखे बच्चों के लिए।" उसने वे दो रुपए कैलाश के हाथों में थमा दिए।

कैलाश ने रुपए लेते हुए कहा : "देखिए कुँवर साहेब, एक ओर यह पद्मा देवी हैं, दूसरी ओर यह मियाँ साहेब हैं। जब ऐसे-ऐसे लोग हमारी मदद पर हैं, तो हम हार नही सकते। मियाँ जी जैसे मेहनतकश गरीब लोगों की ताकत ही सरकार की जड़ हिला डालेगी। ये तो अमीर ही हैं जिन्हें जान का डर है। और जो पैसे को माँ-बाप समझते हैं, सरकार उन्हें जिधर चाहेगी नचाएगी, पर हम मेहनतकशों को नहीं।"

मिल-एरिया लाल पगड़ी वालों से भरा हुआ था। घुड़सवार सिपाही चारों ओर घूम रहे थे। पुलिस वालों के पास लाठियाँ और बन्दूकें भी थीं। मज़दूरों ने अपने सीने पर लाल बिल्ले लगाए थे। घर में खाने को दाना नहीं। आठ दिन से हड़ताल हो रही थी, पर मज़दूर मोर्चे पर डटे थे। बच्चे एक बूंद दूध

को तड़प रहे थे । भुने चने दिये जाते या सत्तू और गुड़ बँटता, उसे खाते और ठण्डा पानी पीते । फिर भी उनमें फुर्ती थी । मर-मिटने के हौसले थे । तेज़ी थी ।

प्रमिला देवी ने धीरे से पद्मा से कहा : "इतनी तकलीफ सहकर भी इनमें यह जोश है, ये मरने से नहीं डरते ।"

"बहिन, मजदूर ने अब अपने को पहचाना है । अपने अधिकारों को समझा है । पर उनकी हड्डियों का रक्त चूस-चूस कर जिन्होंने सोने के महल बनाए है वे सो रहे है । और इधर इनका धैर्य सीमा पार कर गया है ।"

कैलाश ने एक उड़ती नज़र भीड़ पर डाली । चिंता की रेखाएँ उसके मस्तिष्क पर उभर आई । उसने कहा : "हड़ताल का सातवाँ दिन चल रहा है । पर लेवर मिनिस्टर के कानों पर जूं नही रेंगती ।"

"हम चाहते है कि किसी तरह समझौता हो जाय । परन्तु समझौते के लिए हम सम्मान नहीं बेचना चाहते । हड़ताल रोकने की हमने भरसक चेष्टा की । पर ताली एक हाथ से नही बजती । सालों से हम कोशिश करते आ रहे हैं । मिल मालिक से लेकर श्रम मन्त्री तक हमने बीसियों दौड़ लगाई है । लेकिन बेकार !!"

कुछ रुककर कैलाश ने कहा · "वहाँ केवल एक वस्तु है, आश्वासन । परन्तु कोरे आश्वासनों से तो भूखों का पेट नही भरता । उन्हें रोटी की जरूरत है । और रोटी के लिये पैसे की । जनता की जब लोकप्रिय सरकारे बनी थीं, तब उनसे हमें आशा बँधी थी । हमने आशा की थी, हमारे प्रतिनिधि हमारा भला करेंगे । उन्होंने वादे किये थे । पर वे वादे उनके झूठे निकले । वे कहते हैं सब्र करो । कहिए, भूखा कैसे सब्र करें ?"

कैलाश चुप होकर भीड़ की ओर देखने लगा । मोर्चे के स्वयं सेवक अपने काम पर मुस्तैद थे । पुलिस वाले और फौज़ के दस्ते गश्त लगा रहे थे । अब तक चार-पाँच सौ हड़ताली गिरफ्तार हो चुके थे । दोपहर को एक बार गोली चल चुकी थी । अब फिर कब गोली चलेगी—इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता था । अभी तक मजदूर शांत थे । अपने प्रेसीडेन्ट की गिरफ्तारी से भी वे उत्तेजित नहीं हुए थे । अपने नेताओं पर उन्हें भरोसा था । एक हड़ताली गिरफ्तार होता तो झट दूसरा उसकी जगह पर आ खड़ा होता—

उसके बाद तीसरा—चौथा—पाँचवा। यही क्रम चल रहा था।

कुछ सिपाही दूर खड़े गप्पें लड़ा रहे थे। न उनकी आँखों में हिंसक वृत्ति थी, न चेष्टा में। जैसे वे मन ही मन उस अप्रिय काम के लिए ग्लानि अनुभव कर रहे थे।

सुरेश भी गहरे विचार में पड़े थे। उन्होंने कहा: "यह एक अजीब-सी बात मालूम हो रही है कि भारत-रक्षा के कानूनों को सुरक्षा कानून का जामा पहना दिया है।"

"वही तो देखिए। यह कानून हमने, स्वयं हमारे प्रतिनिधियों ने, हमारे ऊपर लादा है। किसी विदेशी सत्ता का इसमें हाथ नही है।" कैलाश ने अशांत मुद्रा में कहा।

सुरेश ने कहा: "अजीब बात है, वे ही व्यक्ति आज संगठन के खिलाफ है, जो सदा संगठन का गीत गाते रहे थे। जिन्होंने एक दिन उसी के लिए पुलिस की लाठियाँ खाई थी, वे ही आज न स्वतन्त्रता की बात सुनना चाहते है, न संगठन बर्दाश्त कर सकते है। सोचिए तो—संगठन सेना में हो, पुलिस में हो, मजदूरों में हो, जनता में हो, अन्ततः संगठन ही तो है।"

कैलाश ने एक बार फिर भीड़ की ओर देखा। पुलिस के सिपाही चार-चार, छै-छै की टोलियों में घूमते हुए गप्पें लड़ा रहे थे। एक टोली यह कहती हुई उनके पास से गुजर गई: "बेचारे मजदूर पेट के लिए रोटी माँगते है, और हम पेट के लिए उनपर गोलियाँ चलाते है।"

सेठ जी का माइक्रोफोन चीख रहा था: "काम करो मजदूरो, काम करो! आज मुल्क में कपड़े की कमी है। नंगों को कपड़ा दो। आज देश को सबसे ज्यादा तुम्हारी सहायता की जरूरत है। वे तुम्हारे और तुम्हारे बाल-बच्चों के दुश्मन हैं जो तुम्हें हड़ताल के लिए भड़काते हैं। काम करो और देश की आजादी को सफल बनाओ।"

एक मजदूर पास के बम्बे में पानी पी रहा था। पानी पीकर अपने कुरते से हाथ पोंछते हुए उसने कहा: "वाह बेटे, आजादी की सबसे ज्यादा फ़िक्र तुम्हीं को तो है। बदमाश! जब चिल्लाते है तो भूल जाते हैं, पेट पहले है आजादी पीछे।"

एक बूढ़ा उसके पास से जा रहा था। उसने कहा: "अरे, यह सब हम

लोगों को फुसलाने की बातें हैं। यही सेठ जी हैं जिन्होंने लड़ाई के जमाने में लाखों रुपए अंग्रेज़ों को देकर रायबहादुरी ख़रीदी। आज आज़ादी की डींग हाँक रहे हैं।"

पद्मा ने सुना। ताव-पेंच खाकर रह गई। प्रमिला देवी के सामने वह घुटी जा रही थी। यह उसी के पिता की आलोचना हो रही थी।

उसने देखा पुलिस अफसर हुक्म की तामील करने को हाजिर हैं। खुद कमिश्नर साहेब भी मोटर में बैठे हैं, बड़े डिप्टी, छोटे डिप्टी, सार्जेन्ट, कोतवाल सब हाजिर है।

सामने कुछ गड़बड़ नजर आई। पुलिस अफ़सर सिपाहियों को हुक्म दे रहे थे। सिपाही साफा बांधे, बन्दूकें लिए आगे बढ़ रहे थे। कैलाश ने कहा : "पद्मा, कुँवर साहेब और रानी जी को यहाँ से रवाना कर दो—उनके ठहरने का अवसर नही है—शायद वे गोली चला रहे हैं। मैं जाता हूँ।"

वह तेजी से भीड़ की ओर चला। पद्मा ने कहा :

"ठहरिए मैं एलान करूँगी कि उनकी सब शर्तें मान ली गई हैं।"

"सेठ जी मान जाएँगे ?"

"मैं मनाऊँगी। वरना जान दे दूँगी। आप पुलिस को गोली चलाने से रोकिए।"

"आओ तब।" कैलाश कमिश्नर साहेब की मोटर की ओर दौड़ा। पद्मा भी पीछे दौड़ी। सुरेश और प्रमिला ने भी दौड़ लगाई। मैजिस्ट्रेट फायरिंग की आज्ञा दे ही रहा था कि पद्मा ने कहा :

"मैं सेठ जी की पुत्री हूँ। फायरिंग की आज्ञा मत दीजिए।"

"लेकिन वे मिल में आग लगा रहे हैं।"

"मैं अभी उन्हें रोकती हूँ। वे दस मिनट मे निकल जाएँगे।"

"मैं आपको तीन मिनट दे सकता हूँ।" मैजिस्ट्रेट ने कहा।

पद्मा ज़बर्दस्ती उन्मत्त भीड़ में घुस गई। सुरेश और कैलाश ने भीड़ को चीरते हुए रास्ता बनाया। प्रमिला देवी साहस न कर सकीं। वह मैजिस्ट्रेट के पास ही खड़ी रहीं।

पद्मा बिल्ली की तरह फाटक पर चढ़ गई। उसने चिल्लाकर कहा :

"साथियो ! तुम्हारी सब शर्तें सेठ जी ने मंजूर कर ली हैं। कामरेड कैलाश तुमसे बात करेंगे, सुनो।"

वह नीचे कूद गई। भीड़ में सन्नाटा छा गया। कैलाश ने फाटक पर चढ़कर कहा :

"साथियो ! हमारी सब शर्तें मंजूर कर ली गई हैं। आप लोग शान्तिपूर्वक अपने-अपने घर जाइए। हड़ताल ख़त्म।"

भीड़ में हर्षनाद उठा। किसी ने कहा : "हमारे नेता और साथियों को छोड़ना होगा।"

"कल वे सब छोड़ दिए जाएँगे। विश्वास रखिए। घर लौट जाइए।"

अब भीड़ लौट रही थी। कैलाश ने पद्मा का हाथ पकड़कर भीड़ से बाहर किया। सुरेश के पास आकर कहा :

"अब आप अपने होटल लौट जाइए कुँवर साहेब, हम लोग सेठ जी से बात करने जा रहे हैं।"

"तो वादा कीजिए कि कल फिर मिलेंगे।"

"कोशिश करूँगा।"

"नहीं, पक्का वादा कीजिए कि चाय पर आएँगे शाम को।"

"अच्छा आऊँगा। नमस्कार।"

वह पद्मा का हाथ पकड़कर तेजी से चल दिया। सुरेश और प्रमिला रानी भी पैदल ही टहलते हुए एक ओर को चल दिए। वह भूल गए कि वह राजकुमार हैं। मजदूरों का संघर्ष अभी तक उनकी चेतना को आहत कर रहा था।

३१

बड़ी अजीब और करुण कहानी है रश्मि की। अलिफ-लैला की कहानी से भी बढ़कर। उसी साल एम० बी० करके रश्मि लाहौर के सिविल अस्पताल में असिस्टेन्ट हाउस सर्जन के पद पर नियत हो चुके थे। रश्मि के पिता ग़रीब आदमी थे। वह एक स्कूल में अध्यापक थे। सैदमिट्ठा में वह एक छोटे-से मकान में रहते

थे। जिस दिन अकस्मात् इस परिवार पर वज्रपात हुआ और साथ ही लाहौर के हिन्दुओं में तबाही आई—उस दिन तक भी रश्मि को यह विश्वास नहीं हो रहा था कि आज ही कुछ अनहोनी दुर्घटना हो जायेगी। यों गली-कूंचे में छुटपुट छुरेबाजी हो जाती थी। एक-दो मकान भी जलाए जा चुके थे। सैंदमिट्ठा का ही एक सिनेमा दिन-दहाड़े जला डाला गया था। परन्तु लोग भाग नहीं रहे थे। नई मिनिस्ट्री आएगी, और कुछ राहत मिलेगी। सभी यही सोचते थे। रात-रात भर 'अल्ला हो अकबर' का शोर मचता था। हिन्दू भी अपने घरों की छतों पर खड़े होकर हर-हर महादेव चिल्लाते थे। कही टोली बनाकर रात-रात भर भालों और बर्छियों से लैस होकर गलियों मे शोर मचा-मचाकर पहरा देते थे। एकाध के पास बन्दूक और रिवाल्वर भी था। पर उन्होने शायद उसे एक बार भी इस्तेमाल नहीं किया था। एक प्रकार का वह लोहे का गहना ही था।

जिस दिन यह दुर्घटना घटी, उस दिन रश्मि ज़रा जल्दी ही ड्यूटी पर चले गए। उनके जाने के एक ही घन्टे बाद मुहल्ले मे मार-काट मच गई। पड़ोस के मकान जला डाले गए, और बदमाशों के गिरोह छतों पर चढ़कर मकानों में कूदने, बलात्कार, अपहरण, लूट और कत्ल करने लगे। चीत्कार-क्रन्दन से वातावरण थर्रा उठा। मास्टर साहेब स्कूल जाने की तैयारी में थे। पर वह घर के द्वार बन्द करके घर में छिप रहे। उनकी पत्नी और पुत्री सरला उनके पास खड़े होकर रोने लगी। आततताइयों की आवाजे निकट आती जा रही थीं। और ये लोग थर-थर काँप रहे थे। इसी समय पुलिस की ट्रक आई मुहल्ले के हिन्दुओं को निकाल ले जाने को लिए और मास्टर साहेब का यह परिवार जैसे ही बैठा था वैसे ही ट्रक पर लादकर डी० ए० वी० कालेज कैम्प में पहुँचा दिया गया। वहाँ से दिल्ली तक आने की कहानी बहुत लम्बी और दुःखदायी है। संक्षेप मे, ये तीन प्राणी बहुत दिन तक कुरुक्षेत्र शरणार्थी कैम्प में पड़े रहे, फिर दिल्ली आ गए। मास्टर साहेब ने रश्मि को साथ लेने और बाद में उनकी तलाश की बहुत चेष्टा की परन्तु उनका कुछ भी पता न लगा।

रश्मि को जब गड़बड़ी का पता लगा तो वह अस्पताल से शीघ्रता से घर की ओर चले। उन्हें अस्पताल में ही रहने को बहुत समझाया गया। और

सैदमिट्ठा के खतरनाक नगर-भाग में जाने से रोकने की कोशिश की गई। पर उन्होंने किसी की न सुनी—माता-पिता और बहिन को आश्वासन देना आवश्यक था। वास्तव में वस्तुस्थिति का तब तक भी उन्हे कोई ज्ञान न था। कोई सवारी भी उन्हें नहीं मिली। वह लपकते हुए पैदल ही घर की ओर दौड़े। रास्ते भर भयानक दृश्य वह देखते जा रहे थे। चारों ओर हाहाकार मचा था। दूकान-बाज़ार बन्द थे। अनारकली धाँय-धाँय जल रहा था। लाशें जहाँ-तहाँ खून में लथपथ पड़ी थीं। बहुत-से अंग-भंग लोग चीखते-चिल्लाते खून से भरे इधर से उधर दौड़ रहे थे। अल्ला हो अकबर का शोर कान फाड़ रहा था। रह-रहकर बन्दूकों के धड़ाके हो रहे थे।

रश्मि सैदमिट्ठा तक पहुँच गये। यहाँ तक तो वह बच गये—पर गली में घुसते ही उन्मत्त भीड़ ने उन्हें घेर लिया। उनके शरीर में बहुत बल था। तरुण थे, किसी तरह वह एक बार भागे—पर एक छुरे का करारा वार खाकर गिर गए। बहुत देर तक वह बेहोश पड़े रहे। जब होश आया तो उनके चारों ओर मार-काट मच रही थी। लोग मरा हुआ समझ उन्हें रौंदते चले जा रहे थे। बहुत साहस करके वह खसक कर एक नाली में जा गिरे। प्यास से उनके कण्ठ में काँटे पड़ गए थे। उन्होंने नाली के गन्दे पानी ही मे मुँह लगा दिया। अपने माता-पिता और बहिन की उन्हे चिन्ता थी—और अब वह अपनी सारी चेतना और शक्ति को बटोरकर घर की ओर खसक रहे थे। अन्ततः वह अपनी गली तक आ पहुँचे। घर के द्वार परपहुँचकर वह खड़े हुए पर लड़खड़ा कर गिर पड़े। फिर उठे और दहलीज में घुसे। मकान खुला पड़ा था—उन्हें आशा थी कि उनके माता-पिता और बहिन से उनकी मुलाकात होगी। पर घर में बहुत-से लुटेरे घुसे हुए थे—और वे सब सामान उठा-उठाकर ले जा रहे थे। रश्मि को देखते ही वह इनपर टूट पड़े। एक बारगी ही छुरों के कई आघात उन्हें लगे और वह वहीं ढेर हो गए।

ईश्वर की माया देखिये कि वह इतने पर भी मरे नहीं। इसी समय एक परिचित व्यक्ति की उन पर नजर पड़ी। कभी चिकित्सा करके उन्होंने उसकी पत्नी की जान बचाई थी। वह व्यक्ति भी इस समय उनके घर को लूटने वालों में सम्मिलित था। जब उसने उन्हें पहचान लिया और यह भी देखा कि वह जीवित हैं तो वह उन्हें उठाकर अपने घर ले गया।

पड़ोसी ही था वह। उसकी पत्नी ने उनकी सुश्रूषा की। भाग्य की विडम्बना देखिए कि वह अपने ही घर से लूटकर लाये हुए पलंग पर इस समय पड़े थे।

दो दिन वह बेहोश पड़े रहे। जब उन्हें होश आया तो संक्षेप में उन्हें सब घटना बता दी गई। उनके माता-पिता तथा बहिन का क्या हुआ इसका उन्हें कुछ भी पता न लगा। पड़ोस के उस व्यक्ति ने उन्हें सलाह दी कि जान बचाने की एकमात्र राह यह है कि वह मुसलमान हो जाये। वह अधिक दिन उन्हें अपने घर मे नही रख सकता था। ज़ख्म उनके सड़ रहे थे, क्योंकि उनका कोई उपचार ही नही हुआ था। वह नाले का पानी पी चुके थे। अब इस मुसलमान की दया पर निर्भर थे। जितनी भी चेतना इस समय उनके शरीर में लौटी, उससे उन्होंने यही निर्णय किया कि वह मुसलमान हो जाएँगे। और उन्हें मुसलमान बना लिया गया। इसके बाद उनकी देखभाल और चिकित्सा भी की गई। वह जब कुछ चलने-फिरने के लायक हुए तो उन्हें पहले रावलपिण्डी, फिर पेशावर और वहाँ से बन्नू भेज दिया गया। यद्यपि वह मुसलमान हो गए थे, पर काम उनसे गुलामों की तरह लिया जा रहा था। असल बात यह थी कि उन्हें कबायलियों के हाथ बेच दिया गया था। अन्तिम बार जिस खान ने उन्हें खरीदा था, सीमाप्रान्त में उसका इकलौता लड़का न्यूमोनिया से बीमार पड़ा। तब रश्मि ने उसकी चिकित्सा करके उसे अच्छा कर दिया। इस पर खान प्रसन्न हो गया, तब से उनके खाने-पहनने की भी कुछ सुविधा हो गई। और वह लड़का भी उन्हें मित्र की भाँति मानने लगा।

दिन बीतते चले गए। और अब यह बात पुरानी हो गई कि वह कभी हिन्दू थे। अब वह शहर में स्वतन्त्र घूम-फिर सकते थे। उन्होने लड़के की मार्फत खान के सामने प्रस्ताव रखा कि वह उन्हें अस्पताल में नौकर करा दे, और तनख्वाह से अपने रुपए वसूल कर उन्हें गुलामी से मुक्त कर दे। खान भला आदमी था, रश्मि के उस पर अहसान थे। हिन्दू होने का विष खत्म हो गया था, अतः खान राजी हो गया और वह पेशावर में अस्पताल के डाक्टर हो गए। सारी तनख्वाह दो साल तक लगभग खान लेता गया। और तब उसने उन्हें मुक्त कर दिया और कह दिया—वह अब जी चाहे जहाँ जा सकता तथा रह सकता है। दो साल बाद डाक्टर का तबादला डेरा इस्माइलखाँ को और इसके डेढ़ साल बाद लाहौर को हो गया।

लाहौर आकर उन्होंने अपने पुश्तैनी मकान का दावा किया। किसी तरह वह मकान उन्हें मिल जाय तथा कुछ मुआवजा भी मिल जाय इसके लिए सरकार से बहुत लिखा-पढ़ी की, पर उन्हें कुछ भी सफलता नही मिली। वह दो साल लाहौर में रहे, और तब एक दिन वह अपने प्राणों का भार लेकर दिल्ली चले आए।

दिल्ली आते ही हनुमान रोड, आर्यसमाज मे जाकर उन्होंने वहाँ के मन्त्री को अपना सब जीवन-वृत्त सुनाया और शुद्ध होने की इच्छा प्रकट की। उनकी शुद्धि हो गई। और आर्यसमाज मन्दिर ही मे उनके रहने की व्यवस्था भी हो गई। अब एक बार फिर अपने माता-पिता और बहिन की तलाश में उन्होंने दिल्ली छान डाली, पर उनका कुछ भी पता नही लगा। आर्यसमाज के प्रधान के सतत उद्योग से कुछ ही दिन मे उन्हें इरविन अस्पताल मे नौकरी मिल गई। और अब वह अपने उदास और एकाकी जीवन को कुछ स्वस्थ होकर आगे धकेलने लगे।

३२

इरविन अस्पताल मे रश्मि को सहकारी हाउस सर्जन की नौकरी मिल गई। अस्पताल के ही कम्पाउन्ड मे उन्हें रहने को क्वार्टर भी मिल गया। अपनी इस नई नौकरी पर रश्मि बहुत प्रसन्न थे। वह उत्साह से अपनी ड्यूटी करने लगे। अपने मन में वह बहुत खुश थे। वह रोज़ सुबह के समय पहले मर्दाने और फिर ज़नाने वार्ड में राउन्ड लगाते। वह रोगियों की देख-भाल यत्न से करते। उनसे प्रेम और सहानुभूति से बात करते। सदा प्रफुल्लित और उत्साहपूर्ण रहते थे। वास्तव में रोगियों की सेवा से उन्हें सच्चा सुख मिलता था, उनके प्रति उनकी सहानुभूति झूठी न थी—वह सचमुच आत्मीय की भाँति उन्हें प्यार करते थे। अपने चिकित्सा-व्यवसाय को वह व्यवसाय नहीं—एक मानवीय कर्तव्य समझते थे। शीघ्र ही रोगी और नर्स सभी उनसे प्रभावित हो गए। और सभी के मन में उनके प्रति आत्मीयता के भाव

उत्पन्न होते चले गए। रोगी उन्हें चाहने लगे। उन्हें देख वे प्रसन्न हो जाते।

इसी बीच एक नया रोगी अस्पताल मे आया। जब उन्होंने उसका विवरण-पत्र देखा तो ज्ञात हुआ कि वह एक कवि है। इस रोगी की अवस्था कोई तीस बरस की होगी। उसे रक्तात्पता की बीमारी थी। यह दूसरे रोगियों से कुछ नए प्रकार का रोगी था। रंग उसका गोरा था—और रक्तात्पता के कारण एक फीका पीलापन उसके चेहरे पर छाया हुआ था। उसका शरीर दुबला-पतला, चेहरा किसी क़दर लम्बा, आँखें खोई-खोई-सी, नाक कोमल, और गर्दन ज़रा लम्बी थी। उसके हाथों की उँगलियाँ लम्बी और हथेलियाँ स्त्रियों की भाँति मुलायम थीं। बाल गहरे काले घुंघराले, किन्तु किसी क़दर रुखे थे। यह साफ प्रकट होता था कि अपने शरीर की तरफ से वह बिल्कुल बेखबर—फक्कड़ तबियत का आदमी है।

"अच्छा, तो तुम कवि हो?"

"जी हाँ, लेकिन आपको शायद मेरी कविता मे दिलचस्पी न हो।"

"क्यों? ऐसा तुम क्यों समझते हो?"

"आप डाक्टर हैं। दिमाग़ से काम करने वाले। पर कविता तो हृदय की चीज़ है।"

"यह तो तुम शायद ठीक नही कह रहे मेरे दोस्त! मेरा तो ख्याल है कि बिना हृदय के कोई डाक्टर सफल डाक्टर नही हो सकता, और कवि भी बिना दिमाग़ के कविता नहीं कर सकता।"

"ओह, तो आप औरों की अपेक्षा—कुछ नए ढंग के डाक्टर हैं। आप शायद नए-नए ही डाक्टर हुए हैं?"

"हाँ भाई इसी साल" रश्मि ज़रा मुस्कराए। उन्होंने ध्यान से उसका रोग-विवरण पढ़ा, कुछ प्रश्न किए, इससे उनकी दिलचस्पी इस रोगी से बढ़ गई। पर अस्पताल के किसी अधिकारी का किसी एक रोगी से विशेष रूप से घनिष्ठ होना ठीक नहीं, यह विचार कर उन्होंने और विशेष बात उससे नहीं की, वह आगे बढ़ गए।

परन्तु दिन-दिन इस रोगी के प्रति रश्मि की दिलचस्पी बढ़ती चली गई। वह बहुत धीमी गति से ठीक हो रहा था। और अत्यन्त शान्त-शिष्ट और मितभाषी व्यक्ति था। उसकी बातचीत का ढंग दार्शनिकों जैसा था, केवल

यही नहीं कि उसकी बातचीत विद्वत्तापूर्ण और सचोट होती थी-- उसके कहने का ढंग भी कुछ ऐसा था कि वह श्रोता को अभिभूत कर लेता था। उसकी चितवन में लापरवाही और उदासीनता का कुछ ऐसा मिश्रण था जो प्रत्येक आदमी को उसके प्रति सदय और सजग बना देता था। रश्मि इस मेधावी रोगी के प्रति आकृष्ट होते चले गए। ज्यों-ज्यों दिन बीतते चले गए उनकी मित्रता बढने लगी।

एक दिन रश्मि से फिर उसकी बातचीत हुई। रश्मि ने कहा : "अब तो मैं समझता हूँ कि तुम दो सप्ताह में आरोग्य-लाभ करके यहाँ से छुट्टी पा जाओगे।"

"यह तो बड़े अफसोस की बात होगी डाक्टर।"

"क्यो ? क्या रोग-मुक्त होने की तुम्हें खुशी न होगी ?"

"क्यो नहीं। लेकिन आप जैसे मित्र से जो बिछोह हो जायगा।"

"ओह, तो क्या अस्पताल से बाहर हम नहीं मिल सकते ?"

"शायद यह आसान नही है। डाक्टर को तो हर बार मिलने के लिए फीस देनी पड़ती है। मैं आपकी फीस कहाँ से दूंगा। मैं कुछ कमाता-धमाता थोड़े ही हूँ ?"

"मेरे मित्र, क्या तुम डाक्टरों को इतनी हीन दृष्टी से देखते हो कि उनसे मिलने के लिए हर हालत में फीस देने की जरूरत पड़ती है ?"

"आखिर यह तो उनका पेशा है, फीस लेना तो उनका दस्तूर है।"

"तुम समझते हो डाक्टर फीस न लें तो खायँ क्या ?"

"नहीं डाक्टर, खाने-पीने के लिए ही थोड़े कमाई की जाती है, बैंक में जमा करना भी तो जरूरी है।"

"बैंक में जमा करने के लिए ?"

"जी हाँ, बड़े आदमी अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए नहीं, बैंक-बैलेन्स बढ़ाने के लिए कमाते है, इसीसे तो वे बड़े आदमी बनते हैं।"

"डाक्टरों को भी तुम उन्हीं में गिनते हो, जो बैंक में रुपया जमा करने के लिए कमाई करते हैं ?"

"डाक्टर भी तो बड़े लोगों में हैं, हम जैसे छुटभैये थोड़े ही हैं। बीमार होने पर वे थोड़े ही मेरी भाँति खैराती अस्पताल में भर्ती होते हैं।"

"यह तो तुम व्यंग्य करते हो मित्र, डाक्टर का अपना कुछ कर्तव्य भी है, जो उसके पेशे से ऊपर है।"

"ओह, तो आप कुछ नए ढंग के डाक्टर हैं। आपके विषय मे कुछ सोचना होगा।"

रोगी मुस्कुराकर चुप हो गया। रश्मि उसके व्यंग को समझ कुछ हत-प्रभ-सा होकर आगे बढ गए।

३३

"कल तुम्हें छुट्टी मिल जायेगी।" डा० रश्मि ने मुस्कुराकर कहा।

"क्या कल ही ?"

"हाँ, अब तुम बिलकुल ठीक हो। खाने-पीने का ध्यान रखोगे, और जरा आराम करोगे—तो शीघ्र ही तुम्हारी पुरानी शक्ति लौट आएगी, लेकिन तुम्हें ताज़ा फल अधिक खाने चाहिएँ और दूध जितना भी पी सको पीओ।"

"देखा जायेगा। यह भी तो हो सकता है कि मुझे कुछ दिन बाद फिर यहीं लौटना पड़े।"

"ऐसी मनहूस बात क्यों सोचते हो ?"

"क्या किया जाय ? आप कहते है, ताजा फल और दूध। दूध रुपये का एक सेर और फल दो-तीन रुपये सेर मिलते हैं। और रुपये है कि किसी तरह नहीं मिलते। सोना-चाँदी का व्यापार तो मैं करता नहीं। फिर मुझे एक अच्छे मित्र की भी तो आवश्यकता है ?"

"शायद हम एक दूसरे के अच्छे मित्र प्रमाणित हो सकें। मैं २६ नं० क्वार्टर में रहता हूँ, और शाम के पाँच बजे के बाद हमेशा मुझे फुर्सत रहती है। फिर इतवार का दिन है। एकदम छुट्टी का दिन। तुम खुशी से आ सकते हो। तुम्हारा स्वागत है।"

"मुझे भय है कि आप ऊब जाएँगे डाक्टर।"

"देखा जायेगा, मेरा अनुरोध है—कि कभी-कभी अवश्य आना।"

"ख़ैर देखा, जायेगा।"

"तो यहाँ से निकलकर तुम कहाँ जाओगे ?"

"यह तो मैं कल ही सोचूँगा।"

"यहाँ आने से प्रथम कहाँ रहते थे ?"

"कभी कहीं, कभी कहीं। कोई एक ठिकाना नहीं था।"

"क्या तुम्हारा कोई आत्मीय––सगा-सम्बन्धी दिल्ली में नहीं है ?"

"वसुधैव कुटुम्बकम्" रोगी एक विचित्र हँसी हँसा।

डाक्टर के मन पर कहीं आघात लगा। उन्होंने कहना चाहा—कि वह उसी के साथ आकर रहे। वह भी अकेला है। पर कुछ सोचकर वह चुप रह गए। उन्होंने सोचा कि कल जब वह अस्पताल से जाने लगेगा तो वह उसे कुछ रुपये दे देंगे। परन्तु दूसरे दिन जब डाक्टर राउन्ड करता हुआ रोगी के बिछौने के पास पहुँचे तो बिछौने पर एक दूसरा रोगी पड़ा हुआ था। उन्होंने सिस्टर से पूछा :

"वह रोगी कहाँ गया ?"

"चला गया।"

"इतनी जल्दी ? मेरे आने तक भी नही रोका ?"

"मैंने कहा था। लेकिन उसने सुना नहीं। वह भोर के तडके ही चल दिया।"

"चलती बार उसने कुछ कहा ?"

"कहा—डाक्टर को नमस्कार कह देना।"

रश्मि का दिल उदास हो गया। उस दिन वह बहुत बेमन से काम करते रहे—और तबियत ठीक नही है यह कहकर जल्द अपने क्वार्टर में लौट आए। वह तमाम रात उसी रोगी का ध्यान करते रहे—कुछ अजीब-सा लम्बा-लम्बा मुँह, लम्बी गर्दन, झूमती हुई-सी आँखें, अपनी ओर से लापर-वाह।

३४

राजधानी का यह दूसरा दिन भी प्रमिला रानी और सुरेश के लिए नए अध्ययन का दिन था। आज उन्होंने असाधारण दृश्य देखे थे। श्रमिक वर्ग के इस जीवन का गाँव-देहातों में अध्ययन नहीं हो सकता था। सुरेश ज़मींदार थे। कृषकों की कष्ट-कहानी वह जानते थे। परन्तु आज श्रमिकों की दयनीय और असहाय अवस्था उन्होंने देखी थी। वह प्रत्यक्ष देख रहे थे कि नागरिक जीवन और पूंजीवाद का यह संघर्षमय जीवन समाज के ढाँचे को तोड़-फोड़कर ही रहेगा।

प्रमिला रानी आज सबसे अधिक प्रभावित हुई थी पद्मा से—करोड़पति पिता की पुत्री, सब प्रकार के सुख-साधनों से सम्पन्न—केवल मौखिक ही नहीं क्रियात्मक सहानुभूति पीड़ित श्रमिक दल से रखती है। यह अद्‌भुत् है। प्रमिला रानी की सारी चेतना इस समय पद्मा की पूजा कर रही थी।

सुरेश चाहते थे कि भोजन करके कोई इंग्लिश पिक्चर देखी जाय परन्तु प्रमिला रानी एकान्त, शान्ति और नीरव वातावरण चाहती थीं। वह नहीं चाहती थीं कि उनकी चिन्तनधारा भंग हो। उन्होंने कहा—"नही, आज मैं कहीं जाना नहीं चाहती।"

भोजन के बाद वे शीघ्र ही सो गए। आज जैसे उनके चित्त में एक तृप्ति प्रविष्ट हो गई थी। आज उन्होंने दो आदर्श मूर्तियाँ देखी थीं—पद्मा और कैलाश। जिनके वेश में स्त्री-पुरुषों के भावी तारुण्य का प्रतिनिधित्व था।

दूसरे दिन भी वे घर ही में रहे। कहीं घूमने-फिरने नही गए। एक बार पद्मा से उन्होंने फोन पर बात की। पद्मा ने निश्चित रूप मे आने का वचन दिया था। प्रमिला रानी बहुत खुश थीं।

शाम को जब पद्मा और कैलाश आए तो दोनों बहुत खुश थे। इस उम्र मे जो कृत्रिम कठोरता और गम्भीरता उनके मुखमण्डल पर छाई रहती थी—आज वह नहीं थी। आज बाल सुलभ चापल्य, सरलता और कोमलता से उनके मुख-मण्डल दैदीप्यमान हो रहे थे। कैलाश के कपड़े भी आज साफ थे।

सुरेश ने हँसकर कहा : "कैलाश बाबू, आज तो आपको शायद अपनी ओर देखने की फुर्सत मिल गई।"

कैलाश ने भी हँसकर कहा : "पद्मा देवी की बदौलत। सेठ जी ने हमारी लगभग सब शर्तें मान ली है। और मिल खुल गए हैं, काम चालू हो गया है। सेठ जी ने हड़तालियों को हड़ताल के दिनों का पूरा वेतन आज दे दिया है।"

"तो मै इस असाधारण सफलता के लिए पद्मा देवी को बधाई देता हूँ, आप अद्भुत है पद्मादेवी।"

"प्रशंसा के लिए धन्यवाद। मै तो एक बात जानती हूँ कुँवर साहेब, जो नया काम करते निकलता है—नई जीवन-गति अपनाता है, उसे लोग प्रश्न-वाचक दृष्टि से देखेंगे ही।"

"पर तुम तो आग के अंगारों पर चल रही हो पद्मा देवी। तुम्हारे पिता जी का क्या मत है, यह तो मैंने नहीं देखा—पर तुम्हारी माता तो निश्चय ही तुम्हारे विरोध में हैं।" प्रमिला रानी ने कहा।

"आप ठीक कहती है। जो कुछ करने को निकल पड़ता है, उसे सबकी सुनते हुए चलना पड़ता है। फिर, लोग हमारे बारे में क्या कहते है, उससे हमें दुःख क्यों हो ? क्रोध क्यों हो ? विरोध की ताड़ना ही तो हमारे हृदयों को स्वच्छ करती है। इसलिए—मैंने तो एक गुर बना लिया है :

'सबकी सुनना, उनमें से श्रेष्ठ को चुनना, और जो मार्ग उपयोगी हो—उस पर अमल करना।'

"बहुत कीमती सिद्धान्त है आपका पद्मा देवी। जो कदम-कदम पर उलझता रहेगा—वह तो जहाँ का तहाँ ही रह जायगा।"

पद्मा जरा गम्भीर हो गई। शायद उसकी आँखें भी गीली हो आईं। उसने कहा : "बहिन, आप मेरी करुण कहानी सुनेंगी तो शायद विश्वास न करें।

"बचपन ही में माता ने मुझे अनाथ कर दिया। मेरे पिता जी देवता हैं। उनमें माता का हृदय भी है और पिता का भी। परन्तु जब उन्होंने रेणुका देवी से विवाह कर लिया तो मुझे अधिक सूना-सूना लगा। ऐसा प्रतीत हुआ मुझे, कि जैसे मैंने अब पिता को खो दिया। मै प्रायः अकेली गुमसुम बैठी सोचती रहती। कभी मुझे माँ की याद आती, कभी पिता जी के लाड़-प्यार की। मुझे न खाने की सुध थी न पीने की, न मैं अपने जीवन के सम्बन्ध में कुछ सोच-

विचार कर सकती थी। परिणाम यह हुआ कि मन और अस्वस्थ हो गया। निराशा और निष्क्रियता जीवन पर छा गई। पिता जी की नई माता के प्रति आसक्ति और नई माता की मेरे प्रति विरक्ति ने मेरा मन ऐसा कर दिया कि मन आत्मघात करने का होने लगा। मैं रात-रात भर जागती रहती। एक दिन योंही मैने किसी पुस्तक में पढ़ा—पानी मैला क्यों नही होता ? क्योंकि वह बहता रहता है। पानी सड़ता क्यों नहीं ? क्योंकि वह बहता रहता है। पानी की एक बूँद झरने से नदी, नदी से महानदी और महानदी से समुद्र कैसे बन जाती है ? क्योंकि वह बहता रहता है।

"मैं नही जानती कि ये किस महापुरुष के वचन थे, पर इन्होंने मुझे नई दिशा दिखा दी। मैंने अपने ही से कहा—मेरे जीवन तुम रुको मत, बहते रहो, बढते रहो, चलते रहो।

"बस, मैंने सब ओर से अपनी चेतना समेटकर पढ़ने में ध्यान दिया। मै यद्यपि ज्यादा मेधावी छात्रा नहीं हूँ, पर मैने सदा अच्छे नम्बर पाए। पानी के बहने पर मैने विचार किया—पानी बहता है, ऊँची, नीची, गन्दी, साफ सभी जगहों में, सबको समतल करता हुआ। वह स्वयं समतल रहता है। अपना जीवन भी मैंने समभाव में अवस्थित कर लिया। मैं कड़ा परिश्रम करती हूँ पर थकती नहीं हूँ—यही गुर मेरे जीवन का सहारा है। जीवन के प्रति मेरी रुचि का यही कारण है।"

सुरेश और प्रमिला ध्यान से पद्मा की बाते सुन रहे थे। प्रमिला ने कहा :

"अद्भुत है आपकी जीवन-कहानी पद्मा देवी, इससे तो बहुतों को राह मिलेगी।"

"मेरी जीवन-गाथा अधूरी रहेगी प्रमिला रानी, यदि मैं कामरेड कैलाशचंद्र का उल्लेख न करूँ। एक बात कहूँ—जीवन में मैं न जाने कब तक अन्धेरे में भटकती रहती यदि कामरेड कैलाश का सम्बल मुझे न मिलता। मेरे हृदय की सारी दुर्बलता को दूर करने का श्रेय तो इन्हीं को है।"

कैलाश अब तक चुप था। अब उसने कहा : "प्रमिला रानी, एक बात मैं भी कहूँ—कस्तूरी मृग नहीं जानता कि सुगन्ध उसी में है।"

प्रमिला खिलखिला कर हँस पड़ीं। चाय खत्म हो चुकी थी। सुरेश ने

कहा : "पद्मा देवी, आपको यदि आज कोई काम नहीं तो चलिए पिक्चर देखी जाय—ओडियन में टाल्सटाय की मशहूर पुस्तक—वार एण्ड पीस के आधार पर पिक्चर लगी हुई है।"

"कामरेड कैलाश यदि आज बद परहेजी पर आमादा हो जायँ तो मुझे कोई उज्र नही है।"

प्रमिला देवी ने कुछ अनुनय भरे स्वर में कहा : "मान जाइए कामरेड, देखिए पद्मा देवी राजी हो गई हैं।"

"खैर, आपकी खातिर आज बद परहेजी ही सही। चलिए।"

सब लोग प्रसन्नचित्त उठकर ओडियन की ओर पैदल ही टहलते हुए चल दिए।

३५

कवि का नाम गोविन्दराम था। उपनाम था उसका 'अतृप्त'। वह लाहौर में ट्यूशन करता था। और एक दैनिक पत्र के कार्यालय में भी काम करता था। परन्तु काम उसका मनमौजी था। कुछ तो अपने खराब स्वास्थ्य के कारण और कुछ तबियत की रुझान के कारण वह सभी कामों से लापरवाह था। पेट के लिए उसे काम करना पड़ता था, पर काम में उसका जी नही लगता था। विभाजन हुआ तो वह औरों के साथ जीवन के भोग भोगते हुए दिल्ली चला आया था। अस्पताल जाने से प्रथम वह किंग्सवे शरणार्थी कैम्प में रहता था। वहीं उसकी सरला के पिता, माता और सरला से जान-पहचान हो गई थी। सरला के पिता की बीमारी में उसने बहुत सेवा की थी। परन्तु स्वयं बीमार होने पर वह किसी पर भार नहीं बन इरविन अस्पताल में आ पड़ा था। अब अस्पताल से निकलकर वह सीधा किंग्सवे कैम्प में गया। सरला की माँ उसे देखकर प्रसन्न हुई। वह बहुत बीमार थी। चारपाई से उठ नही सकती थी। उसने आते ही पूछा :

"सरला कहाँ है ?"

"वह तो काम पर गई है। रोज तो अब तक आ जाती थी। आज बहुत

देर हो गई । अभी तक नही आई ।"

"लेकिन माँ जी, तुम तो बहुत बीमार हो । दवा कुछ ले रही हो या नहीं ?"

"आठ दिन मे यहाँ डाक्टर आता है, वह जो कुछ कडुआ-मीठा दे देता है, बस वही दवा है । पर उससे लाभ कुछ नही हो रहा ।"

"लाभ उससे क्या होता, उस पाजी डाक्टर के भरोसे मै रहता तो बस मर ही चुका था, पर मेरी दोस्ती एक अच्छे भलेमानुस डाक्टर से हो गई है । तुम जरा चल सको तो मै तुम्हें उसे दिखा लाऊँ ।"

"कितनी दूर है बेटा ?"

"दूर तो है । पर धीरे-धीरे चला जा सकता है ।"

"कैसे चल सकती हूँ ? रिक्शे के पैसे भी नही हैं ।"

"खैर, कल तक मै कुछ बन्दोबस्त करूँगा, तुम चिन्ता न करो । मै जरा इधर-उधर घूम आता हूँ, तब तक सरला भी आ जायगी ।" वह उठकर चला गया ।

सरला बड़ी देर में आई । आज उसे तनख्वाह मिली थी । कुछ आवश्यक सामान खरीद लाई थी । परन्तु उसके चेहरे पर उदासी छाई हुई थी ।

"क्या बात है बेटी, उदास क्यों है ?"

"यों ही माँ, बात कुछ नही है ।" सरला ने फीकी हँसी हँसकर माँ को टरका दिया । वह जल्दी से जाकर दूध ले आई ; और चूल्हा जलाकर माँ के लिए दूध गर्म करने लगी । कवि आकर चारपाई पर बैठ गया । सरला के चेहरे पर मुस्कान आई । उसने कहा : "अस्पताल से कब छुट्टी हुई ?"

"आज सुबह ही छुट्टी हो गई थी । दिन भर घूमता-फिरता रहा । थोड़ी देर पहले आया था । सुना, तुमने नौकरी कर ली है ?"

"हाँ भाई, पेट के लिए कुछ करना तो ज़रूरी था ।"

"चाहता तो मैं भी हूँ कि कुछ करूँ, पर कुछ करते-धरते बन नही पड़ता है ।"

सरला मुस्कुराकर चुप हो गई । माँ को दूध पिलाकर उसने चाय चढ़ा दी । उसने कहा : "चाय बना रही हूँ गोविन्द भाई, चले मत जाना !"

"लेकिन चाय क्यों, खाना बनाओ ।"

सरला हँस पड़ी। उसने कहा : "अच्छा, आज शायद पेट में चूहे दौड़ लगा रहे हैं।"

"क्या किया जाय, मजे में था मै अस्पताल में, दूध भी मिलता था, और खाना भी बुरा न था। पर दूध था कोरा सफेद पानी। नालायकों ने जल्दी ही खदेड़ दिया।"

"तो क्या अस्पताल में ही घर बसाने का इरादा था ?"

"घर तो खैर क्या बसाता। लेकिन जो दिन कटते, अच्छा था।"

"पर लाहौर में तो तुम अखबार के सपादक थे। यहाँ क्यों नही कही चिपक जाते ?"

"एक-दो जगह गया था अस्पताल जाने से पेश्तर। पर सब जगह कोरा जवाब मिल गया। दिल्ली में तो मकड़ी की तरह आदमी भर गए हैं। मुझे तो यह शहर नहीं, आदमियों का जंगल मालूम पड़ता है।"

"और लाहौर ?"

"वाह, लाहौर तो ठाठ का शहर था।"

सरला ने चाय का प्याला कवि के आगे रख दिया। और स्वयं सब्जी काटने बैठ गई।

कवि ने कहा : "यह क्या ? तुमने चाय नहीं पी ?"

"मैं तो चाय पीती नहीं।"

"तो फिर क्यों बनाई ?"

"तुम्हारे लिए।"

"मैंने तो मना किया था। खाना बनाने को कहा था।"

"बस दस मिनट में खाना बनाती हूँ। तुम तब तक चाय से आँतों को बहलाओ।"

"सोचता हूँ, अब मैं भी नौकरी कर ही डालूँ।"

"अच्छी बात सोची है। जरूर कर डालो गोविन्द भाई।"

"कल माता जी को एक डाक्टर को दिखाना है।"

"किस डाक्टर को ?"

"एक डाक्टर से दोस्ती की है मैंने।"

"डाक्टर-वकील और दोस्त !"

"खैर, यह वैसा डाक्टर नहीं है। कल ले चलेंगे माँ जी को।"

सरला को इस समय रश्मि की याद आ रही थी। उसकी आँखे डबडबा आईं। देर तक उसकी बोली नहीं फूटी। कवि ने कहा : "क्या सोचने लगी ? रिक्शे के पैसों का बन्दोबस्त हो जायगा, चिन्ता न करो।"

"नहीं, पैसे मेरे पास हैं, आज तनखाह मिली है।"

"वाह, तब तो फिक्र की कोई बात ही नही है, लेकिन आज बहुत देर कर दी तुमने, माँ जी बहुत घबरा रही थीं। क्या दफ्तर में बहुत देर तक काम करना पड़ता है ?"

"नहीं, दफ्तर से तो चार बजे ही छुट्टी मिल गई थी। एक जगह चली गई थी।"

"कहाँ ?"

"रमेश बाबू के घर उनकी पत्नी से मिलने।"

"यह रमेश बाबू कौन है ?"

"हमारे मैनेजर हैं। एक तौर पर हमारे मालिक ही है।"

"अच्छा, तो मेल-जोल बहुत बढ़ गया है ?"

"यह बात नहीं है। कवि बाबू, उनसे हमारी लाहौर की मुलाक़ात है। लाहौर में ही वह भी रहते थे।"

"तब तो खूब ख़ातिर हुई होगी ? खा-पीकर आई हो ? इमी से चाय नही पी तुमने !"

"चाय तो मैं पीती ही नही।"

"तो मिठाई खाई होगी!?"

"न, मिठाई भी नहीं खाई।"

"अरे, पहली बार वहाँ गई, और उन्होंने जरा मुँह जूठा भी नही कराया ? एकदम जंगली हैं वह लोग !"

"नहीं, बहुत सज्जन हैं। उनकी पत्नी ने दो रुपए मुझे दिए कि मिठाई खाना।"

"लेकिन तुमने वे रुपये...?"

"नहीं ले सकी।" सरला का कण्ठ भारी हो गया।

"अच्छा किया तुमने सरला। ये बदमाश बड़े आदमी दया का बड़प्पन

दिखाने में बड़े होशियार होते हैं।"

"तो भाई, बड़े आदमी तो वह है ही। फिर, मैं तो उनकी नौकर ठहरी। उन्होंने समझा, नौकर है तो यों ही सलाम करने आई होगी, इसी से मिठाई खाने को उन्होंने दो रुपए दिए थे।"

"तो तुमने वापस क्यों कर दिए ?"

"मैं मिठाई खाती ही नहीं।"

"तो और काम में आते। दो रुपए बुरे क्या थे ?"

"काम के लायक रुपए मेरे पास थे—तनख्वाह आज ही मिली थी।"

कवि चुपचाप बीड़ी निकालकर धुआँ फेंकने लगा। सरला ने कहा :

"एक बात पूछूँ, कवि भैया !"

"पूछो।"

"तुम्हें यदि रुपए मिलते तो तुम ले लेते उन्हें ?"

"जरूर ले लेता, पर जानती हो, क्या करता मैं ?"

"क्या करते ?"

"उन दो रुपयों की मिठाई लाकर उन्ही को दे देता। कहता—लो कुत्तों को खिला दो।"

सरला ने जवाब नहीं दिया। उसका मुँह पानी भरे वर्षोन्मुख बादल के समान भारी हो गया। वह जल्दी-जल्दी आटा गूँधने लगी।

फिर एकाएक मुँह उठाकर उसने कहा :

"एक बात जानते हो कवि भैया ?"

"कौन बात ?"

"इन्हीं रमेश बाबू से मेरी सगाई तै हो गई थी। शादी में दो महीने बाकी थे कि हमें भागना पड़ा।"

"अरे ?"

"उस दिन अकस्मात् जब मैने उन्हें मैंनेजर की कुर्सी पर बैठे देखा, तो मेरा दिल धड़कने लगा। पर उन्होंने मुझे पहचान लिया, मेहरबानी का व्यवहार किया। अब भी दफ्तर में वह मेरा ख्याल करते हैं। पंजाब छोड़ने के बाद कवि भैया, मैं दो ही आदमियों को सदा याद करती रही—एक अपने रश्मि भैया को दूसरे उन रमेश बाबू को, जिनसे मेरा ब्याह हो रहा था। वह खुद आकर मुझे देख

और पसन्द कर गये थे। दस-पांच खत भी लिखे थे। वे खत मेरे रक्त में घुल-मिल गए। और उनके शब्दों ने मुझे कभी चैन से न सोने दिया। मैं सदैव सोचा करती थी—क्या यह संभव है कि हमारी-उनकी फिर मुलाक़ात इस ज़िन्दगी मे हो सकती है। और उस दिन जब मुलाकात हुई तो किस परिस्थिति मे ? मालिक और नौकर के रूप में। एक बार तो उन्हें देखते ही मेरा हृदय धड़कने लगा। परन्तु जब उन्होंने शान्तिपूर्वक मुझे मेरी नौकरी की कुर्सी पर बैठा दिया तो मैं सब कुछ समझ गई। सब स्वप्न समाप्त हो चुके थे। पीछे पता लगा—उनका ब्याह हो गया है—जी न माना तो हठकर के उनकी पत्नी को देखने आज चली ही गई।

"बड़ी सुन्दर हैं उनकी पत्नी—परन्तु कतना घमण्ड है उनमें। उन्होंने मुझ जैसी तुच्छ स्त्री को आदरपूर्वक खिलाना-पिलाना अपनी शान के ख़िलाफ़ समझा। और दो रुपया इनाम देने की कृपा की।"

"हूँ !" कवि ने बीड़ी नाली में फेंक दी। फिर कहा : "और रमेश यह सब देखता रहा ?"

"क्या करते वे ? मुझे मेरी नौकरी की कुर्सी पर तो उन्होंने ले जाकर बैठाया था।"

"कमीना कही का, जानवर !"

सरला हँस दी। उसने कहा : "यहाँ बैठकर जबान गन्दी करने से क्या होगा, कवि भैया। कहीं उन पर कविता न कर बैठना।"

"कविता, क्या कविता में पिशाचों का वर्णन होता है सरला बहिन ? खैर, मगर रुपए उन्होंने रख खूब लिए।"

"जल्दी नहीं रखे, बहुत इसरार किया। पर मैं उन्हें वहीं देहरी में रखकर चली आई। मेरा मन इतना ख़राब हो गया था कि चलती बार उन्हें प्रणाम भी न कर सकी।"

"बहुत अच्छा किया सरला बहिन, ये बड़े लोग तो सब ऐसे ही हैं।"

"सब तो ऐसे नहीं हैं। हमारे सेठ जी की लड़की पद्मा ही एक इसका अपवाद है। जब उससे मिलती हूँ—मालूम ही नहीं होता कि वह मालिक है और मैं नौकर। दो बार तो आकर माँ को देख गई है।"

"तो उन्हें मेरा प्रणाम कह देना बहिन ! लेकिन अब खाने में देर कितनी

है। मुझे एक बार जरा जाना पड़ेगा।"

"कहाँ ?"

"वहीं। डाक्टर के पास। मैं जरा उनसे कह आऊँ कि कल अपनी माँजी को लेकर उन्हें दिखाने आऊँगा।"

"कल ही कह-सुन लेंगे।"

"नहीं ! वह मरीजों में फँस गए तो दो बजेगे। मै उन्हे जानता हूँ, मरीजों में लग जाते हैं—खाना-पीना भूल जाते हैं।"

"तुम्हें क्या वह याद रखेगे—बहुत मरीज आते है।"

"इसी से तो जरा पहले कह आता हूँ। देखूँगा—कुछ मुरव्वत है भी या ऐसी ही बातें थीं।"

सरला ने जल्दी-जल्दी फुलके कवि को खिला दिए। रूखा-सूखा भोजन, प्रेम और ममता से सम्पन्न। खाकर कवि ने उठते हुए कहा : "अब चला। सुबह आऊँगा, तैयार रहना।"

"रात को कहाँ सोओगे ?"

"कहीं भी। इसकी क्या चिन्ता। पेट तो कल तक को भर ही गया", कवि हँसा, और लम्बे-लम्बे डग बढ़ाते हुए चल दिए।

३६

आठ बज गए। लेकिन गोविन्दराम का अभी तक कही पता न था। "दस बजे आफिस जाना है। अब डाक्टर के यहाँ जाने का समय कहाँ रहा।" सरला बड़बड़ाती हुई बरांडे में आ खड़ी हुई। एक टांगा आकर रुका और गोविन्दराम ने लपकते हुए आकर कहा :

"डाक्टर आए हैं।"

सरला ने मुँह उठाकर देखा। उसके मुँह से चीख निकल गई—"भैया !" रश्मि क्षण भर अवाक् खड़े रहे। उनके हाथ से स्टेथस्कोप गिर गया। दौड़-कर उन्होंने सरला को वक्ष से लगा लिया। सरला फफक-फफक कर रोने लगी।

पहले रोगिणी ने रश्मि को नहीं पहचाना। जब रश्मि ने माँ कहकर उन्हें सम्बोधन किया तो उत्तेजना के मारे वह उठ खड़ी हुई, उसका अंग थर-थर काँपने लगा। काँपते होठों से टूटते शब्द निकले—"रश्मि—मेरा लाल—मेरा बेटा।" और वह बेहोश हो गई।

रश्मि ने कहा : "कवि, टाँगा रोक रखना।"

"टाँगा खड़ा है।"

रश्मि माँ को गोद मे लेकर बैठ गए। थोड़ी ही देर मे वृद्धा को होश आ गया। आँसू थे कि तीनों की आँखों में थमते न थे। न किसी के मुँह से बोल फूटते थे। मरे जी उठे थे—बिछुड़े फिर मिले थे। पूरे पाँच साल बाद। कैसी-कैसी अघट घटनाएँ घटीं, कैसी-कैसी अनहोनी हो गई। रश्मि की आँखों में पाँच वर्ष का अतीत घूम रहा था। और वृद्धा बार-बार उनके मुंह पर हाथ फेर रही थी।

"अब चलो माँ, घर चलें, कवि तुम दूसरा तांगा ले लेना और सब सामान लादकर क्वार्टर में चले आना। मैं माँ को लेकर जा रहा हूँ।" उन्होंने अनायास ही अपनी बलिष्ठ भुजाओं में वृद्धा माता को उठा लिया और टाँगे में लिटा दिया। उन्होंने कहा :

"आओ सरला।"

"तुम चलो भैया, मै सामान लेकर आती हूँ। कैम्प मैनेजर को झोंपड़ी सौंप देनी है।"

"अच्छा।" कहकर रश्मि ने ताँगा चलाने का संकेत किया। ताँगा सड़क पर दौड़ चला।

ग्यारह बज चुके थे जब सरला आफिस पहुँची। वह अपनी सीट पर न जाकर सीधे रमेश के कमरे में पहुँची। रमेश ने सिर उठाकर देखा। कहा : "बैठो।"

सरला एक कुर्सी पर बैठ गई। रमेश कुछ देर तक अपने कागज़ उलट-पुलट करते रहे। सरला ने कहा :

"आप शायद बहुत व्यस्त है, रमेश भाई।"

"हाँ, नहीं," उन्होंने फाइल एक ओर सरकाते हुए कहा : "आज बहुत देर कर दी?"

"हाँ, ज़रा देर हो गई।"

रमेश ने एक बार घड़ी पर नज़र डाली फिर कहा : "कोई बात नहीं। कुछ कहना है ?" उन्होंने फिर फाइल उठाई।

"जी, एक अर्ज़ी है।"

"क्या ?" रमेश ने आँखें उठाईं।

"नौकरी अब मैं न कर सकूंगी रमेश भाई, आपने जो कृपा मेरे ऊपर की, उसके लिए कृतज्ञ हूँ।"

"क्या बात है सरला। कल जो बेवकूफी रजनी ने की उससे नाराज़ तो नहीं हो गईं तुम ?"

"नहीं, नाराज क्यों होऊँगी भला। मुझ ग़रीब लड़की पर तरस खाकर उन्होंने दो रुपये दिए। अफसर की बीवी थीं वह तो। उन्होंने अपने योग्य ही काम किया।"

रमेश झेंप गया। उसने कहा : "नही, नहीं बात यह है कि वह तुम्हें जानती नहीं। इत्तफाक की बात यह कि मैं भी तुम्हारे सम्बन्ध में उससे कुछ न कह सका, इसीसे यह गलतफहमी हुई। कुछ दूसरी बात मत सोचना। उसने तुम्हें फिर बुलाया है।"

"खैर, आऊँगी किसी दिन। अच्छा नमस्कार।"

"तो क्या सचमुच तुम जा रही हो !"

"हाँ, लेकिन मैं आशा करती हूँ कि इतने दिन मैंने काम मे जो त्रुटियाँ की हों—उनके लिए मुझे आप क्षमा कर देंगे।"

"परन्तु सरला, बड़ी अच्छी नौकरी तुम छोड़ रही हो। मैने तो कल ही सेठ जी से तुम्हारे वेतन की वृद्धि की बात की है।"

"मैं तो पहले ही आपकी कृपा के लिए कृतज्ञता प्रकट कर चुकी हूँ।"

"लेकिन अब तुम क्या करोगी ? तुम्हारी माता बीमार है। कैसे गुजर-वसर होगी ?"

"अब यह सब भैया सोच-समझ लेंगे ?"

"कौन ?"

"रश्मि भैया।"

"रश्मि ? कहाँ है वह ? क्या यही दिल्ली में है ? तुमने तो कहा था..."

"हाँ, हमे तो कुछ भी आशा न थी। पर आज ही वह मिल गए।"

"कहाँ ?"

"इरविन अस्पताल मे है, असिस्टेंट हाउस सर्जन।"

"बड़ी खुशी की बात है—सरला देवी आपको मैं बधाई देता हूँ।"

"यह क्या, रमेश बाबू, सरला देवी कौन ? और 'आप' कौन ? मैं तो आपकी नौकरी कर चुकी हूँ। आपकी श्रीमती पत्नी से दो रुपया इनाम पाने का सौभाग्य प्राप्त कर चुकी हूँ। अब तक आप मुझे—सरला और तुम कहकर ही पुकारते रहे है। अब भी वैसा ही रहने दीजिए।"

रमेश बहुत लज्जित हुए। उनकी आँखें ऊपर नही उठती थी। उन्होंने अनुताप के स्वर में कहा :

"आप क्षमा करना सरला देवी, मेरी तो आपके प्रति सदा ही सद्भावना रही है। और अब रश्मि के मिल जाने की सबसे ज्यादा खुशी मुझी को हुई है। विश्वास करो—रजनी भी सुनकर खुश होगी।"

"मैं उनके प्रति भी पेशगी कृतज्ञता निवेदन करती हूँ। उनसे किसी अवसर पर कह देना कि घटना कुछ दूसरी हुई होती, मै उनके स्थान पर होती—और वह मेरे स्थान पर रहती हुई मुझसे मिलने आती—तो मैं उन्हें दो रुपया इनाम देकर उनका अपमान न करती। उन्हे आदरपूर्वक बैठाकर खातिर-तवाजा करती। परिस्थितियाँ तो आती ही रहती हैं, मनुष्य को उनका दास तो न होना चाहिए। फिर आदमी छोटा क्या और बड़ा क्या ? मै तो प्रेम के कारण ही उनसे मिलने गई थी, एक भावना के वशीभूत होकर। कुछ उनका अनुग्रह प्राप्त करने और इनाम लेने के लिए नही।"

"मैं क्षमा माँगता हूँ सरला देवी ! उसकी ओर से भी और अपनी ओर से भी।"

"आपको मैं क्षमा करती हूँ—रमेश बाबू ! रजनी देवी यदि कभी क्षमा-याचना करेंगी तो देखा जायगा। नमस्कार।" सरला उठकर चल खड़ी हुई। रमेश जड़ बने जैसे के तैसे बैठे रहे। इसी समय पद्मा देवी ने कमरे में प्रविष्ट होकर कहा : "अरे, सरला बहिन, मैं तो तुम्हारे पास ही आई थी।"

सरला ने नमस्कार करते हुए हाथ जोड़कर हँसते हुए कहा :

"लेकिन यह तो मेरा कमरा नहीं है।"

"तुम्हारी सीट पर तुम्हें ढूँढ श्राई हूँ।" पद्मा ने सरला के गले में बाँहे डालकर कहा। "देखो, श्राज मेरी सालगिरह है, शाम को पार्टी है, तुम्हें श्राना होगा।"

"अच्छा कौन-कौन श्रा रहे है पार्टी मे !"

"ए. बी. सी. डी. सब श्रा रहे हैं।"

"ए. बी. सी. डी. कौन ?"

"ए. राजा-रानियाँ, बी. सेठ-सेठानियाँ, मी हम-तुम, श्रौर डी. मिहनत-कश मजदूर।"

"वाह-वाह, मजेदार पार्टी होगी। मै जरूर श्राऊँगी।"

"ज़रा जल्दी श्रा सको तो कुछ मदद मिल जायगी।"

"जल्दी ही श्राऊँगी।"

सरला जाने लगी, तो रमेश ने कहा : "सरला ने हमारी नौकरी छोड़ दी है पद्मा देवी।"

"श्ररे ? सुनो, सुनो, सरला यह क्या बात है ? कुछ दिक्कत हुई क्या ?"

"जी नहीं, एक शुभ समाचार है।"

"तो श्रब तक क्यों नहीं सुनाया ?" पद्मा ने फिर सरला के गले में बाँहें डाल दी।

सरला की श्राँखों में श्राँसू श्रा गए। उसने कहा—"भैया मिल गए।"

"श्रच्छा ! कब ?"

"श्राज ही सुबह !"

"यह कैसे हुश्रा ?"

"बस संयोग ही समझिये। वह यहाँ इरविन श्रस्पताल मे श्रसिस्टेट हाउस सर्जन हैं। श्रौर श्राज हम सब उनके पास पहुँच गए हैं। मैं सामान पहुँचा कर सीधी पहले रमेश बाबू के पास श्राई।"

"तो चलो। भैया को मैं भी देख श्राऊँ। माताजी को मुबारकबादी भी दे श्राऊँ।"

पद्मा सरला का हाथ पकड़कर चल दी। बाहर एक रिक्शा खड़ा था। उसी पर वह सवार हो गई। रिक्शा इरविन श्रस्पताल के क्वाटर्स की श्रोर दौड़ने लगा।

३७

निस्संदेह यह ए. बी. सी. डी. पार्टी बडी अजीब-सी थी। ए श्रेणी के मेहमानों को लेकर बैठी थी रेणुका देवी। इस ग्रुप में थे—राजा हरबख्शसिंह, नवाब बब्बरपुर, सुरेशसिंह और मिसेज खन्ना। बी ग्रुप में थे सेठ पुरुषोत्तम और उनके साथी मिलों के स्वामी—करोड़पति लोग। सी ग्रुप में थीं सरला; प्रमिला रानी और पद्मा की सहेलियाँ, जिनका नेतृत्व कर रही थी पद्मा देवी। डी ग्रुप में फटेहाल फ़ाकेमस्त कवि गोविन्दराम, डाक्टर रश्मि, कामरेड कैलाशचन्द्र और कुछ दूसरे कम्युनिस्ट तरुण।

सभी अपनी-अपनी सरगर्मियों में थे। और अपने-अपने विषयों की वार्तालाप कर रहे थे। और बढ़-बढ़कर मिठाइयों पर हाथ साफ कर रहे थे। सेठों के ग्रुप में उद्योग-धन्धों की बातें चल रही थी। सेठ पुरुषोत्तम कह रहे थे : "अभी पाँच ही वर्ष पूर्व भारत ने औपनिवेशिक स्थिति से मुक्ति पाई है। आज वह संसार का सबसे बड़ा लोकतन्त्री देश है। रूसी या पश्चिमी गुट से न जुड़ा हुआ यह एकमात्र सबसे बड़ा देश है।" "इस महान् देश में लोकतन्त्री व्यवस्था को बनाये रखने की दृष्टि से उसकी प्रगति और स्थिरता को प्रोत्साहित करने का महान् उत्तरदायित्व अमेरिका पर है।" एक दूसरे माडर्न उद्योगपति ने कहा।

"आपका संकेत शायद उस ऋण की ओर है जो अमेरिका ने पंचवर्षीय योजना को सफल बनाने के लिये भारत को दिया है?" एक तीसरे उद्योगपति कह रहे थे।

पुरुषोत्तम सेठ ने अपने मित्र का समर्थन करते हुए कहा : "इसमें तो सन्देह नहीं कि इससे भारत की विदेशी मुद्रा स्थिति दृढ़ होगी।"

"मैं तो यह समझता हूँ कि यह ऋण एक ऐसी वस्तु है, जो भारत को अन्त में एशिया का वित्तीय साधन बना सकती है।"

इस पर एक सज्जन ने भौंहों में बल डालकर कहा : "आप क्या यह तो नहीं कह रहे कि भारत की स्थायी सरकार की स्थापना की दृष्टि से मुद्राओं

का स्थायित्व राजनैतिक समस्याओं की अपेक्षा भी अधिक महत्वपूर्ण है ?"

"निस्संदेह मै यही कह रहा हूँ महाशय !' पूर्व वक्ता ने मेज पर घूंसा मारकर कहा :

"कि नेहरू के नेतृत्व के अन्तर्गत भारत में एक स्थायी सरकार विद्यमान है। भारत की सरकारी नौकरी में युवा, शिक्षित और शांत-शिष्ट व्यक्ति हैं, जो छोटी आयु से यह सेवा करते रहे है। भारत की मुद्रा की स्थिति अच्छी है। यहाँ कीमतें भी अधिक नही बढी है तथा यहाँ मुद्रा-विस्तार भी कम है। और अच्छी बैंकिंग व्यवस्था है। इसके अतिरिक्त भारत सरकार सरकारी या गैर सरकारी विदेशी पूंजी के प्रति घृणा की भावना नहीं रखती।"

पुरुषोत्तम सेठ ने गंभीर मुद्रा में कहा : "नेहरू सरकार का विश्वास है कि गैर सरकारी उद्योगों की वृद्धि से भारत को आर्थिक और राजनैतिक स्वतन्त्रता तथा आत्मनिर्भरता प्राप्त करने का सबसे अधिक अवसर मिल सकता है।"

"इसके अतिरिक्त एक बात और है।" तीसरे सज्जन बोले : "इस ऋण मे अन्य देशों में हुए मुद्रा-विस्तार के संकट मे भारत बच जायगा। और एशिया के क्षेत्र में भारत की स्थिरता की अभिवृद्धि होगी।"

"आप शायद अमेरिका को आवश्यकता से अधिक महत्व दे रहे है।"

"जी नही। मै यह कह रहा हूँ कि एक विकासोन्मुख देश के विकास-कार्य में सचाई के साथ अमेरिका उसका साथ दे रहा है और मैं समझता हूँ कि भारत अभी समृद्ध न होते हुए भी समृद्ध होने की क्षमता रखता है। तथा आत्म-सहायता और आत्मशासन की राह पर है।"

"खैर, आप भारत की बात छोड़िये। परन्तु आप क्या यह समझते हैं कि इस समय अमेरिका की अर्थ-व्यवस्था बुनियादी रूप में ठोस आधार पर स्थित है? क्या उसे मुद्रा-विस्तार का भय नहीं है ?"

"अमेरिका का प्रशासन आर्थिक कमजोरी न आने देगा—मैं तो यही समझता हूँ।"

"तो फिर क्या कारण है कि जब संसार में कहीं भी युद्ध नही हो रहा है—अमेरिका युद्धोद्योगों को बढ़ाये जा रहा है। शस्त्रास्त्रों के भयानक से

भयानक निर्माण किये जा रहा है ? और इस दृष्टि से वह आज संसार का ख़तरा बना हुआ है ।"

"तो आप इसका क्या कारण समझते है ?"

"मैं तो यह समझता हूँ कि वह भयकर मदी की बाढ़ से बचने के लिये यह सब कर रहा है। ऐसा न करे तो उसपर ऐसा संकट आ सकता है जिसमे उसका निस्तार नही है ।"

"आखिर आप कौन-से सकट की बात कर रहे हैं महाशय ?"

"मै आपको यह बताना चाहता हूँ कि संसार के अन्य सब देशों के समान अमेरिका मे भी आज केवल दस प्रतिशत आदमी अपनी सरकार के साथ है। नब्बे प्रतिशत श्रमिक कम्युनिस्ट विचार वाले हैं। आज संसार का उपनिवेश-वाद दम तोड़ रहा है और अमेरिका निरुपाय अपने देश के श्रमिक वर्ग को युद्धोद्योगों में फुसलाकर अपना चर्खा चला रहा है। और उसने इतने अनावश्यक शस्त्रास्त्र तैयार कर लिये है कि जिनकी कभी आवश्यकता ही न पड़ेगी। खासकर इसलिये भी कि संसार के नई पीढ़ी के तरुण अब युद्ध करना नही चाहते। इसलिए वह मूर्ख और भयभीत राष्ट्रों को और भी भयभीत करके शस्त्रास्त्र उधार दे रहा है। भारत युद्ध-विरोधी देश है। इसलिये वह भारत की नकद नारायण से पूजा कर रहा है।"

पुरुषोत्तम सेठ अपने इस उद्योगपति मित्र की यह आलोचना सुनकर ज़ोर से हँस पड़े। उन्होंने कहा : "चाहे जो भी हो, लेकिन अमेरिका दीर्घकालीन आधार पर अपनी आर्थिक स्थिति स्वस्थ रखने का प्रयत्न कर रहा है। मेरा ख्याल है वह १९३० जैसी स्थिति नहीं आने देगा।"

जो सज्जन अमेरिका की प्रशंसा कर रहे थे वह अप्रतिभ होकर चाय की चुस्की लेने लगे।

डी ग्रुप में कैलाश कह रहा था : "इस साल दस लाख लड़के-लड़कियों ने मैट्रिक परीक्षा दी है। इनमें करीब छै लाख पास हो जाएँगे। और उन्हें वास्तविक जीवन की कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। हो सकता है कि उनमें से लाख-दो लाख उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिये कालेजों में चले जायँ। परन्तु बाकी चार लाख को तो रोजी कमाने की चिन्ता में ही जुट जाना होगा।"

रश्मि ने कहा : "आप ठीक कह रहे हैं कैलाश बाबू, असल बात यह है कि

आधुनिक शिक्षा-प्रणाली चलाई है अंग्रेजो ने। वे कारोबार चलाने या ऊँचे सरकारी पदों के लिये तो अपने देश के युवकों को ले आते थे। पर कलम घिसने के लिये उन्हे यही से भरती करनी पड़ती थी।"

"हाँ, यह तो मानना ही पडेगा कि अंग्रेजों की चलाई हुई शिक्षा-प्रणाली ने बड़े-बड़े योग्य क्लर्क पैदा किए। एक ज़माना था कि मैट्रिक का सार्टिफिकेट तहसीलदारी की गारंटी थी। परंतु जनाब, अब जमाना बदल चुका है। अंग्रेज भी जा चुके है, हमारी किस्मते अब हमारे ही हाथ में है। अब हम हजारो मील दूर बैठे अंग्रेजों पर इलज़ाम थोपकर अपनी जिम्मेदारी से बरी नही हो सकते।"

"आपकी बात मै समझ रहा हूँ।" रश्मि ने गम्भीरता से कहा। कैलाश कह रहा था :

"हर साल चार लाख युवको के लिये क्लर्की की जगहे खाली रखने की व्यवस्था कोई सरकार नही कर सकती। व्यवसाय-क्षेत्र में भी हर साल इतने क्लर्कों की खपत असम्भव है। अब ये चार लाख युवक जब अपनी ज़िन्दगी को बर्बाद होता देखेंगे तो सारा दोष समाज या सरकार ही के सिर तो थोपेंगे।"

"बेशक।"

"और ये वह लोग न होंगे जो अपने दुःखों को भाग्य का दोष समझकर, हाथ पर हाथ रख आकाश की ओर ताका करें। इनके पाँव धरती पर है। यदि समाज मे इन्हें स्थान न मिला तो ये विद्रोह करेंगे। क्रान्ति करेगे। और समाज को बदल डालने की चेष्टा मे उत्पात तक करने से न चूकेंगे।"

"यह बड़ी ही खतरनाक बात होगी" रश्मि ने कहा। परन्तु कवि गोविन्दराम ने रसगुल्ला मुँह में डालकर कहा : "इनमे से कुछ कवि और कुछ साहित्यकार हो जायेंगे। उनसे समाज को कोई ख़तरा न होगा।"

परन्तु कैलाश अपनी धुन मे कहता जा रहा था : "जनाब, वे ऐसा विद्रोह करेंगे कि उसकी आग में हमारी सरकार की सारी पचवर्षीय योजनाएँ नष्ट-भ्रष्ट हो जाएँगी। ये तरुण न बड़ों का अपमान करने से चूकेंगे, न कायदे-कानूनों की परवाह करेंगे। न इनके मन में किसी के लिये स्नेह-ममता होगी।"

"आप क्या समझते हैं, इसका क्या निराकरण हो सकता है ?"

"केवल एक ही निराकरण है कि शिक्षा-प्रणाली को तुरन्त बदल दिया

जाय। जिससे पढ़-लिखकर युवक-युवतियाँ मेहनतकश बनें। अपने हाथों से काम करने में अपनी मान-हानि न समझें। आप सोचिये तो एक लुहार का लड़का हथौड़ा चलाने में अपनी हतक समझता है, किन्तु चालीस रुपये की क्लर्की में शान समझता है। सरकार को चाहिए कि वह देहातों का वातावरण बदले, और जो भीड़ शहरों की ओर क्लर्की की खोज में बढ़ रही है उसे देहातों में ही जीविकोपार्जन की राह में लगाए जिससे गाँवों की दशाएँ उन्नत हों। और शहरों की भीड़-भाड़ और चारित्र्य की गन्दगी दूर हो।"

कवि ने गम्भीरता से सिर हिलाया। उसने गम्भीर मुख-मुद्रा बनाकर कहा : "कवि तो देहातों में भी मजे में कविता कर सकता है दोस्त। आपका प्रस्ताव मंजूर करने में मुझे कोई उज्र नहीं है।"

उसने खट से एक रसगुल्ला मुँह में डाल लिया।

ए ग्रुप में राजा हरबख्शसिंह चहक रहे थे। वह कह रहे थे : "भई, नेहरू तो, माफ कीजिए, आउट आफ डेट हो गए हैं। मेरा ख्याल है, उन्हें इस्तीफा देना चाहिए और नये खून को आगे आने देना चाहिए।"

"आप राजद्रोह कर रहे है राजा साहेब, आप नेहरू के खिलाफ एक शब्द नहीं कह सकते। मैं आपको चुनौती देती हूँ—बताइये तो है कोई हस्ती जो नेहरू का स्थान ले सके?" मिसेज खन्ना ने राजा साहेब को घूरते हुए कहा।

"तोबा, तोबा, आप तो धमका रही हैं, मिसेज खन्ना? मगर मेरा यह मतलब नहीं है।" राजा साहेब ने अभिनय-सा करते हुए कहा।

"खैर, तो आप अपना मतलब बयान कीजिए।" मिसेज खन्ना ने चम्मच से खेल-सा करते हुए कहा।

राजा साहेब ने कहा : "देखिए, नेहरू साहेब ने आज से चालीस साल पहले जब राजनीति में कदम रखा था तब अंग्रेज़ों की अमलदारी थी। और उन्होंने कच्चे माल की अपनी आवश्यकता की पूर्ति के लिये तमाम हिन्दुस्तान को किसानों का देश बना दिया था। किसानों की उन दिनों बड़ी दुर्दशा थी। वे जमींदारों और महाजनों के चंगुल में फँसे रहते थे और अविद्या के अन्धकार में पड़े थे। स्वाभाविक था कि नेहरू उनसे प्रभावित होते। उन्होंने किसानों के घर-घर घूमकर उनकी दुर्दशा देखी थी। परन्तु इसके बाद तो अंग्रेज़ी अमल-दारी ही में नक्शा बदल गया। पिछले दो महायुद्धों ने जो एशिया का जागरण

किया—उसने केवल यही नहीं कि रूस की लाल क्रान्ति के रक्त बीज एशिया भर में फैला दिये, अपितु भारत उद्योग-प्रधान देश बन गया। युद्धकाल में उसे भारी उत्पादन करना पड़ा। और अब तो जब से देश स्वाधीन हुआ है भारत दिन-प्रतिदिन उत्पादन-केन्द्र बनता जा रहा है। परन्तु नेहरू-सरकार ने कुछ विचित्र-सी सरकार बनाई—कुछ अमरीकन डेमोक्रेसी, कुछ ब्रिटेन का राजतन्त्र, कुछ सोवियत रूस का प्रजातन्त्र, कुछ अपनी बातें; सब मिला-जुलाकर उन्होंने एक ऐसी खिचड़ी सरकार बनाई जो पूरी तौर पर न राजतन्त्र थी—न प्रजातन्त्र। इसके अतिरिक्त अभी तक वह ब्रिटेन के साम्राज्यवादी मूलाधारों पर चलती जा रही है। पर नेहरू से सबसे बड़ी गलती यह हुई है कि वह अब तक देश को चालीस साल पुराना समझते रहे हैं, किसानों के पुराने सपनों ने उन्हें जमींदारी खत्म करने को मजबूर किया। पर उन्होंने उन मज़दूरों की ओर अभी तक आँख उठाकर भी नही देखा जो नया वर्ग किसानों से अधिक पीड़ित, दलित और असहाय अवस्था में भारतीय नगरों में सिसक रहा है। किसानों के पास अपने घर थे, खेत थे, रूखे-सूखे टुकड़े थे, ताज़ी हवा थी, खुला मैदान था, गायें थी, भैंस थीं, दूध नहीं था तो छाछ तो थी, पर इन मजदूरों के पास क्या है ? न घर, न बार, न दूध, न रोटी, न खड़े होने का ठिकाना। और हर वक्त मौत से खेलना। रात-दिन पिसना, और भूखे रहना। परन्तु इनके शोषक पूंजीपति सेठ जैसे के तैसे बने हुए है। हमारी जमींदारियाँ छिन गई, परन्तु वे आज भी करोड़ों के स्वामी बने हुए हैं।"

"आप तो राजा साहेब कम्युनिस्ट मालूम देते है।" नवाब साहेब ने कहा।

"जी नहीं, मैं एक मुश्तेगवार हूँ. ." राजा साहेब ने एक अदा से कहा। सब लोग खिलखिलाकर हँस पड़े। रेणुका देवी ने ज़रा अदा से कहा : "इसे कहते हैं, जिस पत्तल में खाना उसी में छेद करना। आप हमारे सेठ जी के रसगुल्लों पर हाथ साफ़ कर रहे हैं और उन्हीं को कोस रहे हैं।"

"तो प्लेट में छेद करने की बात कहिए श्रीमती रेणुका देवी, यहाँ पत्तल का मनहूस नाम मत लीजिए। यहाँ सब रईस लोग बैठे हैं—इसका भी ख्याल रखिए।"

"मैं ताईद करता हूँ।" चाय का सिप लेते हुए नवाब साहेब ने कहा।

"लेकिन एक बात तो राजा साहेब, मैं भी कहूँगा।"

"हम लोग बकवास करते रहे और आप प्लेटे साफ करते रहे—अब फर्माइए आप—ज़रूर कोई मीठी बात निकलेगी भीतर से।" राजा साहेब ने मुस्करा कर कहा।

"यह गणतन्त्र तो जनतन्त्र नही कहा जा सकता ?"

"मुझसे पूछिए, यह गणतन्त्र जनता का खून चूसने वाला खटमल है।" राजा साहेब ने जोश में आकर कहा। और एक सिगरेट निकाली।

"लाहौल बिलाकूबत यह क्या कलमा फर्माया आपने राजा साहेब !" नवाब साहेब ने ज़रा आश्चर्य मुद्रा मुँह पर लाकर कहा।

"क्या आप देखते नही कि यह हमारा गणतन्त्र खुदपरस्तों, तिकड़मबाजो और पूँजीवादी राष्ट्र-कर्मियों के गुटों का राज्य है ?"

"लेकिन जनाब, यहाँ तो सब काम जनता की राय लेकर किया जाता है।"

"अजी, वह सब धोखे की टट्टी है। जनता की राय किस तरह ली जाती है—ये सब हथकण्डे हमने देखे हैं।"

"तो गणतन्त्र और जनतन्त्र मे कुछ अन्तर है ?" मिसेज़ खन्ना ने कहा।

"जमीन-आसमान का अन्तर है। गणतन्त्र का सबसे भारी और सबसे प्रधान दोष तो यह है कि उसमें योग्यतम व्यक्ति को अधिकार नहीं मिलता। गुटों के प्रतिनिधियों को अधिकार मिलता है। चाहे उनमे योग्यता हो चाहे न हो। तभी तो आज हमारे इस गणतन्त्र में एक से बढ़कर एक मन्त्री कुर्सियों पर चस्पाँ है। इसके अतिरिक्त राज्य मे सिखों के, हरिजनों के, हिन्दूसभा के, व्यापारियों के, समाजवादियों के, साम्यवादियों के, जनसंघियों के, और न जाने किन-किन प्रतिनिधियो के अयोग्य भेड़-बकरियों का रेवड़ भरा पड़ा है। अंग्रेजों के राज में जिन कुर्सियों को सर फिरोजशाह मेहता, महामना मालवीय, पंजाब केसरी लाजपतराय, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, गोपालकृष्ण गोखले, श्रीनिवास शास्त्री ने सुशोभित किया था, उनपर अब दूध बेचने वाले, अखबार बेचने वाले, ईमान-धर्म बेचने वाले बैठकर ऊँघते रहते हैं। मिनिस्टरों के दिन ईद और रात दिवाली मे परिणत हो गए है। वे अपने विभाग के विषयों को नहीं जानते, अपने आफिस के कार्य-कलाप से अज्ञात है। परन्तु वे अमुक दल के प्रतिनिधि हैं, इसलिये हमारी सरकार को कहीं न कही उन्हें मिनिस्टर, गवर्नर, राज्यपाल, या खाक-बलाय कुछ बनाकर माल-मलीदे उडाने और चैन

की वंसी बजाने का प्रबन्ध करना पड़ा है। और इस प्रकार गलत रीति पर एकत्रित विरोधी तत्वों से पार्लमेन्ट भर गई है और जवाहर लाल जैसे समर्थ पुरुष भी उनके जाल में उलझ कर जनहित का कोई काम नहीं कर पा रहे है। देश में रिश्वतखोरी, चोर बाज़ारी, षड्यन्त्र, डाकेजनी, अराजकता-अव्यवस्था, असन्तोष, भूखमरी और भ्रष्टाचार बढता जा रहा है।"

नवाब साहेब ने जरा ठण्डी साँस ली। उन्होंने कहा : "आप सच कह रहे है राजा साहेब, ऐसा मालूम हो रहा है जैसे हम पठानों के अन्धयुग में पहुँच गए है। अंग्रेजी गुलामी का सुख हमें याद आ रहा है।"

"यही तो मैं कह रहा हूँ नवाब साहेब, योग्यतम आदमी पीछे फेंक दिये गये है। हिन्दू समझते है, हमारा राज नहीं है। मुसलमान समझते है, हमारा राज नहीं है। सिख, पारसी, यहूदी समझते हैं, हमारा राज नहीं है। कांग्रेस की सारी प्रतिष्ठा, सारी साख का बस दिवाला निकलने ही वाला है। उनका तप और कष्ट से संचित यश मैला और गन्दा हो चुका है। खद्दर की पोशाक हास्यास्पद और ढ़ोंग की पोशाक समझी जा रही है। जनता मे कांग्रेस विरोधी तत्त्व पनप रहे है।"

सुरेश अब तक चुप थे। उन्होंने कहा : "जी हाँ, मै भी यही बात कह रहा हूँ—राजसत्ता के विरुद्ध जो असन्तोष, अशान्ति और अविश्वास अंग्रेज़ी राज में था वही, बल्कि उससे कहीं अधिक, आज कांग्रेसी राज के प्रति उत्पन्न होता जा रहा है। इसका कारण स्पष्ट है कि यह जनता का राज नही है। जनता नही समझती कि यह हमारा राज्य है। वह अपने को अभी भी राजसत्ता से पीड़ित—असहाय प्रजा समझती है।"

"बस, आए दिन की हड़तालें, लाठी चार्ज, प्रदर्शन, जुलूस, धरने, सत्याग्रह इसी के प्रमाण है।" राजा साहेब ने दूसरी सिगरेट जलाई। सुरेश ने कहा :

"इस गणवाद में एक दोष यह भी है कि जिन गुटों के प्रतिनिधि इस गणतन्त्र को चलाते हैं, उनकी परस्पर कोई प्रेम और विश्वास की भावना नहीं होती। एक दूसरे के प्रति प्रतिस्पर्धा का भाव बना रहता है। प्रत्येक गुट अपनी छोटी से छोटी स्वार्थ कामना की पूरी सिद्धि चाहता है, और दूसरों की बड़ी से बड़ी आवश्यकता को तुच्छ समझता है।"

नवाब साहेब ने कश लगाते हुए कहा : "गोया इस गणतन्त्र की हालत

रेलगाड़ी के तीसरे दर्जे के डब्बे के समान है, जहाँ सुविधाएँ कम और असुविधाएँ अधिक होती है। जहाँ प्रत्येक आदमी अपने आराम, अपनी सुख-सुविधा का खयाल रखता है। और दूसरों को जलती आँखों से देखता है। जरा-जरा-सी बात पर लड़ाई छिड़ जाती है।"

"जी हाँ, इसी से गणतन्त्र संघर्षो, द्वेषो, आपाधापी और कारस्तानियों और अन्धेरगर्दी का अखाड़ा बना रहता है। इसमें सब अपनी-अपनी धनाश्री अलापते हैं, दूसरे की नहीं सुनते।"

मिसेज़ खन्ना ने कहा : "लेकिन जनतन्त्र को आप क्या समझते हैं ?"

"जनतन्त्र उस व्यवस्थित सद्गृहस्थ कुटुम्ब के समान है, जो हृदय के गहरे स्नेह, विश्वास, त्याग, सहानुभूति और सहयोग के वातावरण से परिपूर्ण है। जहाँ भाभियाँ हँसकर प्यार बखेरती है, पत्नियाँ सौभाग्यचरण से आंगन को पवित्र करती हैं। बच्चे आनन्द की किलकारी भरते है। पकवान बनते हैं। त्योहार आते है, संगीत होता है, आनन्द और शांति का समुद्र हिलोरे मारता है। छोटे से बड़े तक मर्यादा के साथ बँधे रहते हैं। छोटे बड़ों के चरण छूने मे पुण्य मानते और बड़े छोटों पर आशीर्वाद की वर्षा करते हैं। छोटा बड़ा होने का किसी को हर्ष-विषाद नही होता। यही जनतन्त्र मनुष्य का सच्चा जनतन्त्र है।"

मिसेज़ खन्ना ताली पीटकर जोर से हँसने लगी। नवाब साहेब ने भी उनका साथ देते हुए कहा : "वाकई राजा साहेब, आपको तो एकदम मिनिस्टर बना देना चाहिए—क्या वजह है कि आप पर उनकी अभी तक नज़र नही पडी। हीरा हैं आप हीरा।"

राजा साहेब मुँह खोल ही रहे थे कि हँसते हुए सेठ पुरुषोत्तम और पद्मा देवी ने आकर उनकी मिजाजपुरसी की। राजा साहेब ने खड़े होकर कहा : "इस गुट का मुखिया होने के नाते मै सबकी ओर से, मिसेज़ खन्ना की ओर से भी—मिस पद्मा, आपको आशीर्वाद देता हूँ।"

"लेकिन मेरे पास होने की खुशी में आपने जो मिठाई भेजने का वादा किया था उसे न भूल जाइए।"

"वाह, यह कैसे हो सकता है। और भेजना क्या, मिठाइयाँ लेकर मै खुद हाजिर होऊँगा।"

पार्टी ख़त्म हो रही थी—मेहमान एक के बाद दूसरे रवाना हो रहे थे। यह ग्रुप भी उठा। अब तो सब ग्रुप गड़बड हो रहे थे। इसी समय रश्मि और कैलाश वहाँ आ खड़े हुए। पद्मा ने कहा :

"पापा, रश्मि से मिलिए—सरला बहिन के भाई है। विभाजन मे खो गए थे—आज ही मिले हैं। बड़ी दर्दनाक कहानी है इनकी पापा।"

"कभी फुर्सत मे पूरी कहानी सुनूँगा। मिलकर बडी खुशी हुई। आप कहाँ हैं ?"

"जी इरविन अस्पताल मे एसिस्टैन्ट हाउस सर्जन हूँ।"

पद्मा ने फिर सबका परस्पर परिचय कराया। कवि का परिचय सुनकर राजा साहेब बहुत खुश हुए बोले : "वाह कविराज, अब तक मै आपसे महरूम ही रहा—देखिए यहाँ दर्द उठा।"

उन्होंने अदा से ज़रा झुककर हृदय पर हाथ रखा, सब लोग खिलखिला कर हँस पड़े। कवि ने संजीदा होकर कहा : "मुझे भी है यह मूँजी बीमारी राजा साहेब, लेकिन मै तो एक-दो कविता सुनाकर बहका देता हूँ।"

"हाय हाय, तो सुनाइए न ?"

इसी समय प्रमिला रानी सरला का हाथ पकड़े आई। और सुरेश से सरला का परिचय कराया। इसके बाद पद्मा ने सबसे सरला का परिचय दिया। प्रमिला ने कहा : "सरला, रश्मिबाबू और कविबाबू कल चाय पर हमारे यहाँ आ रहे है। लेकिन कविबाबू हठ पकड़े है कि चाय होटल मे नहीं कुतुब पर होनी चाहिए।"

"हाँ, हाँ, कुतुब पर ही सही। राजा साहेब आ रहे है आप ?"

"नही आ सकूँगा। देखते है यह मूँजी बिमारी..."

सुरेश ने मुस्कुराकर नवाब साहेब से पूछा तो मिसेज़ खन्ना ने कहाँ : "बस, वही तक रखिये—मेरे माल पर हाथ न डालिये। कल नवाब साहेब मेरे साथ डिनर ले रहे हैं।"

"तब तो मजबूरी है।"

इसी बीच पुरुषोत्तम सेठ ने सरला को एक ओर ले जाकर कहा : "सुना

मैंने कि तुमने नौकरी छोड़ दी। कोई बात नही पर कभी-कभी आया करना मेरे पास।"

"आऊँगी पापा" कहकर सरला ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया। फिर रेणुका देवी को नमस्कार कर वह, रश्मि और कवि साथ चल दिए। और लोग भी अपनी-अपनी राह लगे। रेणुका देवी बिलकुल थकी-थकी-सी जाकर अपने शयनागार में घुस गई।

३८

दिन भर कवि गोविन्दराम गायब रहे। जब तीसरे पहर लौटे तो रश्मि ने कहा: "आज तो दिनभर का चकर डंड लगाया कविराज।"

"जी हाँ, लेकिन काम भी बना लाया।"

"अच्छा कौन-सा काम बनाया ?"

"मकान फतह कर लिया। मिल गया मकान। वह एक कुठरिया है, जिस पर खपरैल पड़ी है, वह चूता भी है। लेकिन है तो मकान ही। अब कोई यह नही कह सकता कि गोविन्दराम का मकान नही है।" रश्मि हँस दिए। सरला ने कहा: "और किराया कितना इस टपकने वाले मकान का ?"

"सिर्फ दस रुपये।"

"तो राजधानी में कुछ महँगा नही है।"

"है कहाँ वह तुम्हारा टपकने वाला मकान ?"

"आप उसे टपकने वाला क्यों कहते है डाक्टर, यों तो ताजमहल भी टपकता है।"

"खैर, तो आपका वह ताजमहल है कहाँ ?"

"मोचियों के मुहल्ले में।"

"भाई वाह, तब तो मालिक मकान भी मोची ही होगा।"

"नही जनाब, वह एक बड़े भारी ठेकेदार और लीडर है।"

"अच्छा ?"

"जी हाँ पड़ोस ही मे उसकी तिमंजिला हवेली है।"

"उसकी हवेली शायद नही चूती ?"

"जी नही वह खूब पुख्ता बनी है। बस जरा उन्हे ब्लडप्रेशर कभी-कभी हो जाता है।"

"ब्लडप्रेशर ?"

"जी हाँ, लेकिन आप जानिये कि यह वह बीमारी है जो आमतौर पर बड़े आदमियो के होती है। कोई लीडर, पूँजीपति, साहित्यकार, पत्रकार—बशर्ते कि वह बड़ा हो—बिना इस बीमारी के जिन्दा नही रह सकता।"

"यह तो तुम कविराज ज्यादती कर रहे हो ?" रश्मि ने हँसकर कहा।

"आएहाए, डाक्टर, बड़े भोले है आप, समझते ही नही है ब्लडप्रेशर को ? यह बीमारी बड़े लोगों का श्रृंगार है। यही बीमारी उन्हें बड़ा बनने की प्रेरणा देती है। बस ज्यों-ज्यों यह बढती जाती है, उनके अरमान पूरे होते जाते है। बस मेरे मालिक मकान भी ऐसे ही बड़े लीडर और बड़े ठेकेदार है। और इत्त-फाक से मैंने उनसे तभी मुलाकात की जब उन्हे ब्लडप्रेशर का जोर हो रहा था।"

"अच्छा ! इसमे भी कुछ रहस्य था ?"

"जी हाँ, उस समय उनके नखरे, बाते, हरकते बस देखने लायक थी। यों भी आप उन्हे देखेंगे तो खुश हो जाएँगे। चूड़ीदार पायजामा, अचकन, गाधी-टोपी, सब स्वदेशी; और घड़ी, फाउन्टेन पेन, चश्मा सब विलायती—यानी पूरब पश्चिम का पूरा मेल। धर्मपत्नी जी उनकी सदैव विलायती सिल्क की साड़ी पहनती हैं पर शाल देशी होता है। ड्राइंग रूम में एक तरफ सोफे, दूसरी ओर तख्तपोश, जिस पर सफेद चाँदनी, गावतकिये करीने से सजे हुए। खाते हैं दाल-भात, मगर डिनर सेट विलायती।

"अंग्रेजी राज्य मे पूरे टोड़ी बच्चे थे। परन्तु अब पक्के राष्ट्रवादी है। जल्सा, सभा-सोसायटी चाहे गधों की ही हो पर प्रेसीडेन्ट की कुर्सी पर आपही विराज़-मान। और जनाब जब आपकी तारीफ हो रही हो तो आप कुछ अजीब-से लहजे में कहेंगे— नही जी, नही जी। पर मतलब होगा—और जी, और जी।"

रश्मि और सरला ज़ोर से हँस पड़े। सरला ने कहा : "तुमसे कहाँ टकरा गए ये हज़रत लीडर साहेब ?"

"अजी, बड़ा मज़ा हुआ। मकान की तलाश में घूम रहा था। जा निकला मोचियों के मुहल्ले में। किसी ने कहा—मकान तो खाली है, बशर्ते आप मकान-मालिक को खुश कर सके। पहुँचा तो ब्लडप्रेशर का फिट आया हुआ था। बोले—भई, मैं तो शहर छोड़ कहीं भाग जाना चाहता हूँ। मुलाकाती यहाँ पिण्ड ही नहीं छोड़ते। लेकिन बुरा हो ब्लडप्रेशर का, जा ही नहीं सकता।"

मैंने कहा : "हुज़ूरेवाला ! यहाँ तो शहर में आप ही के नाम का डंका बज रहा है।"

"यह कैसे भई ?" उनका मुँह फटा का फटा रह गया।

"मैं कहता हूँ लोग आपकी अभी कद्र ही नही कर सके, उन्हे तब तक चुप न बैठना चाहिए जब तक कि आपको वे मिनिस्टरी की कुर्सी पर न बैठा दें। बस उनकी आँखें फैल गईं। औरहँसकर बोले—मैं किस लायक हूँ भई।—और मेरे लिए चाय लाने का हुक्म दिया।"

"खूब किया कवि।"

"जी हाँ। ब्लडप्रेशर तेज हो रहा था। मैने और तेज किया—मैंने कहा : आप मे वे सब गुण मौजूद है जो मिनिस्टर में होने चाहिएँ।"

"क्या, क्या ? उन्होने मासूम-सी शक्ल बनाकर कहा—और नौकर को आवाज़ दी कि ज़रा नमकीन काजू भी ले आए मेरे लिए। बस जनाब, चाय और नमकीन काजू ने मेरा ब्लडप्रेशर भी जरा तेज कर दिया। मैंने चाय पीते-पीते उन्हें सलाह दी—वह एक अखबार चलाएँ, और एक ऐसे आदमी को पास रखें कि जो भाषण लिखकर उन्हें रटा दिया करें। बस उनकी नज़र हमारे राम पर ही टिक गई। और मकान की कोठरी की चाभी मिल भी गई।"

"मकान की चाभी ही क्यों प्राइवेट सेक्रेटरी की नौकरी भी।"

"प्राइवेट सेक्रेटरी की बावत भी मैंने उन्हें नेक राय दे दी कि किसी ऐसी लड़की को रखें—जो सुन्दर और एकदम स्मार्ट हो। फटाफट अंग्रेजी बोल सके।"

"तो तुम्हारी यह नेक राय भी उन्होंने पसंद की ?"

"जी हाँ, ऐसी एक लड़की ढूँढ निकालने का काम मेरे ही सुपुर्द किया है उन्होंने। लाइए मेरा बिस्तरा-बोरिया, पहुँचा दूँ अपने दौलत खाने में।"

"खैर, तो चाय पीकर जाना कविराज।"

सरला ने चाय कवि को दी। कवि बधना-बोरिया रिक्शे पर लाद नए मकान में जा पहुँचा और इतमीनान से सामान मकान में रख, ताली लगा, जरा हवाखोरी के लिए निकल पडा।

३९

माता की बीमारी के कारण सरला कई दिन घर से बाहर न जा सकी। उस दिन जो घर से चली तो सोचा—चलकर पद्मा से मिल लिया जाय।

सरला ने जाकर देखा, पुरुषोत्तम सेठ आराम कुर्सी पर निढाल हुए पड़े हैं। शाल उनके पैरों से खिसककर नीचे कारपेट पर गिर गया है। पुरुषोत्तम सेठ की दोनों आँखें बन्द हैं। कमरे, बरांडे, और घर भर में सन्नाटा है। पैरों की आहट सुनकर पुरुषोत्तम सेठ ने आँखें खोलीं और उसी तरह पड़े-पडे कहा : "आओ, आओ, बेटी, लेकिन तुम तो भीग गई हो।"

"जी हाँ, घर से चले ज़रा देर हो गई। सोचा, आपको ही नमस्कार करती चलूँ। पद्मा रानी को भी कई दिन से नहीं देखा। बीच मे ही वर्षा होने लगी। लेकिन यह क्या ? आपकी तो तबियत खराब मालूम देती है ?"

"हाँ ! बेटी, तबियत ख़राब है लेकिन अच्छी हो जायेगी। तुम बैठो। मैं तुम्हारी आज तीन दिन से याद कर रहा था। अच्छा किया तुम आ गईं। उधर बाथरूम में जाकर कपड़े बदल लो।" सरला ने शाल कारपेट से उठाकर उससे सेठ पुरुषोत्तम के पैरों को अच्छी तरह ढाप दिया। फिर कुर्सी के सिरहाने खड़ी होकर कहा : "कपड़े अभी सूखे जाते हैं मुझे तो आदत है।" फिर उसने सेठ के माथे पर हाथ रखकर कहा : "अरे, आपको तो बुखार है ?"

"शायद बुखार ही है। ओफ !" पुरुषोत्तम सेठ ने इधर-उधर देखा।

"क्या कुछ चाहिए ?"

"नही।"

पुरुषोत्तम सेठ चुपचाप आँख बन्द कर के पड़ रहे।

सरला ने कहा :"डाक्टर को दिखाया ?"

"नही, जरूरत नही है। हाँ, तुम्हारे भैया अच्छे है न ? क्या नाम है उनका ?"

"रश्मि। रश्मिचन्द्र।"

"बहुत सुशील नौजवान है। तुम इतने दिन से आई क्यो नही बेटी ?"

"माँ बहुत बीमार है। उन्हे छोड़कर आना नही हुआ।"

"लेकिन, बेटी, मेरे पास आने मे सकोच मत करना, जब चाहे चली आना।"

"जी सकोच नही। लेकिन मै जरा भैया को बुला लाऊँ, वह आपको देख लेंगे।"

"इसकी जल्दी नही है, तुम मेरे पास बैठकर बाते करो।"

"पद्मा दीदी कहाँ है ?"

"अपने घर गई।"

"क्या मतलब ?"

"उसने कैलाश से शादी कर ली है।"

"यह आप क्या कह रहे है ?"

"क्या दुःख हुआ तुम्हे ? शादी-ब्याह की बात मे तो सबको खुशी होती है।"

सरला ने ध्यान से सेठ पुरुषोत्तम का मुँह देखा—उस पर बुझते हुए अंगारे जैसी क्षीण मुस्कान थी।

"लेकिन मुझे तो कुछ भी पता नहीं लगा ?"

"पता मुझे भी कल ही लगा। जब वह एकदम जाने को तैयार होकर आई।" पुरुषोत्तम सेठ की वाणी लड़खड़ा गई।

"वह डर गई शायद, कि मैं उसके विवाह में विघ्न डालूँगा। बेचारी बिना माँ की लड़की; नही जानती, मै उसे कितना प्यार करता हूँ। इसीसे उसने ;पचाप अदालती ब्याह कर लिया। मुझसे पूछा भी नहीं और जैसी बैठी थी उसी प्रकार छूछे हाथ चली गई।"

"आपने रोका नहीं बाबू जी ?"

"रोका था बेटी, परन्तु उसने कहा—'रोकने से कोई लाभ नही है। बेटी बाप के घर नही रहती है; जो उसका घर है उसी मे वह जाकर रहेगी।'"

"मैंने सुना है, कैलाश बाबू के पिता बहुत गरीब है। कैलाश बाबू भी कुछ कमाते-धमाते नही हैं, फिर पद्मा दीदी का गुजारा कैसे होगा ?"

"मैंने कहा था—बेटी जाती हो तो जो चाहो ले जाओ ! मैने तो कोरा चेक भी दिया। अपनी तीन कोठियाँ खाली पडी है, मैने बहुत कहा—उनमे से किसी मे जाकर वे रहे, पर उसने स्वीकार नहीं किया। उसने कहा—मैं सिर्फ अपने परिश्रम की कमाई ही खाऊँगी। उसने एक पाई भी लेना स्वीकार नही किया।"

"तो इसी बात ने आपको बीमार कर दिया। लेकिन रेणुका देवी कहाँ है ?"

"नही कह सकता, आजकल देर से आती है, शायद क्लब गई हों।"

सरला क्षणभर चुप रही—फिर उसने कहा : "आपने बडी ढील दे रखी है उन्हें। यह तो अच्छी बात नही है बाबूजी।"

"तुम तो मेरी बेटी ही हो फिर भी कहता हूँ—उनसे जो मैने शादी की यही कौन-सी अच्छी बात थी भला ?"

पुरुषोत्तम सेठ कुछ कहते-कहते चुप हो गए। सरला ने भी कुछ जवाब नही दिया। वह यद्यपि अभी लड़की थी पर रेणुका देवी की स्थिति को समझ गई थी। उसने कहा :"आप केवल अपने मन की दुर्बलता को तो जानते है, पर आपके भीतर जो महान् व्यक्तित्व है, उसे लोग नही देखते।"

"तुमने देख लिया, बड़ी बात हुई। परन्तु यह रुपया-पैसा कारोबार-झंझट सब अब कैसा काटता है—यह मैं तुमसे कैसे कहूँ।"

"एक बात कहूँ बाबूजी ?"

"कहो बेटी।"

"आपके तो कोई संतान नहीं है। केवल पद्मा देवी ही है। यह सब उन्हीं का है, उन्हीं को दे दीजिए।"

'मैंने भी सोचा था, पर कहीं कुछ भूल है—या तो मेरे पुराने मस्तिष्क मे या उनके नए जोश में। वह जो कहते हैं सबके सम्पत्ति पर समान अधिकार है यह मुझे ठीक नहीं जँचता। कुछ लोग हैं—जो सम्पन्न हैं, धनी हैं, विद्वान् हैं; कुछ

मूर्ख है, दरिद्र हैं, स्वभाव ही से अपराधी है। यह सब प्रारब्ध का भोग है—यह मैं नहीं मानता, मैं तो समझता हूँ मनुष्य अपने व्यक्तित्व के कारण ही ऊपर-नीचे जाता है। मजदूर अवश्य बड़ी मेहनत करते हैं, बेशक उनके पसीने की कमाई से हमारी तिजोरियाँ भरती हैं। पर तभी तक जब तक हम अपनी कुर्सी पर बैठे है। अर्थशास्त्र और कला-कौशल का जो व्यावसायिक और व्यावहारिक रूप है उसे वे नहीं जानते हैं। एक दिन को भला उन्हें बैठाओ तो मेरी कुर्सी पर। देखूँ क्या करते हैं। सेना लड़ती है पर सेना का संचालन तो कुशल सेनापति ही करता है। बस यही बात है।"

"आप समझते हैं, यह सब कारोबार यदि उनके हाथ मे जायगा तो नष्ट-भ्रष्ट हो जाएगा ?"

"मैं यही समझता हूँ। पद्मा चाहती है मिल के मालिक मजदूर ही बना दिए जायँ। मुनाफा सबको समान बँटे।"

"मुनाफा तो बँटे, परन्तु प्रबन्ध कैसे होगा ? तू तू-मैं मैं और विद्रोह कितना होगा।"

"यही तो बात है। पद्मा यही नही समझती। उसके कहने से मैंने मजदूरों की सब शर्तें मान लीं। इसमें कितनी हानि हुई, वह मैं तुमसे कैसे कहूँ। परन्तु वे लोग संतुष्ट थोड़े ही हैं, और माँगे हैं उनकी। वे सब रहेंगी। नई-नई उत्पन्न होती जाएँगी।"

"आप ठीक कह रहे है बाबू जी !" सरला एक बारगी ही गम्भीर चिन्ता में डूब गई।

४०

कुँवर सुरेशसिंह और गोबिन्दराम ने आकर देखा—पुरुषोत्तम सेठ आराम कुर्सी पर पैर फैलाए पड़े हैं। और सरला उनके सिरहाने खड़ी उनके सिर पर यूड़ीक्लोन की बूंदे टपका रही है। नमस्कार के पीछे सुरेशसिंह ने पूछा : "यह क्या ? क्या आपकी तबियत कुछ खराब है ?"

"कुछ नही, योंही, लेकिन आप बैठिए," पुरुषोत्तम सेठ कुर्सी पर उठकर बैठ गए, उनके मुर्झाए चेहरे पर प्रसन्नता लौट आई। कवि को देखकर उन्होंने कहा : "अहा आप भी हैं कविराज ! आइए आप मेरे पास बैठिए।"

सरला ने कहा : "आप लेटे रहिए बाबूजी, वरना बुखार बढ़ जायगा।"

"अब बुखार नहीं बढ़ेगा बेटी।" उन्होने हँसकर कहा। फिर कुँवर साहेब की ओर देखकर बोले : "इधर कई दिनों से आपके दर्शन नही हुए। मैने समझा आप चले ही गए।"

"बिना आपसे और पद्मा रानी से मिले मैं कैसे जा सकता था। बात यह हुई कि इधर मैं आगरा भी प्रमिला को दिखा लाया। ताज और फ़तहपुर सीकरी देखने की उसकी बड़ी लालसा थी। कुछ समय प्रदर्शनी में भी बीता। और अब हम लोग जा रहे है।"

"अरे ! इतनी जल्दी ?"

"जी हाँ, घर से तार आया है। दादी जी का स्वर्गवास हो गया है, और भी कुछ झंझट उठ खड़े हुए है। इसीसे। लेकिन पद्मा देवी और रेणुका देवी कहाँ हैं ?" उन्होंने इधर-उधर देखा—तभी सरला ने उन्हें एक संकेत किया। सुरेश ने बात टालने के लिए पूछा : "कब से आपकी तबियत खराब है ?"

"यही दो-चार दिन से" फिर उन्होंने हँसकर प्रमिला रानी की ओर देखकर कहा : "दिल्ली आपको पसन्द आई प्रमिला रानी।"

"जी, कह नहीं सकती हूँ। परन्तु यह अद्भुत और प्रभावशालिनी अवश्य है।"

"होगी ही। इसे सदा सुहागिन और अक्षय यौवना होने का वरदान प्राप्त है। कितनी बार यह उजड़ी, फिर बसी। हर बार इसने पतिहंताओं को वरा। और आज तो यह संसार की महाजातियों के मूर्धन्य पुरुषों का तीर्थ बनी हुई है। ऐसा प्रतीत होता है, शीघ्र ही वह दिन आएगा कि विश्व के भाग्यों का निपटारा दिल्ली में होगा।"

प्रमिला ने सिर हिलाया। सुरेशसिंह ने कहा : "आपकी बात ठीक हो सकती है। आज भारत की दो विशेषताएँ संसार की शक्तियों का ध्यान खींच रही हैं। एक तो यह कि भारत संसार का सबसे बड़ा प्रजातन्त्री देश है। दूसरे वह संसार का सबसे प्रबल निरपक्ष देश है तथा संसार के सब निरपेक्ष देशों का नेता है।

वह विश्वशान्ति और विश्व के सहअस्तित्व का प्रतिष्ठाता है।"

"यह सार्वभौम उद्योग प्रदर्शनी भी भारत की इस श्रेष्ठता एक प्रतीक है।" सेठ जी ने कहा—फिर उनका ध्यान कवि गोविन्दराम की ओर गया जो इस समय एक बीड़ी निकाल रहा था। सेठ जी ने कहा : "बीड़ी रहने दीजिए कविराज, उस दराज में सिगरेट है, सिगरेट पीजिए।"

"बस रहने दीजिए सेठ जी, बन्दा तो बीडियों ही का आदी है। मैं अपनी आदत खराब नही करना चाहता।" उसने निर्द्वन्द भाव से बीड़ी जलाई।

सेठ जी ने कहा : "आजकल कहाँ रह रहे है कविराज ?"

"मोचियों के मोहल्ले में एक मकान मिल गया है, वही डेरा-डंडा उठा ले गया हूँ।"

"राम, राम, मोचियों के मोहल्ले में क्यों ?"

"बहुत ज़रूरी था सेठ जी, इन सब गरीब लोगों को भगवान कैसे जीवित रखता है और कैसे मारता है, यह ज़रा नजदीक से देखना चाहता हूँ। वास्तव में बात यह है कि मैं मोचियों पर एक महाकाव्य लिखने की सोच रहा हूँ।"

"क्या कहते हैं कविराज, मोचियों पर महाकाव्य ?" सेठ जी हो-हो करके हँसने लगे।

"बड़ा मजेदार रहेगा। आप सुनेगे तो फड़क उठेगे।"

"जरूर सुनूंगा भाई, लेकिन एक बात का ख़याल रखना। अपने इस महाकाव्य में वेचारे ग़रीब लोगों के दुर्भाग्य की खींचातानी न कर बैठना।"

"क्या कहा आपने, दुर्भाग्य आज के युग में! मोचियों का दुर्भाग्य! ऐसी मजेदार बात तो मैंने कभी सुनी ही नहीं।" कवि ज़ोर से हँसा।

"तुम कुछ और बात सोच रहे हो कवि ?"

"वाह, क्या आप नहीं जानते, वे सब अब हरिजन हो गए; गांधी जी के छूमन्तर से। अब तो उनके सौभाग्य के दिन हैं।"

"हाँ भाई, ठीक कहते हो, दुर्भाग्य के दिन तो हमारे हैं। कभी हड़ताल, कभी घाटा, कभी इनकम टैक्स, सेल टैक्स, एक्सेस टैक्स, और मृत्यु टैक्स। अब तो भाई बिना टैक्स दिए मर भी नहीं सकते।" सेठ जी ने संजीदगी से कहा।

"हक़ीकत यह है—इधर भीतर से असन्तोष बढ़ रहा है, और बाहर से उस पर अत्यन्त दवाब पड़ रहा है। नहीं कहा जा सकता, इसका क्या नतीजा होगा।

अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ कदम-क़दम पर बदल रही हैं।" कुँवर सुरेशसिंह ने कुछ सोचते हुए कहा।

"यही बात है। क्योंकि संसार करवट बदल रहा है। हज़ारों साल की गहरी नींद से जागकर वह अब चैतन्य हुआ है। और होश में आते ही वह अपने चारों ओर ख़तरा ही खतरा देख रहा है, वह औरों के लिए खतरे पैदा करता जा रहा है, पर वह स्वय ही उससे भयभीत हो जाता है। वह दो घातक लड़ाइयाँ लड़ चुका। और अब वह समझ गया है, लड़ाइयाँ मानव जीवन की मुसीबतों का अन्त नहीं कर सकती, पर फिर भी उसकी नजर लड़ाई पर ही है, दूसरी बात उसे दीखती ही नहीं है।"

"अजी साहेब, पहली लड़ाई मे अमेरिका के प्रेसीडेन्ट विलसन ने कहा था—यह लडाई संसार से लड़ाई का अन्त करने के लिए है। जनता से यही कहकर त्याग और कुर्बानी की अपील की गई थी, पर पहली लड़ाई के जख्म भरे भी नहीं कि दूसरी उठ खड़ी हुई। जब दूसरी लड़ाई छिडी तो प्रेसीडेन्ट रूजवेल्ट ने स्वतन्त्रता—भूख और डर से स्वतन्त्रता—का लक्ष्य जनता के सामने रखा। पर लडाई खत्म हो गई, आधी दुनिया को तबाह करके; और अब तीसरी लड़ाई की तैयारियाँ हो रही हैं। अब मैं आपसे पूछता हूँ कि जब जनता शान्ति चाहती है, भूख और डर से मुक्ति चाहती है तो लड़ाई का डर क्यों आ खड़ा होता है?" कवि ने आँखों में गहरी जिज्ञासा भरकर कहा।

"लेकिन लड़ाई चाहता कौन है?" सेठ पुरुषोत्तम ने पूछा।

"शायद सोवियट रूस लड़ना नहीं चाहता। इसके दो कारण हैं, प्रथम तो यह कि दूसरी लड़ाई के बाद रूस का जितना प्रभाव शान्तिकाल में बढा है, और आगे बढने की आशा है, उसमें बाधा पड़ेगी, यह रूस को विश्वास है। दूसरे आज आधे से अधिक दुनिया रूस के साथ है। जब बिना युद्ध के ही रूस के प्रभाव का विस्तार हो रहा है तो रूस लड़े क्यों?" सुरेश ने कहा।

सेठ पुरुषोत्तम बोले: "एक यह भी बात है कि यदि लड़ाई फिर छिड़ी तो रूस को इस बार चार मोर्चों से लड़नी पड़ेगी। इसके अतिरिक्त रूस यह तो समझता है कि अमेरिका के साथ युद्ध अनिवार्य है, परन्तु इस समय यदि लड़ाई होती है तो रूस का हित उसमें नहीं है।"

"और अमेरिका के सम्बन्ध में आप क्या सोचते है?"

"अमरीकी सरकार और वहाँ के लोग दोनों पर लाल भूत सवार है। अमेरिका तो चाहता है कि एक बार ठनेगी ही तो जितनी जल्दी डंके पर चोट पड़े अच्छा है। पहले अमेरिका का खयाल था कि चीन की च्यांग सरकार रूस और उसके बीच दीवार का काम देगी। परन्तु वहाँ लाल सेना की विजय ने उसके सब मनसूबों को खाक में मिला दिया। प्रशान्त सागर के एक छोर पर लाल झंडा बड़ी शान से फहरा रहा है। अब तो अमेरिका यह सोचता है कि चीन जब उसकी मुट्ठी से निकल गया तो फारमोसा और जापान कितने दिन उसके साथ रहेंगे।" सुरेश ने कहा।

पुरुषोत्तम सेठ ने सिर हिलाते हुए कहा : "फिर यह भी तो बात है कि योरोप के एक-एक करके सब देश रूस के प्रभाव मे चले जा रहे हैं। और एशिया में जो कुछ भी अमेरिका की इज्जत है, वह उसके डालरों की खैरात के बलबूते पर थोड़ी-बहुत बाकी है। इसके लिए एक बात और है।"

"वह क्या ?" कवि ने पूछा।

सेठ जी ने गम्भीरतापूर्वक कहा : "अमरीका यदि रूस को नीचा दिखा सके तो कुछ बात बन सकती है, पर अमरीका यह भी जानता है कि रूस से लड़ाई में जीतने का जो चान्स अब है, वह दो वर्ष बाद नहीं रहेगा। देख नहीं रहे आप ! कोरिया में अमरीकी सेना जान की बाजी लगा रही है, यद्यपि चीन उसके हाथ से निकल गया और उससे कुछ भी करते-धरते न बना।"

"खैर, इंग्लैण्ड की बावत आप क्या सोचते हैं ?" सुरेश ने पूछा।

"न तो इग्लैण्ड की सरकार ही और न वहाँ के लोग ही यह चाहते हैं कि लड़ाई हो। वे पिछली लड़ाई में बहुत कुछ खो चुके हैं। और अब तो युद्ध की बाजी लगाने के लिए उनके पास कुछ है ही नहीं। लेकिन उसके लिए अमरीका का साथ छोड़ना मुश्किल है।"

"आप ठीक कहते हैं सेठ जी, वास्तव में इंग्लैण्ड की दशा दयनीय है और वह अमरीका का इतना मुहताज हो चुका है कि उसके लिए अपनी स्वतन्त्र नीति स्थिर रखना सम्भव ही नहीं है।"

"इधर एशिया में जो कम्युनिस्ट प्रभाव फैल रहा है, वह आस्ट्रेलिया की वर्णभेद नीति का द्योतक है। अब यह सम्भव नहीं है कि इतना बड़ा देश कुछ गोरों की एकमात्र सम्पत्ति रह जाय।"

"बेशक, एशिया की जाग्रति आस्ट्रेलिया के गोरे स्वामियों के लिए मृत्यु का संदेश है। उधर लालचीन युद्ध नहीं चाहता। वह फारमोसा से च्यांग को और हांगकांग से अंग्रेज़ों को निकाल बाहर करना अवश्य चाहता है। परन्तु वह यह भी समझता है कि लड़ाई यदि हुई तो यह विश्वव्यापी होगी और उसकी प्रगति में बाधा पड़ जायगी।"

"अच्छा, भारत के सम्बन्ध में आप क्या समझते हैं सेठ जी ? बेशक भारत युद्ध नहीं चाहता, पर यदि अमेरिका और रूस में ठनी तो यह लड़ाई सारे विश्व को अपने आँचल में समेट लेगी और भारत को अपनी इच्छा के विरुद्ध उसमें भाग लेना होगा।"

"पर हमारे पास न काफी युद्ध-सामग्री है, न हमारी स्थिति ही इस योग्य है कि हम लड़ाई के धक्के सम्हाल सकें। हम गरीब है। हमारी आज़ादी बच्चा है। हम तो शान्ति की गोद में ही पनप सकते है, इसी से नेहरू संसार में शान्ति स्थापन के कार्य में दौड-धूप कर रहे हैं। क्योंकि वह जानते हैं—लडाई कही भी छिड़े हमारे देश को वह तबाह किए बिना न छोड़ेगी।"

"इधर जापान की हालत अजीब है। युद्ध में उसे अप्रत्याशित ढंग से शस्त्र रखने को विवश किया गया। उसके साथ वह व्यवहार नहीं किया गया जो वीर राष्ट्र के साथ होना चाहिए था। अमरीकी सरकार और सैनिकों ने बुरी तरह जापान के स्वाभिमान पर चोट की। हरेक अमरीकन सैनिक को एक-एक जापानी स्त्री बाँदी के तौर पर दी गई। उसका परिणाम यह हुआ कि इस समय जापान में एक लाख ऐसे बच्चे हैं जिनका कोई मालिक या पिता नही है। ये बच्चे उन अमेरिकनों ने जापानी स्त्रियों से उत्पन्न किए हैं, जिन्हों ने जापान को सभ्य बनाने के लिए पाँच वर्षों तक उसे अपनी दासता में जकड़े रखा। वे तो अब उन बच्चों को छोडकर चले गए, पर अमेरिका अब उन बच्चों को अपने देश में आने की इज़ाजत नही देता और वे अपनी माताओं पर भार बने है।"

"तो ये युद्ध के अनिवार्य अभिशाप है। जर्मनी की ही दुर्दशा लीजिए, उसके दो टुकड़े कर के उस वीर राष्ट्र को योरोप के नक्शे से ही मिटाने की चेष्टा की गई।"

"जर्मनी तो चाहता है कि रूस और अमेरिका में मुठभेड़ हो जाय तो उसे सांस लेने का अवसर मिले।"

"और कुछ यही हाल पाकिस्तान का भी है। अन्तर्राष्ट्रीय जगत में ज्यों-ज्यों भारत का सिक्का बैठता जाता है, त्यों-त्यों पाकिस्तान ईर्ष्या की आग में भस्म होता जा रहा है।"

"जी हाँ, और उसने इसी से अमेरिका से दोस्ती गाँठी है।"

"दोस्ती गाँठी है या गुलामी का बन्धन बाँधा है, यह तो समय पर ही मालूम होगा। परन्तु यदि युद्ध छिड़ा तो उसका तो अस्तित्त्व ही खतम हो जायगा।"

"वह तो होना ही है। दो साधुओं की लडाई मे खप्पर टूटते है।"

"अमेरिका वाले कहते है, हम एशिया के दोस्त हैं। हमारे पास मशीनें हैं, हथियार हैं, धन है, हम एशिया को स्वर्ग बनाने का ठेका लेना चाहते है। दूसरी ओर रूस कहता है, एशिया को अमेरिका हड़प लेना चाहता है। हम दुनिया में एकता और समानता का संदेश पहुँचाना चाहते है, और उसे पूंजी-पतियों के चंगुल से मुक्त करना चाहते है।"

"लेकिन जब हम लोग अंग्रेजों की गुलामी में पीसे जा रहे थे, तब अमरीकी दोस्त कहाँ सो रहे थे?"

"और रूस की तानाशाही सरकार ने ही हमारी आज़ादी की लडाई मे क्या मदद की जब हम बयालीस के संघर्ष में पिस रहे थे?"

"अजी, तब तो एक ने हमें 'जन-युद्ध' का पाठ पढाया था, और दूसरे ने नेता जी को गद्दार कहा था।"

"बस, हमारा लाभ तो इसी मे है कि रूस और अमेरिका एशिया के मामलों मे दखलन्दाजी देना छोड दे। भई, यह तो भूखे और पेट भरे का मामला है। भूखे आदमी का दिमाग पेट भरे आदमियों के दिमाग़ से कही ज्यादा दुरुस्त और ताक़तवर होता है। और ऐसी हालत में ही नंगे-भूखों के हक में कुछ काम की बातें सोची जा सकती है।"

"बेशक, बेशक, परन्तु अमेरिका की तो वह मसल है कि पहले खूब धन पैदा करो और फिर एकदम भले आदमी बन जाओ।"

"नागरिकता के विकास ने मनुष्य को मानव रक्त-पान का चस्का लगाया, और इस रक्तपान से अभिशापित कुछ अति-मनुष्य अदम्य दर्प और असह्य तेज से असहिष्णु हो रक्तस्नान की ठान बैठे—यही उनका मानवधर्म बन गया।

वे रक्त-स्नान करने वाले रक्त-स्नान कर चुके। उनका श्राद्ध-तर्पण भी हो चुका, परन्तु रक्तपान के अभ्यस्त नर अब भी भयभीत हो अमानुष काम करने पर तुले बैठे हैं। इन्होंने और उन्होंने हिरण्य के मोह में फँसाकर वैज्ञानिकों और कलाकारों को अपना वाहन बना विज्ञान और कला दोनों को कलंकित कर दिया।

"परन्तु निश्चय ही एक लोहे और लोहू से भरा युग बीत चुका। युद्ध का देवता मर गया, साम्राज्यवाद का महल ढह गया। और उसी के साथ पूँजी, सत्ता और अधिकार भी खत्म हो गए।"

सुरेशसिंह ने अत्यन्त आवेश में ये वाक्य कहे। सेठ पुरुषोत्तम गम्भीर हो गए। कवि अपनी बीडी सुलगाने लगे। सरला और प्रमिला रानी न जाने कब वहाँ से खिसक गई थी। सरला ने एकान्त मे ले जाकर प्रमिला देवी को पद्मा के सम्बन्ध मे सब बातें बता दी थी। और अब ज्यों ही सुरेश ने अपनी बात खत्म की, प्रमिला रानी ने कहा : "अब हमें आज्ञा लेनी चाहिए" और उसने सुरेश को कुछ इशारा किया। सुरेश और कवि उठ खड़े हुए। पुरुषोत्तम सेठ ने उठकर नमस्कार किया और कहा : "अब अगली बार जब आप कभी दिल्ली आएँ तो मेरी ही कुटिया पर निवास करे।"

"अवश्य।"

इतना कहकर सुरेश चल दिए।

सरला ने कहा : "अब मैं भी जाऊँ बाबू जी, फिर आजाऊँगी।"

"अच्छा बेटी।" पुरुषोत्तम आँख बंद करके पड़े रहे। सब चले गए।

४१

मँगतू के मुकदमे ने बड़ा ज़ोर बाँधा। रियासत भर में तहलका मचा हुआ था। अनहोनी घटना थी, राजा पर रैयत चमार ने इज़्ज़तहतक और डराने-धमकाने का फौजदारी दावा किया था। परन्तु केवल राजगढ़ के ही नहीं आस-पास के सब गाँवों के चमारों ने पंचायत करके मँगतू के मुकदमे की पैरवी को

धन इकट्ठा किया था। सब जगह एक ही चर्चा थी। अब ये बड़े लोग हम ग़रीबों को दाब कर नहीं रख सकते। यह जनता का राज है। जनता ही इस राज की मालिक है। ज़िला कांग्रेस कमेटी ने भी मँगतू के मुक़दमे की पैरवी अपने हाथ में ली थी। ज़िला कांग्रेस कमेटी के जनरल सेक्रेटरी—मिर्ज़ा फारुकी बड़े जोर-शोर से पैरवी कर रहे थे। उन्होंने लखनऊ के नामांकित एडवोकेट श्रीवास्तव को खड़ा किया था। राजा साहेब की तरफ से इलाहाबाद के प्रसिद्ध वकील सप्रू साहेब आए थे। उनकी सहायता लखनऊ के दो प्रमुख वकील कर रहे थे। लखनऊ कोर्ट ही में नहीं शहर में भी इस मुकद्दमे की धूम थी। तारीख के दिन मँगतू का जुलूस निकाला जाता। जिसमें कांग्रेस और हरिजन महासभा का संयुक्त प्रदर्शन होता था। सैकड़ों स्त्री-पुरुष तिरंगा झंडा लिए—'हरिजन हमारे भाई हैं। उनके अधिकारों की रक्षा करो'—का नारा लगाते कचहरी तक जाते थे। राजा साहेब की भूख-प्यास और बीमारी सब ग़ायब हो गई थी—वह अब इस मुकद्दमे से बेहद परेशान थे—रुपया पानी की तरह उड़ा जा रहा था।

परन्तु राजा साहेब के सिर इस समय केवल इस मुकदमे ही की मुसीबत न थी। दूसरा भी मोर्चा था। राज्यसभा के लिए राजा साहेब खड़े हुए थे और उनके मुक़ाबले कांग्रेस ने खड़ा किया था मँगतू को। इस चुनाव की धूम मुक़दमे से भी अधिक थी। और ज्यों-ज्यों मुक़दमे का प्रदर्शन होता था—मँगतू का बेहद प्रचार होता जा रहा था और मँगतू के भक्त बढ़ते जाते थे। लोग नारा लगाते थे : "ज़ालिमों को वोट नही देंगे। ग़रीबों के खून चूसने वाले राजा लोग मुर्दाबाद! मँगतू जिन्दाबाद!"

राजा साहेब की मजलिस जुड़ी थी। दीवान नौरंगराय, मुन्शी नूरुद्दीन, सेक्रेटरी प्रकाशचन्द्र सभी हाज़िर थे। कुँवर साहेब भी एक कोने में बैठे थे।

मुन्शी नूरुद्दीन ने कहा :

"कांग्रेस की ज़्यादती तो बस अब बर्दाश्त के बाहर हो गई। सरकार, अब नर्मी से काम न चलेगा। कुछ फैसला अब हो ही जाय।"

"वह तो करेंगे ही; ऐसा न करें तो खायें क्या? उनकी रोज़ी तो ऐसे ही मामलों में चलती है।"

"तो क्या मुज़ाइका है। देखा जायगा। पिछली बार मुंह की खाई थी इस

बार भी खायेंगे। क्या खाकर सरकार का मुक़ाबला करेंगे।"

"लेकिन मैं कर ही क्या सकता हूँ। मेरी सेहत की यह हालत है।"

"हुज़ूर, हम जान लड़ा देंगे। कोई मखौल है। ईंट से ईंट बजा दी जायगी, हम सप्रू साहेब को खड़ा करेंगे।"

दीवान जी ने ज़रा आहिस्ता से कहा : "लेकिन सप्रू साहेब लेंगे डेढ हज़ार रुपये पेशी। इतना रुपया कहाँ से खर्च किया जायगा।"

"यह इज्ज़त का मामला है दीवान जी, रुपये का मुँह देखने का मौक़ा नहीं। देखते नही आप, इस चमरू की पैरवी जगतनारायण कर रहे है। खा जाते हैं जगतनारायण सामने के वकील को। बस उनकी नस तो सप्रू साहेब से दबती है। वो-वो नज़ीर देते हैं सप्रू साहेब, सरकार, कि अच्छे-अच्छों का हौसला पस्त हो जाय। वाह, वकालत तो ख़त्म है सप्रू साहेब पर, खुदा उनकी उम्र दराज़ करे।" मुंशी जी ने राजा साहेब की ओर देखकर दाढ़ी पर हाथ फेरा।

राजा साहेब ने आहिस्ता से कहा : "आप सप्रू साहेब से मिल लीजिए साहेब...।"

"हुज़ूर, मौलवी इब्राहीम साहेब भी निहायत माकूलियत से पैरवी कर रहे हैं।" प्रकाशचन्द्र सेक्रेटरी ने कहा।

"तो क्या हुआ भई, मौलवी साहेब, लाख कानूनदाँ सही, मगर सप्रू के मुकाबले वह क्या है ?"

"सप्रू साहेब को खड़ा कर लो।" राजा साहेब ने कहा। दीवान साहेब ने दो गिलौरियाँ राजा साहेब को पेश कीं। और कहा :

"रही इलेक्शन की। वह भी हमी को जीतना है, भला देखिये तो हिमाकत, सरकार के मुकाबले खड़ा किया है इसी बदमाश को, हुज़ूर, हुक्म हो तो दो झांपड़ लगवा दूँ, कांग्रेस का सब बुखार उतर जायगा।"

"इन्तज़ाम तो सभी करने पडेंगे, जब इस पर पैर रखा है तो।"

राजा साहेब ने पैर फैलाकर अपने को मसनद पर डाल दिया।

"कांग्रेस की शह न होती तो मँगतू हरगिज खड़ा न होता। यह सब कारस्तानी मुकुल जी की है। उन्होंने उसे खड़ा किया है। और अब पैरवी भी वही कर रहे हैं।"

४२

चुनाव का ज़ोर बढ़ता चला गया। अब एक नया शगूफा यह खिला कि सुकुल जी ने दलबल सहित राजगढ़ में डेरा आ डाला। शामियाना लगाया गया। कांग्रेस के वालंटियर छोलदारियों में तैनात। सुबह प्रभातफेरियाँ होने लगी। गाँव-गाँव घूमकर 'रघुपति राघव राजाराम' की सदा अलापी जाने लगी। सुकुल जी राजगढ़ में कैम्प डालकर राजा साहेब की नाक पर ही दनदनाने लगे। राजा साहेब बौखला उठे। क्या करें कुछ सूझता न था।

कुँवर साहेब ने एक दिन राजा साहेब से एकांत वार्ता की। उन्होंने कहा : "दाता, यह तो ठीक नहीं हो रहा।"

"क्या ?"

"रुपया पानी की तरह बर्बाद हो रहा है। और हालात बिगड़ते जा रहे है।"

"तो मैं अब रुपए का मुँह देखूं, या इज़्ज़त का ख्याल करूँ।"

"रुपया भी बर्बाद हो और इज्जत भी जाय तो इससे क्या लाभ है ?"

"तो तुम चाहते हो कि मै इस चमार से माफी माँग लूं ?"

"यह चमार तो लड नही रहा है। कांग्रेस लड़ रही है। और कांग्रेस का राज है—एक छोटी-सी घटना को सिद्धान्त की बात बना दी गई है। और तूफ़ान बेतमीजी खड़ा कर दी गई है। इधर रुपया बर्बाद हो रहा है। उधर परिणाम विपरीत नज़र आ रहे हैं। मुकदमे के हालात भी कुछ अच्छे नही हैं। मैं सप्रू साहेब से बात कर चुका हूँ।"

"लेकिन मैं जहर खा लूंगा चमार से माफी नही माँगूगा।"

"दाता, मैंने एक बात सोची है।"

"कौन बात ?"

"सुकुल जी को मिला लिया जाय। लालची आदमी हैं। फिर अपनी ही रियासत के हैं। मान जाएँगे।"

"क्या मैं उस जलील की खुशामद करूँ ?"

"मैं उनसे बात करूँगा।"

"मँगतू से तुमने बात की, क्या नतीजा निकला ?"

"खैर, आप मुझे एक अवसर और दीजिए।"

"जो ठीक समझो वह करो। लेकिन मैं सुकुल का मुँह न देखूँगा।"

"आपसे कोई बात न होगी। बात मैं ही करूँगा।"

"लेकिन यह मुलाकात एकदम पोशीदा हो।"

"ऐसा ही होगा।"

कुँवर साहेब ने शुक्ल जी को भोजन का निमन्त्रण दिया। शुक्ल जी ने सादर स्वीकार किया। क्लीन शेव, लम्बा कद, छरहरा बदन, चुस्त शेरवानी, चूड़ीदार पाजामा। उज्ज्वल गाँधी टोपी और पैरों में सैंडलनुमा चप्पल, यही सजधज थी शुक्ल जी की। पूरा नाम था पण्डित शिवशंकर शुक्ल। पर तमाम देहाती इलाके में लोग शुक्ल जी के नाम से परिचित थे। ३–४ बार जेल काट आये थे। केवल थोड़ी-सी उर्दू जानते थे। व्याख्यान देने का शौक था—व्याख्यान का फन भी जानने थे। देहाती जनता को खूब पटा लेते थे। कार्यसिद्धि के सामने न्याय-अन्याय, उचित-अनुचित का आप विचार नहीं करते थे। लोगों से आप सदा हँसमुख होकर बात करते थे। किसी जमाने में स्कूल में गणित के अध्यापक थे। वह आदत अभी तक आप में थी। व्याख्यान देते तो उंगलियों पर एक-एक बात गिन कर बताते जाते थे। उर्दू बड़े मजे की बोल लेते थे। यों आलिम लोग तो उनकी जड़ समझ ही लेते थे पर जनसाधारण पर वह अपने मुन्शीपने का प्रभाव छोड़ने में कसर नहीं रखते थे। गाने का भी शौक था। नित्य सुबह हारमोनियम पर घण्टा-आधा घण्टा गाना-रोना करते थे। सुनकर कुछ लोग हँसते थे, कुछ गुस्सा हो जाते थे। पर आपका इन बातों से कोई सरोकार न था। अपनी धुन में आप दूसरों की परवाह करते ही न थे। चाल आपकी बिल्ली को मात करती थी। थकना आप जानते न थे। कांग्रेस में आप अपनी बहुत-सी कुर्बानियाँ करके आये थे। पर एम. एल. ए. होने पर धन्धा भी चलाते थे। आप लिखते थे पम्फलेट उर्दू में, और किसी से हिन्दी में तर्जमा करा लेते थे। ये पम्फलेट लेकर वह अपने संगी-साथी एम. एल. ए. लोगों या मिनिस्टरों में, रईसों और जमींदारों में घूमते। उन्हें कांग्रेस की नसीहतें देते और सौ-दो सौ पम्फलेट खरीदने को मजबूर करते। यह धन्धा उन

का खूब कामयाब था। चुनाव में उनकी चाँदी थी—जिसके पीछे पड़ जाते थे उसकी खैर न थी। राजगढ़ रियासत के ही रहने वाले थे। उनके बाप-दादे भी रियासत की रियाया थे। राजा साहेब ने इन पर भी बहुत कृपा की थी। पर अब ये हवा का रुख पहचानकर कांग्रेस की ओर से मँगतू चमार की हिमायत में राजा साहेब के विरुद्ध आ खड़े हुए थे। और आसपास के गाँव-इलाके में वह तूफान बेतमीजी बरपा की थी कि राजा साहेब के नाक में दम आ गया था।

कुँवर साहेब ने दावत का इन्तजाम जरा ठाठ से किया था। शुक्ल जी जैसे इस दावत की प्रतीक्षा ही कर रहे थे। दावत का अभिप्राय भी वह जान गए थे। ऐसे न जाने कितने मोर्चे उन्होंने सर किए थे।

खाना-पीना हुआ। शुक्ल जी ने हँस-हँस कर कुँवर साहेब की पढ़ाई-लिखाई और तन्दुरुस्ती के हाल-चाल पूछे। बीच-बीच में कांग्रेस की बातचीत भी हुई। पर जब-जब कांग्रेस की बात छिड़ती आप गम्भीर हो जाते। अन्त से तन्त की बात छिड़ी। कुँवर साहेब ने कहा : "शुक्ल जी, आप तो इसी रियासत के अपने आदमी है। क्या कारण है कि आप दाता के विरुद्ध प्रचार कर रहे हैं। आप समझते हैं कि अब जमीदारियाँ खत्म हो गई तो आँखो की मुरव्वत भी खत्म हो गई। आपके साथ तो दाता ने सदा अच्छा ही सुलूक किया था।"

"मैं ज़ाती तौर पर महाराज का अनुग्रहीत हूँ। उनके मुझ पर बड़े-बड़े अहसानात है। जमींदारियाँ खत्म हो गई, पर मैं तो अब भी उन्हें महाराज और अपना मालिक मानता हूँ। मगर देश की सेवा मेरा प्रथम कर्त्तव्य है, इस लिए लाचार हूँ। यह मेरी ज़ाती लड़ाई नहीं कर्त्तव्य की लड़ाई है।"

"तो आप समझते है, चमार को राज-भवन की कुर्सी पर बैठाकर आपकी देशभक्ति का कर्त्तव्य पूरा हो जायगा ? महाराज शायद देश के प्रतिनिधि व्यक्ति नहीं हैं ?"

"यह बात नहीं है कुँवर साहेब ?"

"तो और क्या बात है शुक्ल जी। एक सीट के लिए दो आदमी उम्मीदवार हैं। आपका कर्त्तव्य है कि दोनों में जो योग्य व्यक्ति हो उसे आप चुनें। क्या मँगतू चमार हमारे महाराज से ज्यादा लियाकत या हैसियत रखता है ?"

"जी नहीं। परन्तु यह मँगतू और महाराज का मुकाबला नहीं है, कांग्रेस और महाराज का मुकाबला है।"

"पर आप तो महाराज के आदमी हैं।"

"बेशक, पर मैं कांग्रेस का एक अपना खादिम हूँ। कांग्रेस के विरुद्ध मैं कुछ नहीं कर सकता।"

"तो आप समझते हैं कि कांग्रेस महाराज के मुकाबले मे जीत जायगी ? महाराज दो लाख रुपया खर्च करने पर आमादा हैं इस चुनाव पर।"

"वह कर सकते है, एक-एक वोटर को खरीद सकते हैं। कांग्रेस को हरा सकते है। पर मुझे अपने कर्त्तव्य से नहीं हटा सकते। हारने-जीतने की बात नहीं है। सिद्धांत की बात है, मैं अन्त तक अपना कर्त्तव्य पालन करूँगा।"

"आप क्या आशा करते है कि आप कामयाब होंगे ?"

"जी नही, मैं इस बात पर विचार ही नहीं करता।"

"परन्तु आप तो केवल कांग्रेस ही का पक्ष समर्थन चाहते है ?"

"बस !"

"तो यदि आपको यह विश्वास दिलाया जाय कि महाराज कौन्सिल में जाकर कांग्रेस का साथ देंगे, तो क्या आप कांग्रेस को यह सलाह देंगे कि वह अपना उम्मीदवार हटा ले।"

"मैं सारी परिस्थितियों पर पूरी तौर पर विचार करके ही कुछ जवाब दे सकता हूँ।"

"खैर, तो बात यह है कि यदि महाराज का मुकाबला कांग्रेस से होगा तो उन्हें दो लाख रुपये खर्च करने होंगे। तब विजय निश्चित है। आप यह मानते हैं ?"

"एक प्रकार से तो इसका अर्थ यही हुआ कि महाराज सारे वोट खरीद लेंगे।"

"खैर यही सही।"

"तब तो आपकी विजय निश्चित है। कांग्रेस तो इतना खर्च नहीं कर सकती।"

"अब यदि महाराज एक लाख रुपया कांग्रेस-कमेटी की नजर करें, और पाँच हज़ार आपको हर्जाना दें तो क्या आप कांग्रेस को सलाह देंगे कि वह अपने उम्मीदवार को महाराज के मुकाबले में बैठा दे ?"

"एक बात और भी होनी आवश्यक है।"

"वह क्या ?"

"हाउस में महाराज कांग्रेस का साथ देंगे ?"

"खैर, यह भी मंजूर है। और कुछ ?"

"और कुछ नहीं। मैं कांग्रेस के कार्यकर्त्ताओं से बात करके परसों जवाब दूंगा। परन्तु आप क्या उस बेहूदा मुकदमे का निपटारा करना नहीं चाहते ?"

"क्यों नहीं, वह भी एक शर्त है।"

"परन्तु वह तो कांग्रेस का प्रश्न नहीं है। महाराज और मँगतू का प्रश्न है ?"

"फिर भी कांग्रेस उसकी पीठ पर है।"

"खैर, यदि आप चाहते है कि वह मामला भी खत्म कर दिया जाय तो इसके लिए थोड़ा खर्च आपको और करना पड़ेगा।"

"आखिर कितना ?"

"केवल पाँच हजार।"

"अच्छी बात है। मुझे मंजूर है।"

"तो आप कल सुबह दस हजार का चेक मेरे नाम का भिजवा दीजिए।"

"और महाराज से कह दूँ कि दोनों मामले खत्म हुए ?"

"आप कह सकते है।"

"आपको कुछ और सोच-विचार करना है ?"

"वह जो कुछ करना-धरना होगा मैं कर लूंगा, आपको उसके लिए परेशान होने की कोई आवश्यकता नहीं है।"

"तो दस हजार का एक चेक कल आपको मिल जायगा।"

"एक बात की आपको प्रतिज्ञा करनी होगी।"

"क्या ?"

"कि यह समझौता जो मेरे आपके बीच हो रहा है बस तीसरे कान न पड़ेगा।"

"इस बात की आप खातिर जमा रखें।"

"तो जयहिन्द।"

शुक्ल जी गर्व में फूले, अपने सौदे की सफलता पर अकड़ते हुए चल दिए। कुंवर सुरेशसिंह ने संतोष की सांस ली।

४३

कमाल हो गया। अब सब तरह मँगतू की जीत निश्चित थी। पर कांग्रेस ने मँगतू को राजा साहेब के मुक़ाबले से बैठा दिया, राजा साहेब निर्विरोध चुन लिए गए। जो सुनता हैरान रह जाता। सब कुछ जादू का चमत्कार-सा हो गया। अखबारों ने कांग्रेस पर बड़ी तीखी टिप्पणियाँ की। कांग्रेस ने एक छोटा-सा बयान प्रकाशित करके अपनी सफाई दे दी।

राजा साहेब की धूम मच गई। बड़े धूमधाम से उनका जुलूस निकाला गया। गाजे-बाजे-जलसे-दावत-नाच-रंग-मुजरे सब हुए। कवि-सम्मेलन और मुशायरे भी हुए। मुबारकबादियाँ दी गईं। पार्टियाँ दी गईं।

परन्तु यह जीत राजा साहेब को कितनी महँगी पड़ी थी—इस पर किसी ने ध्यान नहीं दिया। चाँदी का जूता कांग्रेस पर भी असर कर सकता है—इसे जनसाधारण नही समझ सका। दो दिन का जोश-खरोश ख़त्म हो गया।

परन्तु मँगतू ने कांग्रेस के कहने पर भी अपना मुक़दमा नही हटाया। कांग्रेस ने उस पर बहुत दबाव डाला, उसकी बिरादरी के पंचों को समझाया। परन्तु चुनाव के मानले में कांग्रेस ने जो रुख अख्तियार किया था उससे हरिजनों में असंतोष बढ गया। सबने एक सिरे से यह निश्चय किया—चाहे जो कुछ भी हो, हम जीते जी मुकदमा लडेंगे। और अब सब की ज़बान पर मुकदमा ही मुक़दमा था। कांग्रेस ने अपनी पैरवी बन्द कर दी थी और अब मँगतू अपने ही पैरों पर लड़ रहा था। परन्तु मुकदमे का रंग बिगड़ता जाता था। गवाह हुए और राजा साहेब पर फर्द जुर्म लग गई। इसी बीच मँगतू ने अपनी जान का ख़तरा बता कर राजा साहेब से हज़ार-हज़ार के दो मुचलके निकलवा दिए।

राजा साहेब ने बहुत बन्धेज़ बाँधे। मँगतू को कत्ल कर दिया जाय, या उस पर झूठे मुकदमे दायर किए जाय, उसे पिटवाया जाय। या और किसी तरह उसे जेर किया जाय—परन्तु सफलता नही मिली। प्रथम तो कुँवर साहेब इन सब बातों के बहुत ख़िलाफ थे—दूसरे राजा साहेब के मुसाहिब ज़बान लड़ाने में बहादुर थे। कुछ कर गुज़रने का उनमें दम न था। फिर गाँव

और इलाक़ा भर मँगतू के गीत गाता था। कोई मँगतू पर हाथ उठाने को तैयार नहीं हुआ।

मुकदमे में राजा साहेब का पैसा पानी की तरह खर्च हुआ। सप्रू साहेब ने क़ानून के सब पहलुओं को परखा, बड़ी-बड़ी जिरह हुई। पर मुक़दमा साबित हो गया। राजा साहेब पर पचास रुपए जुर्माना हो गए। जज ने अपने फैसले में कहा—मैं उनकी बुजुर्गी और बड़प्पन की जितनी रियायत और लिहाज कर सकता था—उसके बावजूद सिर्फ पचास रुपए जुर्माना करता हूँ। जुर्माना न अदा किया जाय तो एक माह की सादी कैद।

फैसला सुनकर राजा साहेब अदालत ही मे बेहोश हो गए। अदालत को एक बड़ी रक़म रिश्वत मे देने की भी योजना बनी थी—और मँगतू को भी पच्चीस हज़ार रुपए दिए जा रहे थे, पर दोनों ही बातों का भंडाफोड़ हो गया। और अन्त में यही फैसला हुआ, जिसे सुनते ही तहलका मच गया। अखबारों ने इस पर बडे-बड़े लेख निकाले।

४४

अपमान के इस धक्के को राजा साहेब न सह सके। और उनका दो ही चार दिन में देहान्त हो गया। जब तक वह जीवित रहे अर्द्ध मूर्छित अवस्था में मँगतू ही के सम्बन्ध में कुछ अस्त-व्यस्त बकते रहे। बीच-बीच में वह चिल्ला उठते। कभी उनका शरीर ऐंठ कर कड़ा हो जाता। आँखें भयानक हो उठतीं। हकीक़त तो यह थी, उनके मनस्ताप और मर्म वेदना को उनकी मूर्छा भी न सह सकी।

बहुतों का राजा साहेब से विरोध-भाव था। बहुतों को उनसे कष्ट पहुँचा होगा। वह शराबी, अकर्मण्य और क्रोधी थे पर हृदय उनका कोमल था। प्रसन्न होकर वह मुक्त हस्त से देते थे। मैत्री का निर्वाह करते थे। उनके गुणों का बखान हम प्रथम ही कर चुके हैं। फिर भी युगधर्म का प्रभाव था—राजाओं, रईसों, ज़मींदारों से अपढ़-निरीह जनता की नई मुक्ति हुई थी।

रूढ़िमूलक जाति-बन्धनों में फँसी अनेक दलित जातियों ने स्वतन्त्र वायु में साँस ली थी। स्वाभाविक था कि इन लोगों से राजा साहेब के विचारों का मेल न खाय। परन्तु राजा साहेब की जो मनोभूमि थी—वह भी एक दिन में न बनी थी, वह पीढियों की सामन्तवादी समाज परम्परा द्वारा निर्मित हुई थी। अतः राजा जैसे मानधनी उस असह्य अपमान को सहन न कर सके। और अन्ततः उन्होंने प्राणों से उसका मूल्य चुकाया।

परन्तु राजा साहेब की इस मृत्यु ने बहुतों को उनके प्रति सदय बना दिया। बहुत लोग राजवर्ग के जीवन पर विचार करने लगे। बहुत लोग अछूतों को कोसने लगे। बहुत जन व्यक्तिगत रूप में मँगतू को भला-बुरा कहने लगे।

पर मँगतू इस अवसर पर भी राजद्वार पर नही आया। सभी रैयत राजा का मातम मनाने को आई—छोटे-बड़े, ऊँच-नीच। परन्तु मंगतू नहीं आया। गाँव में रहकर भी नहीं आया।

आनन्द स्वामी भी राजा साहेब की मृत्यु का समाचार पाकर आए। उन्होंने अवसर पाकर कुँवर सुरेशसिंह से कहा: "सुरेश, मैं एक बात से बहुत बेचैन हूँ।"

"किस बात से ?"

"मँगतू राजा साहेब के शोक में यहाँ नही आया।"

"तो इसमें बेचैन आप क्यों है ? वह अपना मालिक है, नही आया। हमारा उस पर क्या ज़ोर है ?"

"मैं ज़ोर-ज़ुल्म की बात नहीं करता हूँ सुरेश, समाज की मर्यादा की ओर देखता हूँ। मँगतू लाख पढा-लिखा, कांग्रेसी और समझदार है। पर, परम्परागत मूढ़ता का तो वह भी दास है। ऐसा न होता तो वह तुम्हारे मान की रक्षा करता—तुम्हारी बात रख राजा साहेब से क्षमा माँग लेता; इससे वह कुछ छोटा थोड़े ही हो जाता। और अब इतना तूफान खड़ा करके वह कुछ बड़ा थोड़े ही हो गया। फिर भी मैं समझता हूँ वह दोषी की अपेक्षा अज्ञानी अधिक है। मैं चाहता हूँ—वह राजा साहेब के मातम को ड्योढ़ियों पर आए।"

"क्या मैं उसे जबर्दस्ती पकड़ बुलाऊँ ? तब तो वह मुझे भी फौजदारी सुपर्द करेगा।"

"नही, मैं चाहता हूँ कि तुम्ही उसके यहाँ जाओ।"

"मैं ?"

"हाँ।"

"क्यों ?"

"अपना बड़प्पन प्रकट करने।"

"मैं क्या करूँ जाकर ?"

"अपने पिता के अपराध की माँफी माँग लो।"

"मैं माफी माँग लूँ ?"

"बेशक, यही तो वह चाहता है ?"

"इससे क्या होगा ?"

"उसका अहं समाप्त हो जायगा। उसकी मूढ़ वासना तृप्त हो जायगी।"

"उसको क्या लाभ होगा ?"

"क्यों ? लाभ क्यों नही होगा ? एक आदमी की मूढ़ता नष्ट होने से उसका कितना उपकार होता है जानते हो ?"

"शायद नही जानता। परन्तु आप कहते हैं तो मै जाऊंगा।"

"मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगा। कल सुबह चलो।"

और दूसरे दिन सुबह जब कुँवर सुरेशसिंह और आनन्द स्वामी मँगतू के घर पहुँचे तो मँगतू सकते की हालत में रह गया। उसने घर से बाहर आकर कुँवर साहेब और स्वामी जी को नमस्ते की और चुपचाप खड़ा रह गया।

स्वामी जी ने हँसकर कहा : "भाई मँगतराम, कुँवर साहेब तुम्हारे द्वार पर आए हैं, तुम क्या उनसे बैठने को भी न कहोगे ?"

मँगतू दौड़कर एक चारपाई उठा लाया। और कहा—"बैठिए।"

दोनों बैठ गए। कुँवर साहेब ने कहा : "मँगतू, मैं अपने स्वर्गीय पिताजी की ओर से तुमसे माँफी माँगने आया हूँ। उन्होंने जो तुम्हारे साथ अपमानजनक व्यवहार किया था, उससे मैं बहुत दुःखित हूँ, अब तो वह रहे नहीं। वह बड़े थे, तुम माफ कर सको तो माफ कर देना। और मेरी तरफ़ से कोई गाँठ मन में न रखना। मैं तुम्हें अपना छोटा भाई समझकर ही यहाँ आया हूँ। समझे !"

इतना कहकर कुँवर सुरेशसिंह उठ खड़े हुए। गतू जड़वत् खड़ा का खड़ा

रह गया। उससे कुछ कहते न बना। कुँवर साहेब ग्रौर स्वामी जी उठकर चले ग्राए।

मँगतू की ग्रौरत ने किवाड़ की ग्रोट से सब बात सुन ली थी। उसने ग्रब ग्रागे ग्राकर कहा : "यह तुमने क्या किया ? मालिक द्वार पर ग्राए माफी माँगने, ग्रौर पत्थर की मूरत बने तुम खड़े रहे। खातिर भी नही की।"

परन्तु मँगतू फिर भी जड़वत् खड़ा रहा। उसके मुँह से बोल नहीं फूटा। इस समय उसका रक्त ठण्डा हो रहा था। उसे याद ग्रा रहा था जब कुँवर साहेब ने उससे चिरौरी की थी कि महाराज से माँफी माँग ले। माँफी माँग लेता तो मेरा क्या बिगड़ता था ! बड़े थे, एक गाली दे ही दी तो मैंने भी क्या कसर छोड़ी, उलटकर गाली दी। न मालिक का लिहाज किया, न ग्रपना ग्रापा देखा। ग्रौर फिर मुकदमा लड़ा। मेरी बुद्धि पर पत्थर पड़े। ग्रन्त में उन सबने साथ छोड़ दिया जो बढ़ावा दे रहे थे। ग्रौर ग्राज कुँवर साहेब मेरे द्वार पर ग्रपने बड़प्पन का प्रसाद बखेर गए। इससे तो वह मुझे पीटकर ग्रधमरा कर देते तो ग्रच्छा था। उन्होंने ग्राकर माँफी माँगी। शर्म की चोट से मालिक ने जान दे दी। इससे मैं कितना बड़ा हो गया भला ?

मँगतू का दिल हाहाकार करने लगा। ग्रौर उसकी ग्राँखों से ग्राँसू बहने लगे। दोनों हाथों में सिर देकर वह वहीं बैठ गया।

४५

सूरज छिप रहा था जब धीरे-धीरे मँगतू ने राजगढ़ी में प्रवेश किया। उसके पीछे-पीछे घूँघट में लिपटी हुई उसकी बहू ग्रपने बालक को गोद मे लिए हुए थी।

लोगों ने देखा—किसी ने घृणा से मुँह मोड़ लिया, किसी ने गुस्से से ग्राँखें तरेड़ लीं। किसी ने एकाध दुर्वाच्य भी कह दिया। पर मँगतू सब ग्रोर से ध्यान हटा सीधा वहाँ जा खड़ा हुग्रा जहाँ कुँवर साहेब गाँव के दस-बीस ग्रादमियों के बीच मातम की जाजम पर बैठे थे।

जाजम से दूर मँगतू हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। कुँवर साहेब ने देखा, कहा : "आओ भाई मँगतराम, यहाँ बैठो जाजम पर।"

परन्तु वह वही उसी तरह हाथ जोड़े खड़ा रहा। उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे। उसकी बहू ने आगे बढ़कर अपनी गोद के बालक को ड्योढ़ियों में डालकर कहा : "मालिक, हम आपके चाकर-गुलाम है। हमारी तकसीर माफ हो। आप हमारे इस बालक की ओर देखें, आप राजा हैं, हम आपके सरनागत है।"

"क्या बात है बहू", कुँवर साहेब ने उठाकर बालक को गोद मे ले लिया। फिर उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा :

"क्या नाम है इसका मँगतराम ?"

पर मँगतू की जिह्वा अब भी जड़ हो गई थी। वह बोलना चाहकर भी न बोल सका। बहू ने कहा : "आपका गुलाम है माई-बाप, नाम है मटरू।"

कुँवर साहेब ने मुस्कुराकर कहा : "बड़ा रद्दी नाम रखा तुमने बेटे का। इसका नाम तो रखना था—मोतीलाल।"

इसी समय मँगतू दौड़कर कुँवर साहेब के पैरों पर लोट गया। उसने दोनों हाथों में जोर से पैर जकड़ लिए।

"यह क्या करते हो मंगतराम ?" कुँवर साहेब ने बालक उसकी माँ को देते हुए मँगतू को उठाकर भुजाओं में समेट लिया।

"मँगतू नहीं, हुजूर मैं हूँ चमार, असल कमीन, ढेढ़।"

"वाह, यह भी कोई कहने की बात है ?"

"मुझे लोगों ने भर दिया था कि तू हरिजन है, किसी से छोटा न बन। पर आपने देख लिया कि मैं कितना कमीन, नीच हूँ। आखिर चमार का पूत, मैंने आपकी नेक सलाह नहीं मानी, चमारपने का भूत मुझ पर चढ़ा था, मुकदमा लड़ा, चुनाव लड़ा, और जाने क्या-क्या किया। आप देवता स्वरूप मेरे घर गए, मुझसे माँफी माँगी। अब भला कहीं नर्क में भी मुझे जगह मिलेगी ?"

"मँगत भाई, यह साधारण बात है। वास्तव में मुझे दुःख था। पिता के अच्छे-बुरे कामों में पुत्र का भी हिस्सा होता है। इसी से मैं तुम्हारे घर गया था। मैं समझता हूँ तुमने मेरे पिता को माफ कर दिया।"

"महाराज मेरे मालिक थे, और आप देवता है। मेरी क्या मजाल कि माफ़ करने की हैसियत अपनी समझूँ। मैं नीच, वेसमझ, कुमार्गी जन हूँ, मुझसे बेअदबी हुई है, आप मुझे माफ न करेंगे तो मैं जान पर खेल जाऊँगा।"

"यह तो सरासर नादानी है।"

"जो कुछ भी है। कहिए, आप माफ़ करते है?" मँगतू फिर उनके पैरों में लोट गया।

कुँवर साहेब ने कहा : "मँगत भाई, तुमने वास्तव मे कोई भूल की है, ऐसा तुम समझते हो तो मैं तुम्हे माफ़ करता हूँ। और मेरे तथा मेरे पिता के द्वारा तुम्हारा कोई अपमान हुआ हो तो मैं तुमसे माफी माँग ही चुका हूँ।"

"यह बात मत कहिए मालिक।"

"मालिक यहाँ कोई नहीं है। सब भाई है। आओ बैठो जाजम पर।"

कुँवर साहेब मँगतू का हाथ पकड़ जाजम पर खीच लाए। उसकी बहू घूँघट निकाले खड़ी थी, कुँवर साहेब ने उससे कहा : "तू बहू, भीतर जनाने में जा!"

उन्होंने एक खवास की ओर संकेत किया। खवास उसे जनाने में ले गया।

४६

राजगढ़ मे अब भी सान्ध्य गोष्ठियाँ होती रही, जब तक आनन्द स्वामी जी रियासत में उपस्थित रहे। अब इस गोष्ठी में जो बिला नागा हाज़िर रहता था वह मँगतू था। स्वामी जी एक बार उसके घर के द्वार पर क्या गए—उसे उन्होंने निहाल कर दिया। वह उनका परम भक्त बन गया था। आनन्द स्वामी न तो किसी से अपनी सेवा कराते थे न उनकी कोई आवश्यकताएँ ही थीं। वे बेलौस आदमी थी। बहुत अल्पाहार करते थे। और जब बात नहीं करते थे तो गम्भीर चिन्तन में डूबे रहते थे।

सर्दी का तीसरा पहर। जल्दी ही अँधेरा हो रहा था। और स्वामी जी की गोष्ठी उन्हीं के निवास-स्थान पर जुटी थी। मनुष्यों की बढ़ती हुई आबादी पर

स्वामी जी कह रहे थे। वह कह रहे थे, "आज सारे संसार के करोड़ों स्त्री-पुरुष बच्चा पैदा करने के काम में रात-दिन जुटे हैं। वे प्रतिदिन लाखों बच्चों को जन्म देते हैं। उन्हें इस बात की कोई चिन्ता नही है कि वे क्या खायेंगे—कहाँ रहेंगे ? दुनिया की कोई सरकार उनके उत्पादन में कोई रोक-थाम नही करती। इन अन्धाधुध और बेतरतीबी से पैदा हुए मनुष्यों की तबाह जिन्दगी बड़ी ही निकृष्ट, बड़ी ही घृणास्पद और हद दर्जे की करुण है।"

सुरेश ने कहा : "जब बच्चों का लालन-पालन ठीक तरह न होगा तो ऐसा तो होगा ही। आमतौर पर उनकी आदतों में कुछ ऐसी खराबियाँ आ गई हैं, जो संसार के किसी जीव-जन्तु में नही हैं। वे झूठ बोलते हैं। कपटी हो गए हैं। बेईमान हैं, दगाबाज़ है, चोर हैं, व्यभिचारी हैं। वे नशा करते हैं। गन्दी गालियाँ बकते है। एक दूसरे का गला काटते हैं। और इस तरह आज मनुष्य ही मनुष्य का सबसे बड़ा खतरा बन गया है।"

"मनुष्य का सबसे बड़ा दुर्भाग्य शायद उसका बुद्धिमान होना है।"

"ठीक कहा तुमने सुरेश, उसने अपने सारे बुद्धिबल को अपने विनाश में लगाया हुआ है। अब विनाश ने उसे चारों ओर से घेर लिया है। जि़न्दा रहने की उसकी अब सारी चेष्टाएँ हास्यास्पद हो गई है।" कुछ रुककर स्वामी जी ने कहा : "वह अपने रहने के लिए बड़े-बड़े आलीशान मकान बनाता है, भोग-ऐश्वर्य का सामान जुटाता है, लेकिन दूसरी ओर उसके लिए जेलखाने, पागल-खाने, मुहताज खाने तैयार हो रहे हैं। और जितने बनते हैं—कम प्रतीत होते हैं। वह आजाद होने की डीग हाँकता है, पर जेल और पागलखाने में अपना घृणित जीवन व्यतीत करता है। जिन्दगी उसके लिए मौत है और मौत उसके लिए मुक्ति है।"

चौधरी हुक्मसिंह ने कहा : "क्या मनुष्य का सुधार नहीं हो सकता ?"

"शायद नही हो सकता। मनुष्य के सुधार के लिए लोगों ने बड़े-बड़े प्रयत्न किए हैं। स्वर्ग-नर्क की दुहाई दी, वरदानों के प्रलोभन दिखाए, शाप का भय दिखाया। जेल में ठूँसा, जीता जलाया, फाँसी पर लटकाया—पर आदमी का सुधार नहीं हुआ। वह न श्रेष्ठ बना न सुखी बन सका। अज्ञान और दुराचार बढ़ते ही चले गए। बढ़ते ही चले जा रहे हैं।"

ठाकुर राजनाथ ने कहा : "आखिर इसका कारण क्या है ?"

"कारण ? कारण यह है कि मनुष्य के बच्चे पैदा करने पर कोई रोक नहीं है। वे लोग जो न तो अपना, न अपने बच्चों का पालन-पोषण कर सकते हैं, जो स्वयं गन्दी झोंपड़ी में अपनी ज़िन्दगी बिताते है, अपनी उस गन्दी झोंपड़ी को इन घृणित बच्चों से भर देते हैं। न तो उनमें अपनी जिम्मेदारी समझने की शक्ति है न कुछ सुधारने की भावना। वे भगवान के और भाग्य के भरोसे पड़े कीड़े-मकोड़ों की भाँति ज़िन्दा रहने के आदी हो गए हैं। बच्चों को वे नहीं चाहते, क्योंकि बच्चे उनके ऊपर एक भार है। अभिशाप हैं। वे बच्चों की खोज-खबर लेते है न उनकी उन्हें कोई चिन्ता है। वे बच्चे गन्दी गली-कूचों में आवारा कुत्तों की भाँति भटकते हुए बढ़ते है और बड़े होने पर जेल जाते हैं, अस्पतालों में मरते है, फाँसी पर लटकते हैं। कुछ भीख माँगते हैं। कुछ गन्दी बीमारियों में सड़ते हैं। दुराचार को वे अपनी औलाद को बिरासत में दे जाते हैं।"

"लेकिन यह तो बड़ी ख़तरनाक बात है, अपराधी, आवारे, दुराचारी, भिखमंगे और घृणित रोगों के रोगी बेतहाशा बच्चे पैदा करके उनसे संसार को पाट दें। और समाज उन्हें अपने में रहने देने के ख़तरे उठाए।" राजनाथ ने कहा।

चौधरी साहेब ने कहा : "जो भी हो, वे समाज के अंग है, समाज पर उन्हें निवास, खाना, कपड़ा देने का भार है।"

"परन्तु कहाँ से ?" आनन्द स्वामी ने ज़रा कड़कती आवाज में कहा। "समाज इतने आदमियों का भार कहाँ उठा सकता है ? उन्हें खाना कहाँ से दे सकता है ? इतने आदमियों का भोजन उसके पास कहाँ है ?"

"परन्तु सुधारक लोग तो सपने देखते हैं कि ज्ञान और सदाचार मनुष्य के दुःख-दर्द को हर लेगे। मनुष्य का जीवन सफल होगा। जेलखाने ढहा दिए जायेंगे। फाँसी के तख्ते दुनिया से उठा दिए जाएँगे, जेलखाने की काल कोठरियाँ प्रकाश से जगमगा उठेंगी। कोई न दरिद्र रहेगा, न कोई भीख के लिए हाथ पसारता नज़र आएगा।" सुरेश ने भावावेश में कहा।

"किन्तु कवि, ये सपने तो उन्होंने युग-युग से देखे हैं, वे युग-युग तक देखते रहेंगे।"

स्वामी जी कुछ देर को चुप हो गए, फिर उन्होंने धीर गम्भीर स्वर में कहा : "आप सुख चाहते है पर दुःख का सृजन करते हैं। शांति चाहते हैं पर अशान्ति का साधन उत्पन्न करते हैं। विश्वास चाहते हैं, पर विश्वासघात करते है।प्यार चाहते है पर कपट करते हैं, जीवन चाहते हैं, पर मृत्यु की ओर दौड़ते चले जा रहे है।"

स्वामी जी एकदम असंयत हो उठे। वे उठकर टहलने लगे।

मँगतू भाव विभोर होकर स्वामी जी की बातें सुन रहा था। उसने हाथ जोड़कर कहा : "स्वामी जी, क्या आप एक बार मेरे झोंपड़े को फिर अपने चरणों से पवित्र नही करेंगे ?"

स्वामी जी हँस पड़े। उन्होंने बाल सुलभ भंगिमा से कहा : "आऊँगा, पर अभी नहीं। कल मेरा यहाँ से प्रस्थान है। इस बार प्रस्थान लम्बा है, दक्षिण में धनुष्कोटि तक जाऊँगा। पर इस बार जब आया तो मँगतू, मैं तुम्हारे ही घर ठहरूँगा। समझे।"

मँगतू ने गद्‌गद् होकर स्वामी जी के चरणों में प्रणाम किया। रात हो गई थी, दिए जल गए थे और गोष्ठी बरखास्त हुई।

४७

दिन बीते, सप्ताह बीते, मास बीते और पाँच वर्ष बीत गए। पुरानी दुनिया नई हो गई—और नई दुनिया पुरानी। इस बीच एक बार कुँवर सुरेशसिंह समूचे योरोप को प्रमिला रानी को दिखा लाए हैं। समूचे योरोप में राष्ट्रवाद दम तोड़ रहा है। पूँजी नीचे खसकती जा रही है। वह अमेरिका भी गए और सोवियत रूस भी। उन्होंने देखा—सारा विश्व जैसे संदेह और अनिश्चितता से भरा हुआ है। इंग्लैण्ड और अमेरिका में अभी भी विश्व पर अपना अर्थ साम्राज्य स्थापित करने की होड़ लग रही है। पौण्ड और डालर शतरंज की चालें खेल रहे हैं। आज का एंग्लो-अमेरिकन गुट न जाने क्षण भर में कब एंग्लो-रशियन गुट बन जाय। और सारा योरोप उसके साथ खिचा चला आए।

तब अमेरिका का तो कहीं ठिकाना न रहेगा। इस यात्रा में उन्होंने समाज-रचना, मानव-जीवन, मानव-दौर्बल्य सब कुछ देखा-समझा। और अब उन्होंने अपना नया जीवन अपनाया है। उन्होंने तीन बड़े फार्म स्थापित किए हैं। एक में औषध वनस्पति, दूसरे में अन्न और तीसरे में गन्ने का उत्पादन होता है। गन्ने की चीनी बनाने और शीरे का औषध रूप में उपयोग करने तथा बची वस्तुओं को उपयोगी बनाने, वनस्पतियों के तत्व निकाल कर आधुनिक औषध बनाने आदि के कारखाने भी फार्म के साथ हैं। सब कार्य मशीनों से—आधुनिकतम पद्धति पर होता है। सारा कारोबार सहयोग समिति की पद्धति पर है। सब स्त्री-पुरुष श्रम करते है—मूल्य पाते हैं। सब प्रसन्न हैं, सब स्वस्थ हैं। सच्चे अर्थों में सबका सहयोग है। एक फार्म की देखभाल स्वयं सुरेश करते हैं। वहाँ औषध-निर्माण होता है। दूसरे का अधिकारी मॅगतू है—यहाँ अन्नोत्पादन होता है। तीसरे की देख-भाल राजनाथ करते हैं—यहाँ गन्ना, चीनी, आसव तैयार होते हैं। प्रत्येक फार्म प्रगति कर रहा है। फार्मों ही में लोग बसते जा रहे हैं। वहाँ बाजार लग गए हैं। परन्तु सुरेश अभी राजगढ़ ही में रहते हैं।

भोर होते ही वह प्रातराश कर जीप पर सवार हो फार्म पर जाते हैं और सब काम-काज राई-रत्ती स्वयं करते, देखते तथा दूसरों से कराते हैं। दोपहर का भोजन लेकर प्रमिला रानी गोद में चाँद के टुकड़े जैसे शिशु को लेकर फार्म पर जाती हैं। शिशु का नाम शशि है। पिता को दूर ही से देखकर ढाई वर्ष का शिशु किलकारी भरता, और पापा-पापा कहकर दोनों हाथ फैला देता है। तब सुरेश सब काम छोड़ दौड़ पड़ते हैं; पुत्र को गोद में लेकर बार-बार चूमते हैं—उछालते हैं। इसके बाद वृक्ष की घनी छाया में प्रमिला रानी भोजन परोसती हैं। फार्म के सब छोटे-बड़े कर्मचारी एक साथ ही भोजन करते हैं। एक दूसरे के साथ हँसते-बोलते हैं।

और शाम को जब सब लौटते हैं, तो गढ़ी के सामने के विशाल लान में—जहाँ स्वर्गीय महाराज की संगमरमर की प्रतिमा खडी है—सब बैठते हैं। मृदंग, मजीरा, ढोलक, एकतारा, सारंगी सब साज आते हैं। सत्तार मिया अवश्य आते हैं। और वहीद भी आता है। लोग गाते हैं—कबीर, मीरा के भजन, गीता के श्लोक। कभी-कभी कोई कवि आ जाता है तो अच्छा-खासा कवि-सम्मेलन का समा बँध जाता है।

सबने नए मकान बनाए हैं। गाँव का रंग बदला हुआ है। प्रत्येक फार्म की मोटर है—लारी है। तीनों फार्मों के बीच के क्षेत्र में सिनेमा है, स्कूल है, अस्पताल है, रसायनशाला है। बच्चे भी पढ़ते हैं। रात्रिशाला में प्रौढ़ पढते हैं।

नए युग का नया जीवन प्रत्येक की आत्मा में आशा और आनन्द की नई ज्योति-रश्मि का आलोक प्रकट करता है।